व
५६२

ॐ

साधु श्रीनिश्चलदासजीविरचित

श्रीविचारसागर

टिप्पणसहित.

दोहा,

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वानी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥

श्रद्धावाले मुमुक्षुजनोंके हितार्थ बड़े परिश्रमसे

पंडितोंसे शुद्ध करवायके

पं० हरिप्रसाद भगीरथजीने

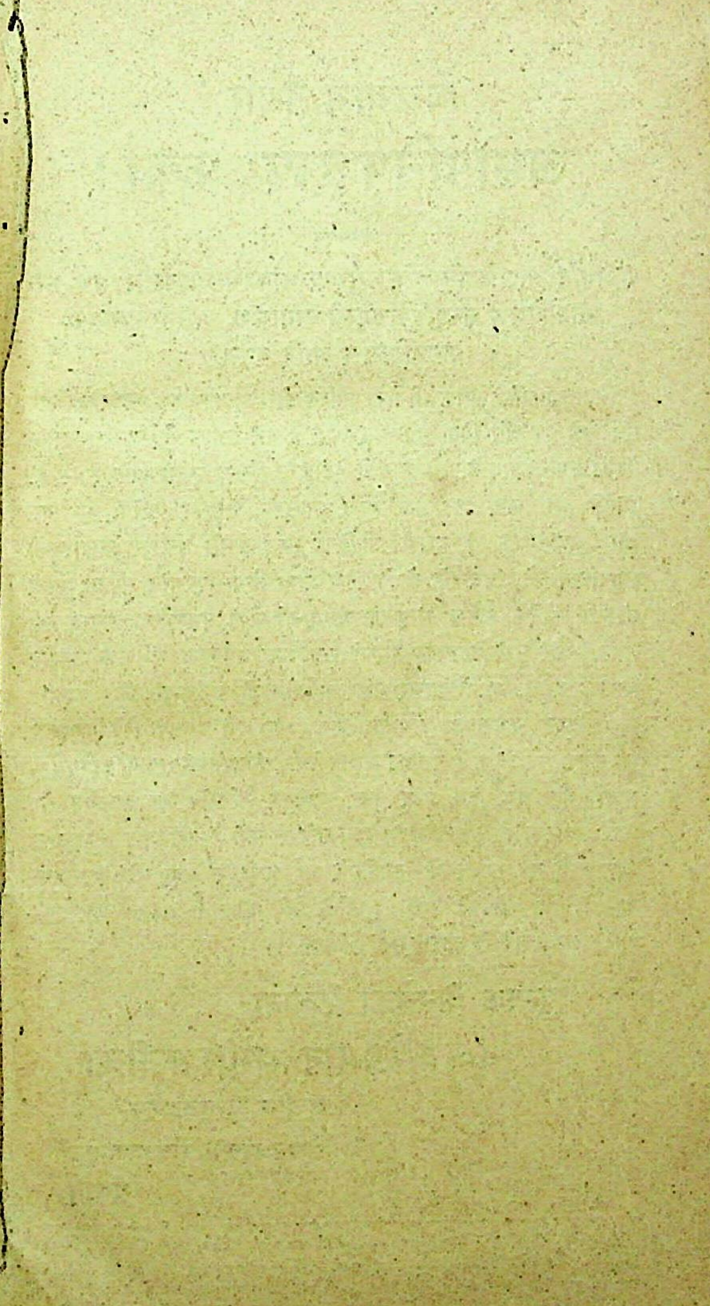
मुंबईमें

" कर्नाटक " छापखानेमें छपवायके प्रसिद्ध किया.

चतुर्थावृत्ति.

विक्रमसंवत् १९७४, सन् १९१७.





Printed by G. N. Kulkarni at the Karnatak Press, 434 Thakurdwar, Bombay and Published by Brajavallabh Hariprasad, Kalbadevi Road, Bombay.

श्रीविचारसागरानुक्रमः ।

अनुबंधसामान्यनिरूपण.



पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

हरिप्रसाद भगीरथजी,

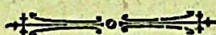
कालिकादेवीरोड, रामवाडी-मुंबई.





श्रीविचारसागरप्रारंभः ।

प्रथमस्तरंगः १.



अथानुबन्धसामान्यनिरूपणम् ।

वस्तुनिर्देशरूप मंगल ।

दोहा ।

जो सुख नित्यप्रकाश विभु, नामरूपआधार ॥
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं शुद्ध अपार ॥ १ ॥
अंब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश ॥
विधि रवि चंदा वरुण यम, शक्ति धनेश गणेश ॥२॥
जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान ॥
ताको होत उपाधितें, मोंमैं मिथ्या भान ॥ ३ ॥
है जिहिं जाने विन जगत, मनहु जेवरी साँप ॥
नशै भुजग जग जिहिं लहै, सोऽहं आपै आप ॥४॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम ॥
सो मेरो है आतमा, काकूं करूं प्रणाम ॥ ५ ॥
भऱ्यो वेदंसिद्धांतजल, जामें अति गंभीर ॥
अस "विचारसागर" कहूं, पेखि मुदित हैं धीर ॥६॥

---

१ समुद्र. २ वेदोंका सिद्धान्तरूप जल.

सूत्र भाष्य वार्तिकप्रभृति, ग्रंथ बहुत सुरबानि ॥
तद्यपि में भाषा करूं, लखि मतिमंद अजानि ॥ ७ ॥

टीकाः—यद्यपि सूत्र, भाष्य, वार्तिकोंसे प्रभृति, कहिये आदि लेके सुरबानि, कहिये संस्कृत ग्रंथ बहुत हैं, तथापि संस्कृत ग्रंथनसैं मंदबुद्धिपुरुषनकूं बोध होवै नहीं, औ भाषा-ग्रंथनसैं मंदबुद्धिपुरुषनकूंभी बोध होवै है; यातैं भाषाग्रंथ-का आरंभ निष्फल नहीं, किंतु संस्कृतग्रन्थनके विचारने-विषे जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, उनके निमित्त ग्रंथका आरंभ सफल है ॥ ७ ॥

दोहा ।

कविजनकृत भाषा बहुत, ग्रंथ जगतविख्यात ॥
विन "विचारसागर" लख, नहिं संदेह नशात ॥ ८ ॥

टीकाः—यद्यपि भाषाग्रंथ बहुत हैं, तथापि "विचारसा-गर" बिना और भाषाग्रंथनसैं, आत्मवस्तुविषे संदेह दूर होवै नहीं. इसमें यह हेतु है कि—कितने तौ श्रवणकरके भाषा-ग्रंथ रचे हैं, जैसे "पंचभाषा" है, तिनकी प्रक्रिया किसी अं-शमें तौ शास्त्रके अनुसार है; और जो श्रवण कियाभी अर्थ यथार्थ ग्रहण नहीं हुवा, उस अंशमें शास्त्रसैं विरुद्ध है; यातैं श्रोताके किये ग्रंथसैं संदेहरहित बोध होवै नहीं. और कोई भाषाग्रंथ किंचित् शास्त्र पढ़के रचे हैं. जैसे "आत्म-बोध" है. उससैंभी संदेहरहित बोध होवे नहीं. काहेतैं ? तिनमैं वेदांतकी प्रक्रिया संपूर्ण नहीं है. औ "विचारसागर" ग्रंथमैं संपूर्ण प्रक्रिया है, औ वेदांतशास्त्रके अनुसार है; का-हू स्थानमैं भी विरुद्ध नहीं है. आत्मज्ञानमैं उपयोगी जो पदार्थ हैं, तिनका निरूपण विस्तारसैं किया है; यातैं और

भाषाग्रंथनके समान यह ग्रंथ नहीं है, किंतु सब भाषा-ग्रंथनमैं यह ग्रंथ उत्तम है ॥ ८ ॥

चौपाई—नहिं अनुबंध पिछाने जौलौं ।
है न प्रवृत्त सुघर नर तौलौं ॥
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा ।
कहूं व यातें ते अनुबंधा ॥ ९ ॥

टीका—अधिकारी, संबंध, विषय, प्रयोजनका नाम अनुबंध है. अधिकारीआदि ग्रंथके अनुबंध जानेबिना सुघर कहिये विवेकी पुरुषोंकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होती नहीं. यातैं जिन अनुबंधनकूं जानके प्रबंध कहिये ग्रंथनकूं सुनै, तिन अनुबंधनकूं व कहिये अब कहूं हूं ॥ ९ ॥

सोरठा ।

अधिकारी संबंध, विषय प्रयोजन मेलि चंव ।
कहत सुकवि अनुबंध, तिनमें अधिकारी सुनहु ॥ १० ॥

दोहा ।

मल विक्षेप जाके नहीं, किंतु एक अज्ञान ॥
है चवसाधनसहित नर, सो अधिकृत मतिमान ॥ ११ ॥

टीका:—अंतःकरणमें तीन दोष होते हैं:—एक तौ मल होता है, दूसरा विक्षेप होता है, औ तीसरा आवरण होता है. निष्कामकर्मसैं अंतःकरणका मलदोष दूर होता है; उपासनासैं विक्षेपदोष दूर होता है; ज्ञानसैं आवरणदोष दूर होता है. जिस पुरुषने निष्कामकर्म, औ उपासनाकरके

१ चौथा, अर्थात् अधिकारी, सम्बन्ध, विषय व प्रयोजन इन चारोंको 'अनुबन्धचतुष्टय' कहते हैं.

मल औ विक्षेपदोष दूर किये हैं; औ एक अज्ञान कहिये स्वरूपका आवरण जाके चित्तमें होवै, औ जो चार साधनसंयुक्त होवै, सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है ॥११॥

अथ साधनचतुष्टयनामवर्णन.

दोहा ।

प्रथम विवेक विराग पुनि, शमादि षट्संपत्ति ॥
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चंव साधनसंत्ति ॥ १२ ॥

अथ विवेकलक्षण.

दोहा ।

अविनाशी आतम अचल, जग तातें प्रतिकूल ॥
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल ॥ १३ ॥

टीकाः—"आत्मा अविनाशी कहिये नाशरहित है, औ अचल कहिये क्रियारहित है. औ जगत् आत्मातें प्रतिकूल कहिये विपरीतस्वभाववाला है, विनाशी है, औ चल है," इस ज्ञानका नाम विवेक है. यह विवेकही सर्वसाधनका मूल है. काहेतें, प्रथम विवेक होवै तौ विरागसैं आदि लेके उत्तरसाधन होवैं हैं. और विवेक नहीं होवै तौ उत्तरसाधन होवैं नहीं. यातें विराग, शमादि षट्संपत्ति औ मुमुक्षुता इनका विवेक हेतु है ॥ १३ ॥

अथ विरागलक्षण.

दोहा ।

ब्रह्मलोकलौं भोग जो, चहै सबनको त्याग ॥
वेद-अर्थ-ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग ॥ १४ ॥

१ ज्ञान. २ वैराग्य. ३ चार. ४ सत्य हैं.

अथ शमादि षट्नाम.

दोहा ।

शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम ॥
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्नभिन्न यह नाम ॥ १५ ॥

अथ शमदमलक्षण.

दोहा ।

मन विषयनतें रोकनो, शम तिहिं कहत सुधीर ॥
इन्द्रियगणको रोकनो, दम भाषत बुधवीर ॥ १६ ॥

अथ श्रद्धासमाधानलक्षण.

दोहा ।

सत्य वेदगुरुवाक्य हैं, श्रद्धा अस विश्वास ॥
समाधान ताकूं कहत, मन विक्षेपका नास ॥ १७ ॥

अथ उपरामलक्षण.

चौपाई—साधनसहित कर्म सब त्यागै ।
लखि विषसम विषयनतें भागै ॥
दृग नारी लखि ह्वै जिय ग्लाना ।
यह लक्षण उपराम बखाना ॥ १८ ॥

अथ तितिक्षालक्षण.

दोहा ।

आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहनस्वभाव ।
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवरराव ॥ १९ ॥

---

१ पण्डितोंमें श्रेष्ठ. २ नेत्रोंसे. ३ स्त्रीको. ४ धूप या उष्णता.

शमादि षट्संपत्तिको, भाषत साधन एक ॥
इमि नव नहिं साधन भनें, किंतु चारि सविवेक ॥२०॥

टीकाः—शमादि षट्ककी जो संपत्ति कहिये प्राप्ति, सो एक साधन करके गिनिये है. यातैं नव साधन नहीं, किंतु सविवेक कहिये विवेकीजन चार साधन कहै हैं ॥२०॥

अथ मुमुक्षुतालक्षण.

दोहा।

ब्रह्म प्राप्ति अरु बंधकी, हानि मोक्षको रूप ॥
ताकी चाह मुमुक्षुता, भाषत मुनिवर भूप ॥ २१ ॥

टीकाः—ब्रह्मकी प्राप्ति और अनर्थकी निवृत्ति, मोक्षका स्वरूप है. ताकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है. मुमुक्षुता-शब्दका मुमुक्षुत्व पर्यायशब्द है ॥ २१ ॥

दोहा।

ये चव साधन ज्ञानके, श्रवणादिक त्रय मेलि ॥
'ततपद' 'त्वंपद' अर्थको, शोधन अष्टम मेलि ॥२२॥

टीकाः—विवेकादिक चार, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, ये तीन; 'तत्' पदके अर्थका और 'त्वं' पदके अर्थका शोधन, ये आठ ज्ञानके साधन हैं ॥ २२ ॥

दोहा।

अंतरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक वहिरंग ॥
अंतरंग धारै तजै, वहिरंगनको संग ॥ २३ ॥

टीकाः—पूर्व दोहेमें कहे विवेकादिक आठ अंतरंगसाधन कहिये हैं; औ यज्ञादि कर्म बहिरंगसाधन कहिये हैं. उनमें बहिरंगनकूं जिज्ञासु त्यागै, और अंतरंगनकूं धारै. जिनके

श्रवणमैं अथवा ज्ञानमैं प्रत्यक्षफल होवै सो अंतरंगसाधन कहिये है. विवेकादि चारोंका श्रवणमैं उपयोग है. काहेतैं, विवेकादिक बिना बहिर्मुखकूं श्रवण बनै नहीं. जैसें श्रवण, मनन, निदिध्यासनका ज्ञानमैं उपयोग है, श्रवणादिकविना ज्ञान होवै नहीं. तैसें 'तत्' पदका अर्थ औ 'त्वं' पदका अर्थ जाने बिनाभी अभेदज्ञान होवै नहीं. इस रीतिसैं विवेकादिक चार साधनोंका श्रवणमैं उपयोग है औ श्रवणादिक चार साधनोंका ज्ञानमैं उपयोग है. यातैं आठ अंतरंगसाधन हैं. जिसका ज्ञानमैं अथवा श्रवणमैं प्रत्यक्षफल नहीं होता, किंतु अंतःकरणकी शुद्धि जिसका फल होवै, सो ज्ञानका बहिरंगसाधन कहिये है; ऐसे यज्ञादिक कर्म हैं. यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं, तिनतैं अंतःकरणकी शुद्धिभी कहना संभवै नहीं; तथापि सकाम पुरुषको संसारके हेतु हैं, औ निष्कामको अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं; इस रीतिसैं निष्कामपुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानके हेतु हैं, यातैं बहिरंगसाधन कहिये हैं. औ विवेकादिक अंतरंगसाधन कहिये हैं. बहिरंग नाम दूरका है, औ अंतरंग नाम समीपका है. यज्ञादिक कर्म और उनके साधन स्त्री, धन, पुत्रादिकनकूं त्यागै, सो ज्ञानका अधिकारी है. ज्ञानके अधिकारीमैं यज्ञादिक संभवैं नहीं, यातैं दूर हैं.

विवेकादिक ज्ञानके अधिकारीमैं संभवैं हैं, यातैं समीप हैं. उनमैंभी इतना भेद है; विवेकादिकनका श्रवणमैं उपयोग है, औ श्रवणादिकनका ज्ञानमैं उपयोग है, यातैं विवेकादिकनकी अपेक्षासैं श्रवणादिक अंतरंग हैं. तिनकी अपेक्षातैं विवेकादिक बहिरंग हैं. यद्यपि विवेकादिकभी ज्ञानके

अंतरंगसाधनही सर्व ग्रंथनमैं कहे हैं, बहिरंग नहीं कहे; तथापि विवेकादिकनका ज्ञानके साधन श्रवणमैं प्रत्यक्षफल है. और श्रवणादिकनकी नाईं विवेकादिक जिज्ञासुको उपा-देय हैं; यज्ञादिकनकी नाईं जिज्ञासुकों हेय नहीं, यातैं अंत-रंग कहे हैं. औ यज्ञादिकनकी अपेक्षातैंभी अंतरंग हैं, यातैंभी अंतरंग साधनोंमैं कहे हैं.

औ विचारसैं देखिये तौ ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन (तत्त्वमसि) आदि महावाक्य हैं, श्रवणादिकभी नहीं. काहेतैं? युक्तिसैं वेदांतवाक्योंका तात्पर्यनिश्चय श्रवण कहिये है, जीवब्रह्मके अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्ति-योंसैं अद्वितीयब्रह्मका चिंतवन मनन कहिये है, अनात्मा-कारवृत्तिका व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति, निदि-ध्यासन कहिये है. निदिध्यासनकी परिपाकअवस्थाकोही समाधि कहे हैं. यातैं समाधिकाभी निदिध्यासनमैं अंतर्भाव है; पृथक्साधन नहीं. ये श्रवण, मनन, निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात् साधन नहीं, किंतु बुद्धिके दोष जो असंभावना औ विपरीतभावना, ताके नाशक हैं. संशयको असंभावना कहते हैं. विपर्ययको विपरीतभावना कहैं हैं.

श्रवणसैं प्रमाणका संदेह दूर होता है औ मननसैं प्रमे-यका संदेह दूर होता है. "वेदांतवाक्य अद्वितीयब्रह्मके प्रति-पादक हैं, अथवा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं?" ऐसा प्रमा-णमैं संदेह होवै; सो श्रवणसैं दूर होता है. औ "जीवब्रह्मका अभेद सत्य है, अथवा भेद सत्य है?" ऐसा प्रमेयमैं संदेह होवै, सो मननसैं दूर होवै है. "देहादिक सत्य हैं; औ जीव

१ ग्रहण करने योग्य हैं. २ त्याग करनेयोग्य नहीं.

ब्रह्मका भेद सत्य है" ऐसे ज्ञानको विपरीतभावना कहैं हैं. उसीको विपर्यय कहैं हैं; उसको निदिध्यासन दूर करै हैं. इस रीतिसैं श्रवणादिक तीनों, असंभावना औ विपरीतभावनाके नाशक हैं. असंभावना औ विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं. यातैं ज्ञानका जो प्रतिबंधक, ताके नाशद्वारा श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं, साक्षात् हेतु नहीं.

ज्ञानके साक्षात् साधन श्रोत्रसंबंधी वेदांतवाक्य हैं. सो वेदांतवाक्य दो प्रकारके हैं:—एक **अवांतरवाक्य** है, एक **महावाक्य** है. परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य, सो **अवांतरवाक्य** कहिये है. जीवपरमात्माकी एकताबोधक वाक्य, **महावाक्य** कहिये है. **अवांतरवाक्य**सैं परोक्षज्ञान होता है, **महावाक्य**सैं अपरोक्षज्ञान होता है. "ब्रह्म है" इस ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहै हैं, "ब्रह्म मैं हूं" इस ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहै हैं. "त्वं ब्रह्म" ऐसा आचार्यनें उच्चारण किया जो वाक्य, तिसका श्रोताके कर्णसैं संबंध होतेही "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा अपरोक्षज्ञान श्रोताकूं होवै है. और श्रोताके कर्णसैं वाक्यका संबंध हुएबिना ज्ञान होवै नहीं, यातैं श्रोत्रसंबंधी वाक्यही ज्ञानका हेतु है. श्रोत्रसंबंधी **अवांतरवाक्य** परोक्षज्ञानका हेतु है, औ श्रोत्रसंबंधी **महावाक्य** अपरोक्षज्ञानका हेतु है. **महावाक्य**सैं सर्वकूं अपरोक्षही ज्ञान होवै है, परोक्ष नहीं होता.

और एकदेशीका यह मत है:—श्रवण, मनन, निदिध्यासनसहित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै है. केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै; अपरोक्ष नहीं. केवल वाक्यतैं ही अपरोक्षज्ञान होवै, तौ श्रवण, मनन, निदिध्यासन व्यर्थ

होवैंगे. यद्यपि सिद्धांतमतमैं केवलवाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै है; औ श्रवणादिकोंसैं असंभावना विपरीतभावनाका नाश होवै है; यातैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं, तथापि जो वस्तु का अपरोक्षज्ञान होवै, ताके विषे असंभावना विपरीतभावना किसीकोभी होवै नहीं. यातैं केवल वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान- वादीके सिद्धांतमैं "तत्त्वमसि" आदिक वाक्योंसैं अपरोक्ष- ज्ञान ब्रह्मका होनेसैं पीछे असंभावना विपरीतभावना संभवै नहीं. यातैं श्रवणादिक साधन व्यर्थ होवैंगे. औ केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै हैं. श्रवण, मनन, निदिध्यासन कियेतैं अपरोक्षज्ञान होवै है. या मतमैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं. यह वहुत ग्रंथकारोंका मत है, तथापि यह मत समीचीन नहीं. काहेतैं:—

शब्दका यह स्वभाव है:—जो वस्तु व्यवहित होवै, ताका शब्दसैं परोक्षही ज्ञान होवै है.किसी प्रकारतै व्यवहितवस्तुका शब्दसैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं. जैसे व्यवहितस्वर्गका औ इंद्रादिक देवोंका, शास्त्ररूपी शब्दतैं परोक्षही ज्ञान होवै है; औ जो वस्तु अव्यवहित होवै, ताका शब्दसैं अपरोक्षज्ञान औ परोक्षज्ञान दोनों होते हैं. जहां अव्यवहितवस्तुकूं शब्द अस्तिरूपतैं बोधन करैं, तहां अव्यवहितकाभी परोक्षज्ञान होवे है; जैसे "दशम पुरुष है." इस रीतिसैं अस्तिरूपतैं बोधन किया जो अव्यवहित दशम ताका शब्दसैं परोक्षही ज्ञान हुवा है. औ जहां अव्यवहितवस्तुकूं "यह है" इस रीतिसैं शब्द बोधन करै, तहां अव्यवहितका, शब्दसैं अपरोक्षज्ञानही होवै है, परोक्ष नहीं. जैसे "दशमा तूं है" इस रीतिसैं शब्दने बोधन किया जो दशमा ताका अप-

रोक्षज्ञानही हुवा है; तैसे ब्रह्म सर्वका आत्मा होनेतैं अत्यंत अव्यवहित है; ताकूं अवांतरवाक्य अस्तिरूपतैं बोधन करै है, यातैं अव्यवहितब्रह्मकाभी अवांतरवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है. औ "दशमा तूं है" इस वाक्यकी सदृश श्रोताका आत्मरूपकरिके ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै है, यातैं महावाक्यतैं अव्यवहितब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै नहीं, किंतु अपरोक्षज्ञानही होवै है.

और जो कह्या:—"जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषे असंभावना विपरीतभावना होवै नहीं. यातैं श्रवणादिक विफल होवैंगे" सो शंका बनै नहीं. काहेतैं? जैसे राजाकूं मच्छुका नेत्रसैं अपरोक्षज्ञान हुवेतैंभी विपरीतभावना दूर हुई नहीं; तैसे महावाक्यतैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवै है; परंतु जाकी बुद्धिमैं असंभावना विपरीतभावना दोष होवै, ताका दोषरूप कलंकसहित ज्ञान फलका हेतु नहीं, दोषकी निवृत्तिके वास्ते श्रवणादिक करै. 'जाकी बुद्धिमैं दोष नहीं, सो न करै' इस रीतिसे ज्ञानके साधन महावाक्य है; श्रवणादिक नहीं. परंतु ज्ञानका प्रतिबंधक जो दोष है, ताके नाशक हैं; यातैं श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं. श्रवणादिकोंके हेतु विवेकादिक हैं. यातैं विवेकादिक ज्ञानके साधन कहिये हैं, विवेकादिक चारसाधनसंयुक्त जो पुरुष है, सो अधिकारी है ॥ २३ ॥

अथ सम्बन्धवर्णन.

दोहा ।

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रंथ ब्रह्म संबंध ॥
प्राप्य प्रापकता कहत हैं, फल अधिकृतको फंद ॥२४॥

टीकाः–ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव संबंध है. ग्रंथ प्रतिपादक है, औ विषय प्रतिपाद्य है. जो प्रतिपादन करनेवाला होवै सो प्रतिपादक कहिये है. जो प्रतिपादन करनेकूं योग्य होवै सो प्रतिपाद्य कहिये है. अधिकारीका औ फलका प्राप्यप्रापकभावसंबंध है. फल प्राप्य है, औ अधिकारी प्रापक है. जो वस्तु प्राप्त होवै, सो प्राप्य कहिये है. जाकूं प्राप्त होवै, सो प्रापक कहिये है. अधिकारीका और विचारका कर्तृकर्तव्यभावसंबंध है. अधिकारी कर्ता है, औ विचार कर्तव्य है. जो करनेवाला होवै, सो कर्ता कहिये है, औ करनेयोग्य होवै, सो कर्तव्य कहिये है. ग्रंथका औ ज्ञानका जन्यजनकभाव संबंध है. विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है; औ ज्ञान जन्य है. जो उत्पत्ति करनेवाला होवै, सो जनक कहिये है; जाकी उत्पत्ति होवै, सो जन्य कहिये है. इससैं आदिलेके औरभी संबंध जान लेना ॥२४॥

अथ विषयवर्णन.

दोहा ।

जीवब्रह्मकी एकता, कहत विषय जन बुद्धि ॥
तिनको जे अंतर लहैं, ते मतिमंद अबुद्धि ॥२५॥

टीका–जीवब्रह्मकी एकता इस ग्रंथका विषय है. जो प्रतिपादन करिये, सो विषय कहिये है, या ग्रंथविषे जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करिये है, यातैं सो एकता ग्रंथका विषय है. सो एकता सर्व वेदका वचन पतिपादन करैं हैं यातैं जीवब्रह्मका भेद कहै हैं, ते पुरुष शठ हैं, औ वेदके विरोधी हैं ॥ २५ ॥

अथ प्रयोजनवर्णन.

दोहा ।

परमानंद स्वरूपकी, प्राप्ति प्रयोजन जानि ॥
जगत समूल अनर्थ पुनि, है ताकी अतिहानि ॥२६॥

टीकाः—प्रपंचका कारण जो अज्ञान और प्रपंच, जन्म-मरणरूपी दुःखका हेतु है, यातैं अनर्थ कहिये है. ता अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति, मोक्ष कहिये है; सो ग्रंथका परमप्रयोजन है. औ अवांतरप्रयोजन ज्ञान है. जाविषे पुरुषकी अभिलाषा होवै, सो परमप्रयोजन कहिये है; औ ताकूं पुरुषार्थभी कहिये है. सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्तिविषे औ सुखकी प्राप्तिविषे सर्वपुरुषकी होवै है, सोई मोक्षका स्वरूप है. यातैं परमप्रयोजन मोक्ष है; ज्ञान नहीं है. काहेतैं ? सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिका साधन तौ ज्ञान है औ सुखकी प्राप्ति वा दुःखकी निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं. यातैं अवांतरप्रयोजन ज्ञान है. जा वस्तुद्वारा परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै, सो अवांतरप्रयोजन कहिये है; ऐसा ज्ञान है. काहेतैं ? ग्रंथकरके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै है, यातैं ज्ञान अवांतरप्रयोजन है ॥ २६ ॥

शंकापूर्वक उत्तरका कवित्त.

जीवको स्वरूप अति आनंद कहत वेद,
ताकूं सुखप्राप्तिको असंभव वखानिये ।
आगे जो अप्राप्त वस्तु ताकी प्राप्ति संभवत,
नित्यप्राप्त वस्तुकी तौ प्राप्ति किमि मानिये ॥

ऐसी शंकालेश आनि कीजे न विश्वासहानि,
गुरुके प्रसादतें कुतर्क भले भानिये ।
करको कंकन खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं,
ज्ञानतें मिलत इमि प्राप्तप्राप्ति जानिये ॥ २७ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या था "अनर्थकी निवृत्ति, औ परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रजोजन है," सो बनै नहीं. काहेतें ? सर्व वेदमैं जीवकूं परमानंदस्वरूप वर्णन कऱ्या है, औ जो तुम अंगीकारभी करो हो, औ जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्ति संभवे है; सदा प्राप्तवस्तुकी प्राप्ति सर्वथा बनै नहीं. यातैं सदा परमानंदस्वरूप आत्माकूं परमानंदकी प्राप्ति कहना सर्वप्रकारते असंभव है; ऐसी कोऊ शंका करै है.

ता शंकाकूं सुनके ग्रंथके प्रयोजनमैं विश्वास दूर नहीं करना; किंतु, आत्मविद्याका उपदेश करनेवाला जो गुरु है तिसकी कृपातैं शंकारूपी जो कुतर्क है, सो दृष्टांतसैं दूर कर देना. सो दृष्टांत कहिये हैंः—जैसे काहूके हाथमैं कंकन होवै, ताकूं ऐसा भ्रम हो जावै कि "मेरे हाथका कंकन खोय गया." तब वाकूं किसीके कहेसै कंकनका ऐसा ज्ञान हो जावै, जो—" मेरा कंकन हाथमें है." तब वह ऐसे कहै हैः—" मेरा कंकन मिल गया है." इस रीतिसैं प्राप्त जो कंकन है, ताकीभी प्राप्ति कहिये है. तैसै परमानंदस्वरूप आत्माविषे अविद्याके बलसैं ऐसी भ्रांति होवै हैः— "आत्मा परमानंदस्वरूप नहीं है, किंतु परमानंदस्वरूप ब्रह्म है. ता ब्रह्मका औ मेरा वियोग हो गया है, उपासनाकरके

ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होऊंगा " इस रीतिकी भ्रांति बहुत मूर्ख प्राणियोंको होइ रही है. यद्यपि बहुत पंडितभी ऐसे कहे हैं, तथापि वे मूर्खही हैं. काहेतैं ? जो जीवब्रह्मका वियोग अंगीकार करै हैं, ते मूर्ख कहिये हैं; तिन पुरुषनकूं उत्तमसंस्कारसैं जो कदाचित् ब्रह्मज्ञानी आचार्यसैं वेदांतग्रंथके श्रवणकी प्राप्ति होय जावै, तब सुने अर्थकूं निश्चय करके कहै हैं:— "परमानंद हमारेकूं ग्रंथ औ आचार्यकी कृपासैं प्राप्त भयाहै" यह उनका कहनेका अभिप्राय है. आत्मा तौ परमानंदस्वरूप आगेभी था, परंतु " मेरा आत्मा परमानंदरूप है " इस रीतिसे भान नहीं होवै था; यातैं अप्राप्तकी नाईं था. आचार्यद्वारा ग्रंथश्रवणसैं परमानंदका बुद्धिविषे भान होवे है, यातैं परमानंदकी प्राप्ति कहै हैं. इस रीतिसैं प्राप्तकीभी प्राप्ति बननेतैं, परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रंथका प्रयोजन संभवै है. जैसैं प्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है, तैसैं:—

नित्यनिवृत्तिकी निवृत्तिभी प्रयोजन संभवे है. दृष्टांतः— जेवरीविषे सर्प नित्यनिवृत्त है औ जेवरीके ज्ञानसैं निवृत्त होवै है, तैसैं आत्माविषे संसार नित्यनिवृत्त है, ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसे होवे है, यातै नित्यनिवृत्तिकी निवृत्ति, औ नित्यप्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है ॥ २७ ॥

"कारणसहित जगत्की निवत्ति, औ परमानंदकी प्राप्ति, ग्रंथका प्रयोजन है," यह पूर्व कह्या, सो संभवै नहीं. काहेतैं? निवृत्ति नाम ध्वंसका है, ध्वंस औ नाश दोनों पर्यायशब्द हैं; सो नाश अभावरूप है, यातैं मोक्षविषे भावरूपता औ अभावरूपता, दोनों प्रतीत होवै हैं. अनर्थकी निवृत्ति कहनेसैं अभावरूपता प्रतीत होवै है, औ परमानंदकी प्राप्ति कहनेसैं

भावरूपता प्रतीत होवै है, सो दोनों एक पदार्थविषे बने नहीं. काहेतैं ? भावरूपता औ अभावरूपता दोनों आपसमैं विरोधी हैं; जो विरोधी धर्म होवैं, सो एक कालमैं एक वस्तुविषे रहैं नहीं, यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै नहीं ऐसी कोऊ शंका करै है.

ता शंकाके उत्तरका दोहा ।

अधिष्ठानतैं भिन्न नहीं, जगतनिवृत्ति बखान ॥
सर्पनिवृत्ती रज्जु जिमि, भये रज्जुको ज्ञान ॥ २८ ॥

टीकाः—कारणसहित जगत्की निवृत्ति अधिष्ठानब्रह्मरूप है; वातैं पृथक् नहीं. जैसे सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठानजेवरीरूप है. "सारे कल्पित वस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, वातैं पृथक् नहीं" यह भाष्यकारका सिद्धांत है. यातैं इस स्थानविषे अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है. काहेतैं ? जो सब अनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो ब्रह्म भावरूप है; यातैं अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनेतैं ग्रंथका प्रयोजन बनै है, यह वार्ता सिद्ध भई ॥ २८ ॥

दोहा ।

जो जन प्रथमतरंग यह, पढै ताहि तत्काल ॥
करहु मुक्त गुरुमूर्ति है, दादू दीनदयाल ॥ २९ ॥

॥ इति अनुबंधसामान्यनिरूपणं नाम प्रथमस्तरंगः समाप्तः ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीविचारसागरे

द्वितीयस्तरंगः २ ।

अथ अनुबंधविशेषनिरूपणम् ।

दोहा ।

याके प्रथमतरंगमैं, किय अनुबंधविचार ।
कहुँ द्वितीयतरंगमैं, तिनहींको विस्तार ॥ १ ॥

टीकाः—चारसाधनयुक्त अधिकारी कह्या. तिन चार साधनोंमैं मुमुक्षुता गिनी है. मोक्षकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है. कारणसहित जगत्की निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है. ताके विषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षका अंश, ताकूं कोऊ चाहै नहीं, यह वार्त्ता—

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है ॥१॥

अथ अधिकारीखंडन—पूर्वपक्ष.

दाहा ।

मूलसहित जगध्वंसकी, कोउ करत नहिं आश ॥
किंतु विवेकी चहत हैं, त्रिविधदुःखको नाश ॥ २ ॥

टीकाः—मूल अविद्यासहित जो जगत्का ध्वंस कहिये निवृत्ति, ताकी आश कहिये इच्छा, कोऊ पुरुष करै नहीं है. किंतु कहिये कहा करै है ? तीन प्रकारके जो दुःख हैं, तिनका नाश विवेकीपुरुष चाहै है. याका यह अभिप्राय

हैः—दुःख तीन प्रकारके हैं. एक तौ अध्यात्मदुःख है, दूसरा अधिभूतदुःख है, और तीसरा अधिदैवदुःख है. रोगक्षुधादिकोंसे जो दुःख होवै, सो अध्यात्मदुःख कहिये है. चोर-व्याघ्र-सर्पादिकोंसैं जो दुःख होवै, सो अधिभूत-दुःख कहिये है. यक्ष-राक्षस-प्रेत-ग्रहादिक, और शीत-वात-आतपतैं जो दुःख होवै, सो अधिदैवदुःख कहिये है. इसरीतिसैं तीन भाँतिके जो दुःख हैं, तिनके नाशकी सर्वपुरुषोंकूं इच्छा है. दुःखसैं भिन्न जो पदार्थ हैं, तिनके नाशकी विवेकी पुरुष इच्छा करै नहीं. यातैं अज्ञानसहित सकलजगत्की निवृत्तिकी काहूकूं इच्छा बनै नहीं.

और जो सिद्धांती ऐसैं कहैः—"यद्यपि सकल पुरुष दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करै हैं, तथापि अज्ञानसहित सर्वजगत्की निवृत्तिविना दुःखोंकी निवृत्ति होवै नहीं. यातैं दुःखनिवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकूंभी चाहै है." सो बनै नहीं. काहेतैंः—

जो आयुर्वेदमें औषध कहे हैं, तिनतैं रोगजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है. औ भोजनसैं क्षुधाजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं अपने अपने उपायनतैं सर्वदुःखोंकी निवृत्ति होवै है. यातैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिविनाभी दुःखोंकी निवृत्ति बनै है. दुःखोंकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकी चाहना बनै नहीं. "कारणसहित जगत्की निवृत्ति, औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है." ताके विषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके अंशकीभी इच्छा काहूकूं बनै नहीं; यह वार्ता प्रथमदोहाविषे कही ॥ २ ॥

ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकीभी इच्छा काहूकूं बनै नहीं; यह वार्त्ता——

पूर्वपक्षी कहै है.

दोहा ।

किय अनुभव जा वस्तुको, ताकी इच्छा होइ ॥
ब्रह्म नहीं अनुभूत इमि, चहै न ताकूं कोइ ॥ ३ ॥

टीका–जा वस्तुका अनुभव कहिये ज्ञान होय, ता वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है. जा वस्तुका ज्ञान होवै नहीं, ताकी प्राप्तिकी इच्छाभी होवै नहीं. जैसे अन्यदेशके अनंतपदार्थ अज्ञात हैं, तिनकी प्राप्तिकी इच्छा काहू पुरुषकूं होवै नहीं, औ अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मका ज्ञान है नहीं, औ जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नहीं, किंतु मुक्त है; ताकूं ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. यातैं वेदांतश्रवणतैं पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. इस रीतिसैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष, ताकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं. यातैं मुमुक्षु कोऊ है नहीं ॥ ३ ॥

अन्य रीतिसैं अधिकारीका अभाव

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है ।

दोहा ।

चहत विषयसुख सकल जन, नहीं मोक्षको पंथ ॥
अधिकारी यातैं नहीं, पढै सुनै जो ग्रंथ ॥ ४ ॥

टीकाः——सर्वपुरुष विषयसुखकूं चाहै है, और जो कोई

सकलविषयनका त्याग करके तपविषे आरूढ है, सोभी परलोकके उत्तमभोगनकी इच्छा करके नानाक्लेश संहारै है. यातैं इस लोकका, अथवा परलोकका विषयसुख सर्व चाहै हैं. सो विषयसुख मोक्षविषे है नहीं; यातैं मोक्षका पंथ कहिये साधन, ताकूं कोई पुरुष चाहै नहीं. इस रीतिसैं मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता बनै नहीं, औ सकलपुरुषनकूं विषयसुखकी इच्छा होवै है; यातैं वैराग्य, शम, दम, उपरतिभी काहूविषे बनै नहीं. यातैं चतुष्टयसाधनसहित अधिकारीका अभाव होनेतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है ॥ ४ ॥

अथ विषयखंडन–पूर्वपक्ष.

दोहा ।

जीवब्रह्मकी एकता, कह्या विषय सो कर ॥
क्लेशरहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेशको मूर ॥ ५ ॥

टीकाः–पूर्व कह्या जो " जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है" सो संभवै नहीं. काहेतैं ? ब्रह्म तौ "अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश" इन पंच क्लेशतैं रहित है, औ विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीयभेदरहित है. काहेतैं ? ब्रह्मके सजातीय और ब्रह्म है नहीं, औ जीवविषे सर्व क्लेश हैं; औ परिच्छिन्न है; औ जीव नाना हैं. काहेतैं ? जितने शरीर हैं, उतने जीव हैं. जो सर्व शरीरविषे जीव एक होवै, तौ एक शरीरमैं सुख अथवा दुःख होनेतैं सर्वशरीरविषे सुख औ दुःख हुवा चाहिये.

औ जो वेदांती कहै हैं–" सुखसैं आदि लेके अंतःकर

णके धर्म हैं, सो अंतःकरण नाना हैं; यातैं एकके सुखी दुःखी होनेतैं सर्व सुखी दुःखी नहीं होवै हैं. और साक्षी सुख-दुःखतैं रहित है, एक है, औ सर्वक्लेशतैं रहित है, औ ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनै है" सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतैं ?—

जो कर्त्ता भोक्ता जीव है, तिसतैं भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान है. औ जो साक्षी अंगीकारभी करो, सोभी एक बनै नहीं; नानासाक्षी मानने होवैंगे. काहेतैं ? यह वेदांतका सिद्धांत है:—"अंतःकरण औ सुखदुःखसैं आदि लेके अंतःकरणके धर्म ये इंद्रिय औ अंतःकरणके विषय नहीं, किंतु साक्षिके विषय हैं." काहेतैं ? इंद्रिय तौ पंचीकृतभूतनकूं विषय करै हैं. यामैं इतना भेद है:--नेत्रइंद्रिय तौ रूपवान् जो वस्तु है ताके रूपकूं औ रूपके आश्रयकूं, दोनोंकूं विषय करै. जैसै घटके नीलपीतादिक रूपकूं, औ तिस रूपके आश्रय घटकूं, नेत्रइंद्रिय विषय करै है. औ त्वचा इंद्रियभी स्पर्शकूं, औ ताके आश्रयकूं, दोनोंकूं विषय करै है. औ रसना, घ्राण, श्रवण, ये तीन तौ रस, गंध, शब्दमात्रकूं विषय करै हैं; तिनके आश्रयकूं विषय करैं नहीं. यातैं इन तीनोंसैं तौ अंतःकरणका ज्ञान बनै नहीं. औ नेत्रसैं तथा त्वचासैं अंतःकरणका ज्ञान बनै नहीं. काहेतैं ? पंचीकृतभूत अथवा पंचीकृतभूतनका कार्य; जो रूपवान् अथवा स्पर्शवान् होवै, सो नेत्र औ त्वचाका विषय होवै है. अंतःकरण अपंचीकृतभूतनका कार्य है, यातैं नेत्र औ त्वचाकाभी विषय नहीं. इसी कारणतैं अपंचीकृतभूतनका कार्य नेत्रइंद्रियभी नेत्रका विषय नहीं है. औ बाह्यवस्तु इंद्रियका विषय होवै है; औ अंतःकरण इंद्रियकी अपेक्षातैं अंतर है, यातैंभी इंद्रियनका विषय नहीं.

औ अंतःकरणकी वृत्तिकाभी अंतःकरण विषय नहीं. काहेतैं ? अंतःकरण वृत्तिका आश्रय है, यातैं अंतःकरण अपनी वृत्तिका विषय बनै नहीं. जैसैं अग्नि दाहका आश्रय है, सो दाहका विषय नहीं होवै है; किंतु अग्निसैं भिन्न जो काष्ठसैं आदि लेके वस्तु हैं, सो दाहका विषय होवै हैं. तैसैं अंतःकरणसैं भिन्न जो वस्तु हैं, सो अंतःकरणजन्य वृत्तिके विषय हैं; औ अंतःकरण नहीं.

तैसैं अंतःकरणके धर्मभी अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं;काहेतैं ? अंतःकरणकूं विषय करनेके वास्ते जो अंतःकरणकी वृत्ति होवै, तो अंतःकरणके धर्म जो सुखादिक हैं, तिनकूंभी विषय करै.सो अंतःकरणकूं विषय करनेवाली वृत्ति तौ अंतःकरणके सन्मुख होवै नहीं, यातैं अंतःकरणके धर्म अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं. औ यह नियम है:—जो वृत्तिके आश्रयसैं किंचित् दूरि वस्तु होवै, सो वृत्तिका विषय होवै है. जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसैं अत्यंत समीप होवै, सो वृत्तिका आश्रय जो नेत्र, ताके अत्यंतसमीप अंजन, नेत्रकी वृत्तिका विषय नहीं. तैसैं अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय जो अंतःकरण, ताके अत्यंतसमीप जो सुखसैं आदिलेके धर्म, सो अंतःकरणकी वृत्तिके विषय बनै नहीं.इसरीतिसैं धर्मसहित अंतःकरणका इंद्रियतैं अथवा अपनेतैं भान बनै नहीं किंतु साक्षीके विषय हैं.

सो साक्षी एक अंगीकार करैं, तौ जैसैं एक अंतःकरणके सुखदुःखका साक्षीसैं भान होवै है, तैसैं सर्वके सुखदुःखका भान हुवा चाहिये. यातैं साक्षी नाना हैं. जब नाना साक्षी अंगीकार करिये, तब दोष नहीं. काहेतैं ? जा साक्षीकी

उपाधि अंतःकरण है, ता साक्षीसैं अपनी उपाधिके धर्मका भान होवै है. यातैं सर्वके सुखदुःखका भान होवै नहीं. इस रीतिसैं नाना जो साक्षी, तिनकी एक ब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं ॥ ५ ॥

अथ प्रयोजनखंडन-पूर्वपक्ष.

दोहा।

बंधनिवृत्ती ज्ञानतैं, बनै न विन अध्यास ॥
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञानकी आस ॥ ६ ॥

टीकाः—"अहंकारसैं आदि लेके जो अनात्मवस्तु है, सो बंध कहिये है." सो बंध जो अध्यासरूप होवै, तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै, औ अध्यासरूप नहीं होवै, तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानका यह स्वभाव है:--जा वस्तुका ज्ञान होवै, ताके विषे अध्यास औ अज्ञान, तिनकूं दूर करै है; जैसैं जेवरीका ज्ञान जेवरीविषे सर्प अध्यासकूं, औ जेवरीके अज्ञानकूं दूर करै है. भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु औ भ्रांतिज्ञान, ताका नाम अध्यास है. जाके विषे जो वस्तु मिथ्या नहीं है, किंतु सत्य है; ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं. तैसैं आत्माविषे अहंकारसैं आदिलेके बंध जो अध्यास कहिये मिथ्या होवै, तौ ज्ञानसैं निवृत्ति होवै. सो आत्माविषै मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं, औ बंध प्रतीति होवै है, यातैं बंध सत्य है.ता सत्यसंबंधकी ज्ञानसैं निवृत्तिकी आशा निष्फल है ॥ ६ ॥

अथ अध्याससामग्रीनिरूपण.

दोहा—सत्यवस्तुके ज्ञानतैं, संस्कार इक जान ॥
त्रिविध दोप अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान ॥ ७ ॥

टीकाः—सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार, औ तीन प्रकारके दोष; प्रमाताका दोष, प्रमाणका दोष, प्रेमयका दोष, औ अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान; इतनी अध्यासकी सामग्री है. याबिना अध्यास होवै नहीं. जैसे सीपीमैं रूपेका, औ जेवरीमैं सर्पका अध्यास होवै है, सो जिस पुरुषने सत्य रूपा औ सर्प देखा है, ताकूं होवै है, औ जाकूं सत्य रूपेका औ सर्पका ज्ञान नहीं, ताकूं होवै नहीं. यातैं सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं. औ सीपीमैं सर्पका; जेवरीमैं रूपेका अध्यास होवै नहीं, यातैं प्रमेयविषे सादृश्यदोष अध्यासका हेतु है. इसरीतिसै प्रमाताविषे लोभ-भयसे आदि लेके, औ नेत्रादिक प्रमाणविषे पित्तके मलसैं आदि लेके जो दोष, सो अध्यासके हेतु हैं; औ सीपीका "इदं" रूपकरके सामान्य ज्ञान होवै, औ "यह सीपी है" ऐसा विशेषज्ञान नहीं होवै. जब अध्यास होवै है सीपी है ऐसा विशेषरूपकरिके ज्ञान होवै. जब अध्यास होवै नहीं औ सामान्यरूपकरके ज्ञान नहीं होवै, तौभी अध्यास होवै नहीं. यातैं अधिष्ठानका विशेषरूपकरिके अज्ञान, औ सामान्यरूपकरके ज्ञान, अध्यासका हेतु है. इतनी अध्यासकी सामग्री है. इनमैं कोईएक नहीं होवै तौभी अध्यास होवै नहीं. जैसे कुलाल, चक्र, दंड, मृत्तिका घटकी सामग्री है. कोईएक नहीं होवै तो घट होवै नहीं. तैसैं अध्यासभी सारी सामग्रीसें होवै है.

औ बंधके अध्यासमें एकभी कारण है नहीं. बंध कहूं सत्य होवै, तौ ताके ज्ञानजन्य संस्कारतैं आत्माविषे मिथ्याबंध प्रतीत होवैं; सो सिद्धांतमें आत्मासैं भिन्न कोई सत्यवस्तु है नहीं, यातैं सत्यबंधके ज्ञानजन्य संस्कारका अभाव होनेतैं, आत्माविषे बंधका अध्यास बनै नहीं.

तैसैं आत्माका औ बंधका सादृश्यभी है नहीं, उलटा तम प्रकाशकी नाईं विपरीतस्वभाव है. आत्मा प्रत्यक् है, औ बंध पराक् है. प्रत्यक् नाम अंतरका है, औ पराक् नाम बाह्यका है. आत्मा विषयी है, औ बंध विषय है. जो प्रकाश करनेवाला होवै, सो विषयी कहिये है; जाका प्रकाश करिये सो विषय कहिये है. प्रत्यक्विषे पराक्का तथा पराक्विषे प्रत्यक्का अध्यास होवै नहीं. जैसे पुत्रादिकनका औ पुत्रादिकविषे देहका अध्यास होवै नहीं. औ विषयमें विषयीका तथा विषयीमें विषयका अध्यास होवै नहीं. जैसै विषय जो घटादिक तिनविषे विषयी दीपकका, औ दीपकविषे घटादिकनका अध्यास होवै नहीं. तैसे सादृश्यके अभाव होनेतैं प्रत्यक्विषयी जो आत्मा, ताविषे पराक्विषयरूप बंधका अध्यास बनै नहीं. प्रत्यक्का औ पराक्का विरोध है. विषयका औ विषयीका विरोध है; सादृश्य नहीं. यातैं बंधका अध्यास आत्माविषे बनै नहीं.

तैसे प्रमाताके दोषका, औ प्रमाणके दोषकाभी अभाव है. काहेतैं ? प्रमातासैं आदि लेके सर्व प्रपंच अध्यास रूप है; सोई बंध है. यह वेदांतका सिद्धांत है—इस रीतिसैं बंधके अध्याससैं पूर्व प्रमाता-प्रमाणका स्वरूप असिद्ध है औ ताका दोषभी असिद्ध है. यातैं बंधका अध्यास बनै नहीं.

औ अधिष्ठानका विशेषरूपकरके अज्ञानभी बनै नहीं. काहेतैं ? जो बंधका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप है. ता स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप ब्रह्मविषे, सूर्यविषेतमकी

नाईं अज्ञान बनै नहीं.जैसे प्रकाशमान सूर्यसें तमका विरोध है,तैसे चेतनप्रकाश औ तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है. औ अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करै, तौभी बंधका अध्यास बनै नहीं.काहेतैं ? अत्यंत अज्ञातविषे तथा अत्यंतज्ञातविषे अध्यास नहीं. किंतु विशेषरूपसें अज्ञात, औ सामान्यरूपसे ज्ञातविषे होवै है, औ ब्रह्म सामान्यविशेषभावसें रहित है, निर्विशेष है, यह सिद्धांत है. यातें विशेषरूपसे अज्ञात, औ सामान्यपरूसें ज्ञात, ब्रह्म बनै नहीं, औ अध्यासके लोभसें ब्रह्मविषे सामान्यविशेषभाव अंगीकार करौगे, तौ सिद्धांतका त्याग होवैगा. इस रीतिसैं निर्विशेष जो प्रकाशरूप ब्रह्म, ताका विशेषरूपसें अज्ञान, औ सामान्यरूपसें ज्ञानका अभाव होनेतैं ताके विषे अध्यास बनै नहीं; यातें ब्रह्मविषे बंध अध्यासरूप है. यह कहना बनै नहीं, किंतु बंध सत्य है. ता सत्यबंधकी ज्ञानसें निवृत्तिका असंभव है. यातें ज्ञानद्वारा मोक्षरूप प्रयोजन ग्रंथका बनै नहीं. औ ज्ञानसें मोक्षका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन नहीं. किंतु कर्मसें मोक्ष होवै है. यह वार्ता एकभाविकवादकी रीतिसें प्रतिपादन करै हैं.

दोहा ।

सत्यबंधकी ज्ञानतें, नहीं निवृत्ति सयुक्त ॥
नित्यकर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥ ८ ॥

टीकाः—सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्ति माननी, सयुक्त कहिये युक्तिसहित नहीं; किंतु अयुक्त है. यातैं जो पुरुष

मुक्त हुवा चाहै, सो संतत कहिये निरंतर नित्यकर्म करै. याका यह अभिप्राय है.—

कर्म दो प्रकारका है; एक विहित है, औ एक निषिद्ध है. पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्त जाका स्वरूप वेदने बोधन किया है, सो विहित कर्म कहिये है. औ पुरुषकी निवृत्ति जासों बोधन करी है, सो निषिद्ध कर्म कहिये है. औ स्वभावसिद्ध जो क्रिया है, सो कर्म नहीं. काहेतैं ? जो वेदने प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन किया है, सो कर्म कहिये है. उदासीनक्रिया कर्म नहीं. यातैं दो प्रकारका कर्म है. तीन प्रकारका नहीं.

विहित कर्म चार प्रकारका है.—एक नित्य है, औ नैमित्तिक है, काम्य है औ प्रायश्चित है. पापनाशके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो प्रायश्चित कहिये है. जैसे प्रमादसें द्रव्यके ग्रहणजन्य जो यतीकूं पाप ताके नाशके निमित्त द्रव्यका त्याग, औ तीन उपवास हैं. फलके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो काम्य कहिये है. जैसे वृष्टिकामकूं कारीरी याग है, औ स्वर्गकामकूं अग्निहोत्र सोमयागसे आदि लेके हैं. जा कर्मके नहीं कियेसें पाप होवै, औ कियेसें पुण्यपापरूप फल होवै नहीं, औ सदा जाका विधान नहीं, किंतु किसी निमित्तकूं लेके विधान किया होवै, सो कर्म नैमित्तिक कहिये है; जैसे ग्रहणश्राद्ध है. औ अवस्थावृद्ध, जातिवृद्ध, आश्रमवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध, ज्ञानवृद्धपुरुषके आगमनतैं उत्थानरूप कर्म है. विद्याशब्दसे शास्त्रज्ञानका ग्रहण है, औ ज्ञानशब्दसे अपरोक्षविद्याका ग्रहण है. पूर्वपूर्वसे

उत्तरउत्तर उत्तम हैं. जाके नहीं कियेसें पाप होवै, कियेसें फल होवै नहीं औ सदा जाका विधान होवै, सो नित्यकर्म कहिये है; जैसें स्नानसंध्यादिक हैं. इस रीतिसे चार प्रकारका विहित औ निषिद्ध मिलके पांच प्रकारका कर्म है.

मोक्षकी इच्छावान् पुरुष काम्य औ निषिद्ध कर्म करै नहीं. काहेतें ? काम्यकर्मसें उत्तमलोकक्ूं जावे है, औ निषिद्धसें नीचलोकक्ूं जावै है, यातैं दोनोंको त्याग करै, औ नित्य कर्म सदा करै. औ नैमित्तिकका जब निमित्त होवै, तब नैमित्तिकभी करै. काहेतें ? नित्यनैमित्तिककर्म नहीं करै तो पाप होवैगा, ता पापसैं नीचयोनिक्ूं प्राप्त होवैगा; यातैं पापके रोकनेके वास्ते नित्यनैमित्तिक कर्म करै. नित्य नैमित्तिककर्मका और फल नहीं, यही फल है. जो तिनके नहीं करनेसैं पाप होवे है, सो तिनके करनेसै होवै नहीं. यातैं मुमुक्षु नित्यनैमित्तिककर्म अवश्य करै.

और जो कदाचित् प्रमादसें निषिद्धकर्म होय जावै, तौ ताका दोष दूर करनेक्ूं प्रायश्चित्त करै. जो निषिद्धकर्म नहीं किया होवै, तौभी जन्मांतरके जो पाप हैं, तिनके दूर करनेके वास्ते प्रायश्चित्तकर्म करै. परंतु इतना भेद है:—प्रायश्चित्त दो प्रकारका है; एक तौ असाधारण है, औ एक साधारण है जो किसी पापविशेषके दूर करनेके वास्ते शास्त्रने विधान किया होवै, सो असाधारणप्रायश्चित्त कहिये है; जैसे पूर्व कह्या उपवास है, औ सर्वपापके दूर करनेके वास्ते शास्त्रने जो विधान किया कर्म सो साधारणप्रायश्चित्त कहिये है; जैसे गंगास्नान औ ईश्वरके नामउच्चारण

है, इसतें आदि लेके औरभी जान लेने. इस रीतिसें दोप्रकारके प्रायश्चित्त हैं. जो ज्ञातपाप होवै, तौ तिस पापका नाशक जो असाधारण प्रायश्चित्त शास्त्रने बोधन किया है, ताकूं करै. औ जो जन्मांतरके अज्ञातपाप हैं तिनके दूर करनेके वास्ते साधारणप्रायश्चित्त करै. काहेतें? असाधारणप्रायश्चित्तका यह स्वभाव है—जा पापका नाश करनेके वास्ते शास्त्रने जो प्रायश्चित्त विधान किया है, सो पाप प्रायश्चित्तसैं दूर होवै है, और नहीं. औ जन्मांतरके पापका ऐसा ज्ञान है नहीं कि, कौनसा पाप है, किस प्रायश्चित्तसें दूर होवैगा यातें साधारण प्रायश्चित्त करै.

साधारण प्रायश्चित्तसैं सर्वपाप दूर होवै हैं. यद्यपि गंगास्नानसैं आदि लेके जो साधारणप्रायश्चित्त कहे, सो केवल प्रायश्चित्तरूप नहीं, किंतु काम्यरूप औ प्रायश्चित्तरूप हैं. काहेतें? "गंगास्नानसें उत्तमलोककी प्राप्ति" शास्त्रमें कही है. तैसें "ईश्वरके नामउच्चारणसेभी उत्तमलोककी प्राप्ति" कही है. याते काम्यरूप हैं, औ पापके नाशक हैं, यातें प्रायश्चित्तरूप हैं. जैसें अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापका नाशक है, औ स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है, तैसें गंगास्नानादिक हैं, केवल प्रायश्चित्त नहीं. यातें गंगास्नानादिकनतैं उत्तमलोककी प्राप्ति होवै है, सो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं. तथापि जाकूं उत्तमलोककी वांछा है, ताकूं तौ गंगास्नानादिक, पापनाश करके उत्तमलोककूं प्राप्त करै हैं. जाकूं लोककी कामना नहीं है, ताके केवल पापहीके नाशक हैं; यातैं कामनासहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं. लोककामनासैं

विना अनुष्ठान किये केवल प्रायश्चित्तरूप हैं. जैसें वेदांतमतमैं संपूर्ण कर्म सकामपुरुषकूं संसारके हेतु हैं, औ निष्कामकूं अंतःकरणकी शुद्धिकरके मोक्षके हेतु हैं, तैसें एकही गंगास्नान तथा ईश्वरका नामउच्चारण सकामकूं तौ काम्यरूप प्रायश्चित्त है, औ निष्कामकूं केवल प्रायश्चित्तरूप है. यातैं मुमुक्षु साधारण प्रायश्चित्त करै. इस रीतिसैं जन्मांतरके संपूर्ण पापका ज्ञानसैं बिनाही नाश होवै है.

तैसे जन्मांतरके काम्यकर्मभी मुमुक्षुके वंध्याके समान हैं; फलके हेतु नहीं. काहेतैं? जैसे कर्मके अनुष्ठानकालविषे पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदांतमतमैं अंगीकार करा है, इच्छासहित अनुष्ठान किये कर्म स्वर्गादि फलके हेतु नहीं; यह वेदांतका सिद्धांत है. तैसे कर्मकी सिद्धिसैं अनंतरभी पुरुषकी इच्छा फलका हेतु है. सो पुरुषकी इच्छा जिस कालमें पुरुष मुमुक्षु हुवा तब दूर होगई. यातें जन्मांतरके काम्यकर्मभी फलके हेतु नहीं. जैसे, किसी पुरुषने धनकी प्राप्तिकी इच्छातैं धनी पुरुषका आराधन किया होवै ता धनीके आराधनसैं अनंतरभी जो धनकी इच्छा दूर हो जावै, तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवै नहीं तैसैं, जन्मांतरके काम्यकर्मकाभी मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं. इस रीतिसैं केवल कर्मसैं मोक्ष होवै है.

वर्त्तमानजन्मविषे काम्य औ निषिद्ध किये नहीं, यातैं ऊर्ध्वलोक अधोलोककूं जावै. जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध औ काम्य तिनका भोगसैं नाश होवै है. नित्य औ नैमित्तिकके नहीं करनेतैं जो पाप होवै, सो तिनके करनेतैं मुमुक्षुकूं

होवै नहीं; औ जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं, तिनका साधारण प्रायश्चित्तसैं नाश होवै है. जन्मांतरका संचित काम्यकर्म मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल देवै नहीं. यातैं मुमुक्षु नित्य नैमित्तिक औ साधारण प्रायश्चितरूप कर्म करै, औ वर्त्तमानजन्मका ज्ञात निषिद्धकर्म होवै, तौ असाधारण प्रायश्चित्त करै; अथवा नित्य औ नैमित्तिकही करै; प्रायश्चित्त नहीं करै. काहेतैं? जो संचित निषिद्धकर्म औ काम्यकर्म, सो मुमुक्षुके नाश होजावैं हैं; जैसें ज्ञानवान्के संचितकर्मका नाश वेदांतमतमैं अंगीकार किया है, तैसैं निषिद्धकाम्यका त्याग करके नित्यनैमित्तिककर्मविषे वर्त्तमान जो मुमुक्षु ताके संचित कर्मका नाश होवै है, अथवा संचित जो काम्य औ निषिद्ध, सो सारे मिलके एक जन्मका आरंभ करै हैं. यातैं मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवै है; अथवा योगीके कायव्यूहकी नाईं, एकही कालविषे सारे संचित अनंतशरीरनका आरंभ करै हैं, तिनतैं मुमुक्षु उत्तरजन्मविषे सर्वका फल भोग लेवै है. अथवा नित्य औ नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं जो क्लेश होवै है, सो जन्मांतरके संचित निषिद्धकर्मका फल है. यातैं जन्मांतरका संचित निषिद्ध और जन्मका आरंभ करै नहीं. काम्य जो संचित है सो एक जन्म अथवा एककालमैं, अनंत शरीरनका आरंभ करै है. यातैं मुमुक्षुकूं उत्तरजन्मविषे दुःखका लेशभी होवै नहीं, केवल सुखका भोग होवै है. काहेतैं? जन्मांतरके संचित जो विहितकर्म हैं, तिनतैं शरीर हुवा है. औ संचित जो निषिद्ध हैं, सो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेशतैं पूर्वजन्मविषे भोगलिये. इस रीतिसैं

प्रायश्चित्तसैं बिना केवल नित्य औ नैमित्तिककर्मके अनुष्ठा-नतैं मोक्ष होवै है ! यातैं नैमित्तिककर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै, औ नित्यकर्म संतत अनुष्ठान करै या मतकूं शास्त्रमें एकभाविकवाद कहे हैं.

यातैंभी बंधकी निवृत्तिज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं. काहेतैं ? जो वस्तु औरसें होवै नहीं, सो मुख्य प्रयोजन होवै है, जैसे रूपका ज्ञान नेत्रबिना औरसे होवै नहीं; सो रूप-ज्ञान नेत्रका प्रयोजन है. औ बंधकी निवृत्ति ग्रंथसैं बिना क-र्मतैं होवै है, यातैं बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नहीं. इस रीतिसैं ग्रंथके अधिकारी, विषय प्रयोजन बनैं नहीं.

अधिकारी आदिके अभावतैं संबंधभी बनै नहीं. काहेतैं विषयके अभावतैं ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादक-भावसंबंध बनै नहीं; अधिकारी औ फलके अभावतैं, तिनका प्राप्यप्रापकभावसंबंध बनै नहीं. अधिकारीके अभावतैं ताका औ विचारका कर्तृकर्त्तव्यभावसंबंध बनै नहीं. ज्ञानकूं निष्फ-लता होनेतैं ग्रंथका औ ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध बनै नहीं-सफलवस्तु जन्य होवे है. पूर्व कही रीतिसैं ज्ञान सफल है नहीं; औ ज्ञानके स्वरूपकाभी अभाव हैं; यातैंभी ज्ञानका औ ग्रंथका संबंध बनै नहीं. काहेतैं ? जीवब्रह्मके अभेदनिश्चय का नाम सिद्धांतमें ज्ञान है,सो अभेदनिश्चय बनै नहीं.काहेतैं जीवब्रह्मका अभेद है नहीं. यह वार्त्ता विषयके निराकरणमें पूर्व प्रतिपादन करी है. यातैं अभेदनिश्चयरूप ज्ञान बनै नहीं. इस रीतिसे अधिकारीआदिक अनुबंधनके अभावतैं ग्रंथका आरंभ बनै नहीं.

अथ पूर्वपक्षीका क्रमतैं उत्तर.

पूर्वपक्षीने प्रथम कह्या "कि मोक्षकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं. काहेतैं ? मोक्षविषे दो अंश हैं—एक तो कारणसहित जगत्की निवृत्ति मोक्षका अंश है, औ दूसरा अंश ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है; तिनविषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूपमोक्षके प्रथम अंशकी इच्छा काहूकूं है नहीं. किंतु तीन प्रकारके दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वपुरुषनकूं है. सो दुःखकी निवृत्ति अपने अपने उपायनतैं होयजावै है. यातैं मूलसहित जगत्की निवृत्तिकी इच्छावाला मुमुक्षु अधिकारी बनै नहीं." ताका

समाधान प्रथम कहै हैं.

दोहा ।

मूलसहित जगहानि विन, है न त्रिविधदुःखध्वंस ।
यातैं जन चाहत सकल, प्रथम मोक्षको अंस ॥ ९ ॥

टीकाः—मूल कहिये जगत्का कारण जो अज्ञान, औ जगत्के नाशबिना तीनप्रकारके दुःखका और उपायनतैं ध्वंस कहिये नाश होवै नहीं, औ मूलअविद्याके नाशतैं सर्व दुःख औ दुःखके कारण रोगादिक, और रोगादिकनके आश्रय शरीरादिकनका नाश होवै है, यातैं त्रिविध दुःखके नाशके निमित्त कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकूं सकलपुरुष चाहै हैं. तात्पर्य यह है:—जो सर्व औषधआदिक उपाय करनेविषे समर्थ हैं, तिनकेभी दुःख नियमकरके दूर होवैं नहीं. काहू पुरुषका रोगादिजन्य दुःख औषधादिक उपायनतैं नाश होवै है औ

काहूके दुःखका औषधआदिक उपायनतैं नाश होवै नहीं यातैं औषध आदिक उपायनतैं रोगादिजन्यदुःखकी नियम- करके निवृत्ति होवै नहीं. औ जाके औषधादिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति होवै है, ताकेभी दुःखकी उत्पत्ति फेरी होवै है. यातैं औषधआदिक उपायनतैं दुःखकी अत्यंतनि- वृत्ति होवै नहीं. जाकी निवृत्ति हुई है, ताकी फेर उत्पत्ति नहीं होवै सो अत्यंतनिवृत्ति कहिये है. औषधआदिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति नियमकरके होवै नहीं औ निवृत्ति जो दुःख ताकी फिरभी उत्पत्ति होवै है, यातैं अत्यं- तनिवृत्तिभी तिन उपायनतैं होवै नहीं. औ दुःखके सकल साधनका नाश होवै तौ सकलदुःखकी नियमकरके निवृत्ति होवै, औ दुःखके साधनका नाश हुयेतैं फिर दुःख होवै नहीं. यातैं दुःखकी निवृत्तिके निमित्त दुःखके साधनकी निवृ- त्तिकी इच्छा सर्वकूं होवै है.

सो दुःखका साधन अज्ञान औ ताका कार्य प्रपंच है यह वार्ता छांदोग्य[1]उपनिषदूमैं भूमविद्याविषे प्रसिद्ध है तहां यह प्रसंग है--"एक समय सनत्कुमारके पास नारद प्राप्त हुवे. औ नारदने कह्या:--"हे भगवन्! जो आत्मज्ञानी पुरुष है, ताकूं शोक नहीं होवै है. औ मैं शोकसहित हूं, यातैं मैं अज्ञानी हूं. मेरेकूं ऐसा उपदेश करो, जातैं मेरा अज्ञान दूर होवै." तब सनत्कुमारने नारदकूं कह्या कि, हे नारद! भूमा शोकरहित है, सुखरूप है. औ भूमासैं भिन्न सकल तुच्छ है; औ दुःखका साधन है. भूमा नाम ब्रह्मका है. इस रीतिसैं ब्रह्मसैं भिन्न जो वस्तु

१ छान्दोग्योपनिषद्के सप्तम प्रपाठकमें 'यह विषय' वर्णित है.

सो सकल दुःखका साधन कहै हैं. अज्ञान औ ताका कार्य ब्रह्मसैं भिन्न है, यातैं दुःखका साधन है, ताकी निवृत्ति हुयेसैं सर्वदुःखकी नियमकरके अत्यंतनिवृत्ति बने है. यातैं सकल दुःखकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकी चाह बनै है.

और जो पूर्वपक्षीने कह्या,-"जा वस्तुका अनुभव किया होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है. ब्रह्मका अनुभव काहूने किया है नहीं, यातैं ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकी इच्छा काहूकूं होवै नहीं." ताका

समाधान कहै हैं.

दोहा ।

किय अनुभव सुखको सबहि, ब्रह्म सुन्यो सुखरूप ।
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतैं, चहत विवेकीभूप ॥ १० ॥

टीकाः—सर्वपुरुषोंने सुखका अनुभव किया है, यातैं सुखकी इच्छा सर्वकूं है. औ "ब्रह्म नित्य सुखरूप है" ऐसा सच्छास्त्रमैं सुना है. यातैं विवेकीभूप कहिये उत्तम विवेकी सुखस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकूं चाहै है ॥ १० ॥

दोहा ।

केवल सुख सब जन चहैं, नहीं विषयकी चाह ।
अधिकारी यातैं बनै, हैं जु विवेकीनाह ॥ ११ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो "सर्वपुरुष विषयजन्य सुख चाहै हैं, विषयजन्य सुख मोक्षविषे प्राप्त होवै नहीं, किंतु जगतमैं प्राप्त होवै है, यातैं मोक्षकी इच्छावान् अ-

धिकारीके अभावतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ताकूं यह पूछे हैं:—जो कोई मुमुक्षु नहीं है, अथवा मुमुक्षु तौ है; परंतु तिनकी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं ? जो ऐसे कहैः- "मुमुक्षु नहीं है," सो बनै नहीं. काहेतैं ? सर्वपुरुष सर्व दुःखका नाश, औ नित्यसुखकी प्राप्ति चाहै हैं; सो सर्व दुःखका नाश औ सुखकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, यातैं सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं.

और कह्या जो "विषयजन्य सुख चाहै हैं," सो नहीं. किंतु सुखमात्र चाहै हैं. सो सुख विषयसैं होवै, अथवा विषयविना होवै. जो विषयजन्य सुखकूंही चाहै, तौ सुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं हुई चाहिये. सुषुप्तिका सुख विषयजन्य है नहीं, यातैं सुखमात्रकूं चाहै हैं, केवल विषयजन्यकूंही नहीं, उलटा आत्मसुखकूं चाहै हैं. विषयजन्यकूं नहीं चाहै हैं. काहेतैं ? सर्वपुरुषनकूं न्यून अथवा अधिक विषयसुख प्राप्तभी है, परंतु ऐसी इच्छा सदा रहे है—"हमारेकूं ऐसा सुख प्राप्त होवै, जा सुखका नाश कभी होवै नहीं" ऐसा सुख आत्मस्वरूप मोक्ष है, यातैं सर्व पुरुष मुमुक्षु हैं. "कोई मुमुक्षु नहीं" ऐसा कहना बनै नहीं.

और जो ऐसे कहे, "मुमुक्षु तौ हैं, परंतु ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं यातें ग्रंथका आरंभ निष्फल है." ताकूं यह पूछै हैं:-ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं है, यातैं ग्रंथविषे प्रवृत्ति नहीं होवै ? अथवा ग्रंथसैं औरभी कोई साधन है जाके विषे प्रवृत्ति होनैतैं ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं ? अथवा जिन शमादिकनकूं ग्रंथमैं अधिकार कह्या, सो शमादिमान् ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है, यातैं ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं !

ऐसे कहै:—"ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं" सो वार्ता बनै नहीं. काहेतें ? मोक्ष ज्ञानतें नियम करके होवै है; यह वेदका सिद्धांत है. सो ज्ञान श्रवणसें होवै है.

श्रवण दो प्रकारका है:—एक तौ वेदांतवाक्यका और श्रोत्रका संयोगरूप है; औ दूसरा वेदांतवाक्यका विचाररूप है. ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवण है; दूसरा नहीं. काहेतें ? शब्दजन्य ज्ञानविषे इंद्रियके साथ शब्दका संयोगही सर्वत्र हेतु है. यातें वेदांतवाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप श्रवण ब्रह्मज्ञानका हेतु है. अवांतरवाक्यका श्रवण परोक्षज्ञानका हेतु है; औ महावाक्यका श्रवण अपरोक्षज्ञानका हेतु है. यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करी है. जाकूं ज्ञान हुयेतैंभी असंभावना औ विपरीतभावना होवै, सो दूसरा श्रवण औ मनन निदिध्यासन करै. वेदांतवाक्यका विचाररूप जो श्रवण तासूं वेदांतवाक्यविषे असंभावना दूर होवै है. वेदांतवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं ? ऐसा संशय वेदांतवाक्यकी असंभावना है. सो तिनके विचारसें दूर होवै है, औ मननसैं प्रमेयकी असंभावना दूर होवै है. जीवब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेय कहिये है. "सो एकता सत्य है ? अथवा जीवब्रह्मका भेद है ?" ऐसा जो संशय सो प्रमेयकी असंभावना कहिये है, सो मननसैं दूर होवै है. विपरीतभावना निदिध्यासनतैं दूर होवै है. इस रीतिसैं प्रथम श्रवण तौ ज्ञानद्वारा मोक्षका हेतु है, औ विचाररूप श्रवण, औ मनन औ निदिध्यासन,ये असंभावना औ विपरीतभावनाकी निवृत्तिद्वारा मोक्षके हेतु हैं. वेदांत नाम उपनिषदनका है, सो यद्यपि या ग्रंथतें भिन्न हैं, तथापि तिनके समान

अर्थवाले भाषावाक्य या ग्रंथमैं हैं. तिनके श्रवणतैंभी ज्ञान होवै है, यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसैं ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोक्षका हैतु है, औ विचाररूप मननरूप यह ग्रंथ है; यातैं असंभावनादोषकी निवृत्तिद्वारा मोक्षका हेतु है; यातैं "ग्रंथसैं मोक्ष होवै नहीं, " यह केवल हठमात्र है.

और जो ऐसे कहै "ग्रंथसैं मोक्ष तौ होवै है, परंतु और साधनसैंभी मोक्ष होवै है, यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है." ताकूं यह पूछै हैं:--सो ओर साधन कोन हैं, जातैं मोक्ष होवै है ? जो ऐसे कहे:--"उपनिषद् सूत्र भाष्यसैं आदि लेके संस्कृतग्रंथ जीवब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक बहुत हैं, तिनसैंभी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है, याका भिन्न अधिकारी नहीं. यातैं यह ग्रंथ निष्फल है" यह वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहण करनेविषे जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है, ऐसा जो मुमुक्षु, ताकूं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं; यातैं मंदबुद्धि मुमुक्षुकी तिनविषे प्रवृत्ति होवै नहीं; या ग्रंथविषेही प्रवृत्ति होवेगी.

और जो ऐसे कहै--"ग्रंथसैं मोक्षभी होवै है, औ संकृतग्रंथनसैं मंदबुद्धिकूं बोधभी होवै नहीं. औ मुमुक्षुभी है, तौभी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं; काहेतैं ? जो विवेक वैराग्य शमादिमान् अधिकारी कह्या सो दुर्लभ है. यातैं अपने विषे साधनका अभाव देखके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं" ताकू यह पूछै है:--"बहुत अधिकारी नहीं ? अथवा कोईभी नहीं ?" जो ऐसें कहैं:--"बहुत अधिकारी नहीं. " सो तौ हमभी अंगीकार करै हैं. औ जा ऐसै कहै:--" कोईभी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं" सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं ? अंतःकरण-

विषे तीन दोष हैं:—एक मल है, दूसरा विक्षेप है, औ तीसरा स्वरूपका आवरण है. मल नाम पापका है; विक्षेप नाम चंचलताका है; औ आवरण नाम अज्ञानका है. शुभकर्मतें मलदोष दूर होवै है. औ उपासनातैं विक्षेपदोष दूर होवै है. ज्ञानतैं आवरणदोष दूर होवै है. जिनके अंतःकरणविषे मल औ विक्षेपदोष हैं, सो अधिकारी नहींभी हैं. परंतु इस जन्मविषे अथवा पूर्वजन्मविषे शुभकर्म, औ उपासनाके अनुष्ठानतैं जिनके मल और विक्षेपदोष नाश हुवे हैं, ऐसे ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं, तिनकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति बनै है.

और जो ऐसे पूर्व कह्या—"सर्वकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि है; नित्यसुखकूं कोई चाहै नहीं." सो बनै नहीं. काहेतैं? चार प्रकारके पुरुष हैं:——पामर, विषयी, जिज्ञासु, मुक्त. इसलोकके निषिद्ध औ विहित भोगनविषे आसक्त जो शास्त्रसंस्काररहित पुरुष सो पामर कहिये है. शास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगता हुवा परलोकके अथवा इसलोकके भोगनेके निमित्त जो कर्म करै सो विषयी कहिये है.

औ ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहिये है:—जो पुरुषकूं उत्तम संस्कारतैं सच्छास्त्रका श्रवण होव, ता उत्तमकूं ऐसा विवेक होवै है:—विषयसुख अनित्य हैं, जितना काल विषयसुख होवै है तबभी कोई दुःख अवश्य रहे है, औ परिणाममैं विनाशी सुख दुःखका हेतु है. औ वर्तमानकालमैंभी नाशके भयतैं दुःखका हेतु है. इस रीतिसे विषयसुख दुःखतैं ग्रसा हुवा है,यातैं दुःखरूप है; औ दुःखकी निवृत्ति लौकिक उपायतैं होवै नहीं. काहेतें? जो उपाय करैं हैं, तिनकेभी सारे दुःख निवृत्त होवैं नहीं और निवृत्त हुवेभी फेर होवैं हैं, औ

जितने काल शरीर हैं, तबपर्यंत दुःखकी निवृत्ति संभवेभी नहीं. काहेतैं? जो शरीर हैं, सो सारे पुण्य औ पापसैं होवै हैं. मनुष्यशरीर तो मिश्रितकर्मका फल प्रसिद्ध है, औ देवशरीरभी मिश्रित कर्मकाही फल है. जो केवल पुण्यका फल देवशरीर होवै, तो अपनेसैं अधिक अन्यदेवकी विभूती देखके जो देवनकूं ताप होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. सर्व देवनमैं प्रधान जो इंद्र ताकूंभी अनेक दैत्यदानवके भयजन्य दुःख शास्त्रमैं कह्या है. जो देवशरीर केवल पुण्यकाही फल होवै, तौ देवनकूं दुःख नहीं हुवा चाहिये; यातैं देवशरीरभी पुण्य पाप दोनोंका फल है. औ जो श्रुतिमैं कह्या है–"देवता पापरहित हैं" ताका यह अभिप्राय है कि–कर्मका अधिकार केवल मनुष्यशरीमें है; औरमें नहीं. यातैं देवशरीरमैं किया जो शुभ अथवा अशुभ, तिनका फल देवनकूं होवै नहीं. औ देवशरीरमें पूर्वशरीरमें किया जो शुभ औ अशुभ, तिनका फल तो देवशरीरमैंभी होवै है, इस रीतिसैं देवशरीर मिश्रितकर्मका फल है.

औ तिर्यक् पशु पक्षीका शरीरभी मिश्रितकर्मका फल है. काहेतैं? जो तिनकूं प्रसिद्ध दुःख है, सो तौ पापका फल है; औ मैथुनादिकनका सुख है सो पुण्यका फल है. उदरसैं जो गमन करै, सो तिर्यक् कहिये है. पक्षसैं जो गमन करै, सो पक्षी कहिये है. चार पादसैं जो गमन करै सो पशु कहिये है. कहूं पशुपक्षीभी तिर्यक्ही कहिये हैं. इस रीतिसैं सर्वशरीर पुण्य औ पापसैं रचित हैं. x जैसैं देवशरीर हैं. अपने अपने जो पुण्य हैं, तिनहीतैं सर्वदेवनविषे पाप न्यून हैं. यातैं न्यून पाप अधिक् पुण्यतैं रचित देव-

x कोई शरीर तो न्यून पाप, औ अधिक पुण्य है रचित

शरीर कहिये हैं. या अभिप्रायतैंही शास्त्रमैं केवलपुण्यका फल देवशरीर कह्या है; यातैं विरोध नहीं. जैसैं बहुत ब्राह्मणोंसैं ब्राह्मणग्राम कहिये है, तैसैं अधिक पुण्यका फल होनेतैं देवशरीर केवलपुण्यका फल कहिये है. परंतु केवल पुण्यका फल नहीं.

तिर्यक् पशु पक्षीका शरीर अधिक पाप न्यून पुण्यसैं रचित है. जो उत्तम मनुष्य हैं, तिनकी देवनके समान रीति है औ नीचनकी सर्पादिकनके समान है. इस रीतिसैं सर्वशरीर पुण्यपापरचित हैं. औ पापका फल दुःख है; यातैं शरीर रहै तबपर्यंत दुःखकी निवृत्ति होवै नहीं. सो शरीर, धर्म औ अधर्मका फल है. तिनकी निवृत्तिविना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं? वर्त्तमानशरीर दूर हुयेसे भी पुण्यपापते और शरीर होवेगा. याते पुण्य पापकी निवृत्तिविना शरीरकी निवृत्ति होवे नहीं. सो पुण्यपाप रागद्वेषके नाशविना दूर होवे नहीं. काहेतैं? वर्त्तमानपुण्यपापकी भोगसे निवृत्ति हुवेसे भी रागद्वेषओरते पुण्यपाप होवेंगे. यातैं रागद्वेषकी निवृत्तिविना पुण्यपाप दूर होवे नहीं. सो राग-द्वेष अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानसे होवै है. जाविषे अनुकूलज्ञान होवे, ताविषे राग होवै है; औ जाविषे प्रतिकूलज्ञान होवे, ताविषे द्वेष होवै है. यातैं अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्तिविना रागद्वेषकी निवृत्ति होवे नहीं. सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान भेदज्ञानसे होवै है. काहेतैं? जा वस्तुको अपने स्वरूपते भिन्न जाने, ताके विषे अनुकूलज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवै है. अपने स्वरूपमें अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवे नहीं. सुखके साधनका नाम अनुकूल है. औ दुःखके साधनका नाम प्रति-

कूल है. अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं. यद्यपि सुखरूप है तथापि सुखका साधन नहीं. यातैं स्वरूपसे भिन्न जो वस्तु जाना है, ताविषे अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवे है, इस रीतिसे पदार्थनविषे अपनेसे जो भेदज्ञान, सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानका हेतु है. ता भेदज्ञानकी निवृत्ति विना होवे नहीं. सो भेदज्ञान अविद्याजन्य है. काहेतैं? संपूर्ण प्रपंच औ ताका ज्ञान स्वरूपके अज्ञानकालमैं है. यह संपूर्ण वेद अरु शास्त्रका ढंढोरा है. इस रीतिसे संपूर्ण दुःखका हेतु स्वरूपका अज्ञान है. सो स्वरूपका अज्ञान, स्वरूपज्ञानविना दूर होवे नहीं. काहेतैं? जा वस्तुका अज्ञान होवे, सो ताके ज्ञानसे दूर होवे है. जैसे रज्जुका अज्ञान रज्जुके ज्ञानसे दूर होवे है, औरसे नहीं. यातैं स्वरूपका ज्ञानही अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा दुःखकी निवृत्तिका हेतु है. औ स्वरूपज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति होवै है. सो ब्रह्म नित्य है, औ आनंदस्वरूप है, दुःखसंबंधसैं रहित है; यातैं स्वरूपज्ञानसैं नित्य औ दुःखके संबंधसैं रहित जो ब्रह्मस्वरूप आनंद, ताकी प्राप्तिभी होवै है. इस रीतिसैं दुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञान है. यातैं स्वरूप जाननेकूं योग्य है, ऐसा जाकूं विवेक होवै, सो जिज्ञासु कहिये है. स्थूल सूक्ष्म कारणशरीरतैं भिन्न जो अपना स्वरूप, ताका ब्रह्मरूपकरके अपरोक्षज्ञान जाकूं होवै सो मुक्त कहिये है.

इस रीतिसैं चार प्रकारके पुरुष हैं. तिनविषे पामर औ विषयीकूं तौ यद्यपि विषयसुखमैंही अलंबुद्धि है, औ किसी विषयीकूं परम सुखकी इच्छाभी होवै, तबभी ताके

जो उपाय नहीं हैं, तिनमैं उपायबुद्धि करके प्रवृत्त होवै है. काहेतैं ? उपायका ज्ञान सत्संग औ सच्छास्त्रके श्रवणतैं होवै है; सौ ताके है नहीं. यातैं पामर औ विषयीकी सुखप्राप्तिके निमित्त ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं. दुःखकी निवृत्तिके निमित्तभी दोनों अन्य उपायनमें प्रवृत्त होवै हैं, ताके निमित्तभी ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं; यातैं विषयी औ पामरकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं, औ मुक्तकी प्रवृत्तिभी होवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानवान् मुक्त कहिये है. सो ज्ञानी कृतकृत्य है; ताकूं कुछ कर्तव्य नहीं. यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे, औ लीलाकरके मुक्त प्रवृत्त होवै, तौभी मुक्तकूं ग्रंथमैं प्रवृत्तिसैं कोई प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं. यातैं मुक्तके निमित्त ग्रंथ नहीं. तथापि जिज्ञासु जो पुरुष है, ताकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि होवै नहीं. किंतु परमसुखकी ताकूं इच्छा है, औ दुःखनिवृत्तिकी अत्यंतकरके इच्छा है, सो परमसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतानिवृत्ति, ज्ञानविना होवै नहीं. ऐसा जाकूं सत्संगसैं विवेक है, ताकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति बनै है. इस रीतिसे मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी बनै है ॥ ११ ॥

दोहा ।

साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक, नहीं भेदको गंध ॥
रागद्वेष ममतिके धरम, तामें मानत अंध ॥ १२ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो " जीव रागादिक क्लेशसहित है; औ ब्रह्म क्लेशरहित है. यातैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै नहीं " यह वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि रागद्वेषरहित जो साक्षी है, ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै है. और जो पूर्व कह्या—" कर्त्ताभोक्तासैं भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके

समान असत् है" सो बनै नहीं. काहेतैं ? कर्त्ता भोक्ता है.
संसारी, ताके विशेषभागका नाम साक्षी है. जो साक्षी
निषेध करैं, तो संसारीके विशेषभागका निषेध होनेतैं, क
भोक्ता जो संसारी, ताकाही निषेध होवैगा. एकही चेतन
विषे साक्षीभावकी अंतःकरण उपाधि है. औ कर्त्ता भोक्त
पनेका विशेषण है. विशेषणसहित विशिष्ट कहिये है. उ
धिवाला उपहित कहिये है. जो वस्तु जितने देशमैं अ
होवै, उस देशमैं स्थित वस्तूकूं जनावै, औ आप पृथक्
सो उपाधि कहिये है. जैसे नैयायिकमतमैं कर्णगोलकवि
आकाश श्रोत्र कहिये है. सो कर्णगोलक श्रोत्रकी उपा
है. काहेतैं ? सो कर्णगोलक जितने देशमैं आप है, उतने दे
स्थित आकाशकूं श्रोत्ररूपकरके जनावै है, औ आप पृ
रहै है; यातैं कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है. तैसैं अंतःक
भी जितने देशमैं आप है, उतने देशसैं स्थित चेतनकूं सा
संज्ञा करके जनावै है औ आप पृथक् रहै है. यातैं अं
करण साक्षीकी उपाधि है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवा कि
अंतःकरण विषे वृत्ति जो चेतनमात्र सो साक्षी कहिये है

अपनेसहित वस्तुकूं जो जनावै, सो विशेषण कहिये है
जैसैं "कुंडलवाला पुरुष आया है" या स्थानमैं पुरुष
कुंडलत्व विशेषण है. काहेतैं ? अपनेसहित पुरुषका आ
मन कुंडल जनावै है, यातैं विशेषण है. "नीलरूपवान् घट
मैं देखूं हूं" या स्थानमैंभी नीलरूप घटका विशेषण है. तैं
अंतःकरणभी कर्त्ता भोक्ता जो जीवचेतन, ताका विशेष
है. काहेतैं ? अंतःकरणसहित चेतनकूं कर्त्ताभोक्तारूपकरि
अंतःकरण जनावै है. यातैं संसारीका अंतःकरण विशेष

है. यातैं यह सिद्ध हुवा—“अंतःकरणविषे वृत्ति चेतन औ अंतःकरण संसारी कहिये है.” या अर्थकूं विस्तारसे आगे कहैंगे.

रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषे हैं; साक्षीविषे नहीं. संसारीकाभी जो विशेषण अंतःकरण है, ताके विषे है, औ विशेष्य जो चैतन्य, ताके विषे नहीं. काहेतैं ? संसारीविषे विशेष्य जो चैतन्यभाग, ताका साक्षीसैं भेद नहीं. काहेतैं ? एकही चैतन्य अंतःकरणसहित संसारी है; औ अंतःकरणभाग त्यागके साक्षी कहिये हैं, यातैं साक्षीका औ संसारीके विशेष्यभागका भेद नहीं. जो विशेष्यभागमैं क्लेश अंगीकार करैं, तब साक्षीमैंभी अंगीकार करने होवैंगे. औ “साक्षी सर्वक्लेशरहित है” यह वेदका सिद्धांत है. यातैं संसारीके विशेष्यभागमैं क्लेश नहीं, किंतु विशेषणमात्र अंतःकरणमैं है. इस अभिप्रायतैं दोहेके तृतीयपादमैं राग द्वेष, बुद्धिके धर्म कहे; औ जीवके नहीं कहे. इस रीतिसैं अंतःकरणविशिष्टकी ब्रह्मसैं एकता नहीं भी बने, परंतु अंतःकरणउपहित जो साक्षी, ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै है.

और जो पूर्व कह्या,—“साक्षी नाना हैं, औ ब्रह्म एक है; यातैं नानासाक्षीकी एक ब्रह्मसैं एकता बनै नहीं. औ जो व्यापक एकब्रह्मतैं साक्षीका अभेद अंगीकार करोगे, तौ साक्षीभी सर्वशरीरमैं व्यापक एकही होवैगा. यातैं सर्वशरीरके सुख दुःख भान हुवे चाहिये.” सो शंका बनै नहीं. काहेतैं ? यद्यपि ईश्वरसाक्षी एक है, औ जीवसाक्षी नाना हैं, औ परिच्छिन्न हैं, तौभी व्यापक ब्रह्मसैं भिन्न नहीं. जैसैं घटाकाश नाना हैं, औ परिच्छिन्न हैं, तौभी महाकाशसैं

भिन्न नहीं; किंतु महाकाशरूपही घटाकाश है. तैसैं ना
जो परिच्छिन्नसाक्षी, सोभी ब्रह्मरूपही हैं.

औ जो पूर्व कह्या,—"सुखदुःख अंतःकरणकी वृत्ति
विषय नहीं" सो असंगत है. काहेतैं? यद्यपि सुखदुःख सा
भास्य हैं, सो साक्षी नाना हैं; तथापि जब अंतःकरणका प
णाम सुखरूप वा दुःखरूप होवै, ताही समय अंतःकरण
ज्ञानरूप वृत्ति सुखदुःखकूं विषय करनेवाली होवै है.
वृत्तिमैं आरूढ साक्षी तिनकूं प्रकाशै है. इस रीतिसैं ग्रंथ
रोंने सुख दुःख साक्षीके विषय कहे हैं. वृत्तिबिना के
साक्षीके विषय नहीं. या स्थानमैं यह रहस्य है:—आका
घटाकाश नाम औ जलका आनयनरूप जो कार्य प्र
होवै है, सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवै है; घट
उपाधिकी दृष्टिविना घटाकाश नाम औ जलका आनयन
कार्य प्रतीत होवै नहीं; किंतु आकाशमात्रही प्रतीत होवै
यातैं घटाकाश महाकाशरूप है. तैसैं चेतनविषे साक्षी न
औ धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य, अंतःक
रूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवै है. औ अंतःकरण
उपाधिकी दृष्टिबिना साक्षी नाम औ धर्मसहित अंतःकरण
प्रकाशरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं, किंतु चैतन्यमात्र ब्रह्म
प्रतीत होवै; यातैं साक्षी ब्रह्मरूप है. या अभिप्रायतैं दोहे
प्रथमपादमैं साक्षी एक कह्या. काहेतैं ? उपाधिकी दृष्टिबि
साक्षीमैं नानापना औ परिच्छिन्नभाव प्रतीत होवै नहीं.
साक्षी जविपदका लक्ष्य है, यह वार्त्ता आगे कहैंगे. इस रीति
जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै है ॥ १२ ॥

अथ कार्याध्यासनिरूपणम् ।

कवित्त–घनाक्षरी.

सजातीयज्ञान संस्कारतें अध्यास होत,
सत्यज्ञानजन्य संस्कारको न नेम है ।
दोषको न हेतु ता अध्यासविषे देखियत,
पटविषे हेतु जैसे तुरी तंतु वेम है ॥
आतमा द्विजाती शंख पीत शीत कटु भासै,
सीपमैं विरागी रूप देखे विन प्रेम है ।
नभ नील रूपवान भासत कटाह तंबू,
जिनके न कोउ पित्त प्रभृति अक्षेम है ॥ १३ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो "बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं." औ " मिथ्यावस्तुकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै है. आत्मामैं मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं, यातैं बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं" सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं ? बंध मिथ्या है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति बनै है.

औ पूर्व कह्या जो "सत्यवस्तुका ज्ञान सो संस्कारद्वारा अध्यासका हेतु है. जैसे सत्य सर्पका ज्ञान संस्कारद्वारा सर्प अध्यासका हेतु है; तैसे सत्यबंध होवै तौ सत्यबंधका ज्ञान होवै. सो सिद्धांतमें अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं. यातैं सत्यवस्तुका ज्ञान, जो संस्कारद्वारा अध्यासकी सामग्री, ताका अभाव होनेतैं बंध अध्यास नहीं; किंतु सत्य है." सो शंका बनै नहीं. काहेतैं ? अध्यासविषे संस्कारद्वारा

सत्यवस्तुका ज्ञान हेतु नहीं, किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है.
वस्तु सत्य होवै, अथवा मिथ्या होवै. जो सत्यवस्तुका
नही अध्यासविषे हेतु होवै तो जा पुरुषने सत्य छु
रका वृक्ष नहीं देख्या होवै, औ बाजीगरका बनाया
ध्या छुहारेका वृक्ष बहुतबार देख्या होवे; औ बाजीग
ऐसा सुना होवै कि–"यह छुहारेका वृक्ष है." औ
रेका वृक्ष कभी देख्या सुना होवै नहीं, ताकूं खजू
वृक्ष देखके छुहारेका अध्यास होवै है; सो नहीं हुवा
हिये. काहेतें ? सत्य छुहारेका ताकूं ज्ञान है नहीं. औ ह
रीतिसैं तो बाजीगरका देख्या जो मिथ्या छुहारा त
ज्ञान है, यातैं अध्यास बने है. यातैं सजातीयवस्तुके
जन्य संस्कारही अध्यासके हेतु हैं. सो संस्कारका ज
ज्ञान औ ताका विषय मिथ्या होवै, अथवा सत्य
संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. औ "ज्ञानजन्य संस्कार हेतु
या कहनेमैं अर्थका भेद नहीं; एकही अर्थ है. काहेतैं? सं
रद्वारा ज्ञान हेतु है" याका अर्थ यह है:–ज्ञान संस्का
हेतु है, औ संस्कार अध्यासका हेतु है; यातैं संस्कार
ज्ञानकूं हेतुता कहनेतैंभी ज्ञानजन्य संस्कारकूंही अध्या
विषे हेतुता सिद्ध होवै है.

औ केवल वस्तुके ज्ञानकूंही अध्यासविषे हेतु क
बनै नहीं. काहेतैं ? यह नियम है:–"जो हेतु होवै सो
यैसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै है." जैसे घटका हेतु
है, सो घटसैं अव्यवहित पूर्व कालमैं होवै है. तैसैं जो
ध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करैं; सोभी अध्यासतैं
व्यवहितपूर्वकालमैं चाहिये. सो बनै नहीं. काहेतैं, जा

रुषकूं सर्पका ज्ञान होवै, ताकूं ज्ञानसैं महीने पीछेभी रज्जुविषे सर्पका अध्यास होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. काहेतें ? जो रज्जुमैं, सर्पअध्यासका हेतु सर्पका ज्ञान है, ताका नाश होय गया; यातैं अव्यवहितपूर्वकालमैं है नहीं. यद्यपि पूर्वकालसैं तौ है, तथापि अव्यवहितपूर्वकालमैं है नहीं. अंतरायरहितका नाम अव्यवहित है, औ अंतरायसहितका नाम व्यवहित है. औ जो ऐसे कहैं कि, कार्यतैं पूर्वकालमैं हेतु चाहिये, व्यवहित पूर्वकालमैं होवै; अथवा अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै. औ "कार्यतैं अव्यवहितपूर्वकालमैंही हेतु होवै है." ऐसा नियम अंगीकार करैं तौ " विहित कर्म स्वर्गप्राप्तिका हेतु है, औ निषिद्ध कर्म नरकप्राप्तिका हेतु है " यह शास्त्रकी वार्ता अप्रमाण होय जावैगी. काहेतें ? कायिक, वाचिक, मानसक्रियाका नाम कर्म है. सो क्रिया अनुष्ठानकालसैं अनंतरही नाश होय जावै है. औ स्वर्ग नरक कालांतरमैं होवै हैं. यातैं स्वर्गनरकप्राप्तिके अव्यवहितपूर्वकालमैं विहित कर्म औ निषिद्ध कर्म हैं नहीं. जैसें व्यवहितपूर्वकालके शुभकर्म औ अशुभकर्म, स्वर्गप्राप्ति औ नरकप्राप्तिके हेतु हैं, तैसे " व्यवहितपूर्वकालमैं जो सर्पका ज्ञान, सोभी रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु है," सो वार्ता बनै नहीं. काहेतें ? जैसे नष्टज्ञान औ नष्टकर्मतैं अध्यास औ स्वर्गनरककी प्राप्ति अंगीकार करी; तैसे मृत कुलाल औ नष्टदंडसैंभी घट हुवा चाहिये. काहेतें ? जैसे रज्जुमैं सर्पअध्यासतैं व्यवहितपूर्वकालमैं सर्पका ज्ञान है औ स्वर्गनरककी प्राप्तितें व्यवहितपूर्वकालमैं शुभअशुभ कर्म हैं; तैसे घटतैं व्यवहितपूर्वकालमैं नष्टदंड औ मृत कुलालभी हैं, तिनतैंभी घट हुवा चाहिये. सो होवै नहीं. यातैंः—

व्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै, सो हेतु नहीं; किं
अव्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै, सोई हेतु होवै
औ शुभअशुभकर्मभी, कालांतरभावी जो स्वर्गनरक
प्राप्ति, ताके हेतु नहीं. किंतु शुभकर्म तौ अपनेतैं
व्यवहितउत्तरकालमैं धर्मकी उत्पत्ति करै है; अशुभ
अधर्मकी उत्पत्ति करै है. सो धर्म अधर्म अंतःकरण
रहे हैं, तिनतैं कालांतरमैं स्वर्ग औ नरककी प्राप्ति हो
है; तासैं अनंतर धर्म अधर्मका नाश होवै है. इस अभिप्रा
सैंही शास्त्रमैं शुभकर्म औ अशुभकर्म अपूर्वद्वारा फलके
कहे हैं, साक्षात् नहीं. अपूर्व नाम धर्म अधर्मका है; औ अ
ष्टभी तिनकूं कहै हैं, औ पुण्यपापभी तिनकूंही कहै हैं.
कहूं धर्म अधर्मकी जनक जो शुभ अशुभ क्रिया है, ताकूं
धर्म अधर्म कहै हैं. जैसैं कोई शुभक्रिया करता होवै,
लोक ऐसा कहै हैंः—" यह धर्म करै है " औ अशुभक्रि
करनेवालेकूं ऐसा कहै हैंः—" यह अधर्म करै है " सो
अशुभ क्रियाका नाम धर्म अधर्म नहीं; किंतु शुभ अशु
क्रिया धर्म अधर्मकी जनक है. यातैं क्रियाकूं धर्म अ
कहै हैं. जैसैं आयुका वर्धक जो घृत है, ताकूं शास्त्रमैं
कहै हैं. इस रीतिसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं हेतु होवै है

औ रज्जुमैं सर्पअध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमैं स
ज्ञान है नहीं. यातैं सर्पका ज्ञान रज्जुमैं सर्प—अध्यासका
नहीं, किंतु सर्पज्ञानजन्य संस्कारही रज्जुमैं सर्पअध्यास
हेतु है. तैसैं सीपीमैं रूपअध्यासका हेतु रूपज्ञानजन्य संस्
है. इस रीतिसैं सारे संस्कारही अध्यासके हेतु हैं, औ व
ज्ञान संस्कारका हेतु है. जैसै शुभ—अशुभकर्मजन्य

अधर्म अंतःकरणमैं रहै हैं; तैसैं वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारभी अंतःकरणमैं रहैं हैं. जा पुरुषकूं पूर्व सर्पका ज्ञान नहीं हुवा ताकेभी और वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार तौ हैं; परंतु रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं. जा वस्तुका अध्यास होवै, ताके सजातीय वस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यासका हेतु है; विजातीय ज्ञानके संस्कार हेतु नहीं. सर्पके सजातीय सर्प होवै है; और नहीं. सर्पका जाकूं पूर्व ज्ञान नहीं, अन्यवस्तुका ज्ञान है, ताकूं सजातीयवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार नहीं, यातैं रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं. सूक्ष्मअवस्थाका नाम संस्कार है. इस रीतिसैं अध्यासतैं पूर्व जो सजातीयवस्तुका ज्ञान ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं, "औ सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कारही अध्यासके हेतु हैं; मिथ्यावस्तु ज्ञानके नहीं" यह नियम नहीं. यह वार्त्ता छुहारेके दृष्टांतसैं प्रतिपादन करी है. यातैं मिथ्या वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारकी अध्यासके हेतु हैं.

सो बंधके अध्यासविषेभी बनै है. काहेतैं? जो अहंकारसैं आदिलेके अनात्मवस्तु, औ ताका ज्ञान बंध कहिये है. "सो अनात्मवस्तु, रज्जुके सर्पकी नाईं जब प्रतीत होवै तबही है, औ प्रतीत नहीं होवै तब नहीं." यह हमारा वेदसम्मत सिद्धांत है. इस कारणतैंही सुषुप्तिविषे सर्वप्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है. सुषुप्तिमैं कोई पदार्थ प्रतीत होवै नहीं. यातैं सर्वप्रपंचका सुषुप्तिमैं लय होवै है. इसका नाम शास्त्रमैं दृष्टिसृष्टिवाद कहै हैं. या अर्थकूं आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसैं अनंत अहंकारादिक औ तिनके ज्ञान उत्पन्न होवै हैं; औ लय होवै हैं. अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानकी साथही उत्पत्ति-लय होवै हैं. जब अहं-

कारादिकनकी प्रतीतिकी उत्पत्ति होवै, तब अहंकारादि
नकी उत्पत्ति होवै है. औ प्रतीतिका लय होवै, तब अ
कारादिकनका लय होवै है. अहंकारादिक औं तिन
ज्ञानका नाम अध्यास है. यह वार्त्ता अनिर्वचनीय ख्याति
प्रतिपादनमैं कहैंगे. यद्यपि अहंकार साक्षिभास्य है, य
वार्ता विषयप्रतिपादनमैं कही है, यातैं अहंकारकी प्रती
साक्षिरूप है. ताकी उत्पत्ति औ लय बनै नहीं, तथा
अहंकारकाभी वृत्तिसैंही साक्षी प्रकाश करै है; साक्षात नह
ता वृत्तिके उत्पत्ति लय होवै हैं. यातैं अहंकारकी प्रतीति
उत्पत्तिलय कहिये है. इस रीतिसैं उत्तर उत्तर अहंका
दिक औ तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति, ताके हेतु पूर्व
मिथ्या अहंकारादिकनके ज्ञानजन्य संस्कार बनै हैं.

और जो ऐसे कहैं:–" उत्तरउत्तर अहंकारादिक
अध्यासविषे तौ यद्यपि पूर्व पूर्व अध्यासके संस्कार हेतु
हैं; तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार, औ ताका ज्ञा
ताके हेतु संस्कार बनै नहीं. काहेतैं ? जो ताके पूर्व अ
अहंकार उत्पन्न हुवा होवै, तौ ताके ज्ञानके संस्कार
होवैं, सो प्रथम अहंकार पूर्व और अहंकार हुवा नहीं. तैं
सर्व वस्तुके प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं " य
शंकाभी सिद्धांतके अज्ञानसैं होवै है. काहेतैं ? यह वेदं
तका सिद्धांत है:--एक ब्रह्म, औ ईश्वर, जीव, अविद्या
औ अविद्याका चैतन्यसैं संबंध, औ अनादिवस्तुका भे
यह षट्वस्तु स्वरूपसैं अनादि हैं. जा वस्तुकी उत्पत्ति हो
नहीं सो वस्तु स्वरूपसैं अनादि कहिये है. इन षट्की उ
त्पत्ति होवै नहीं, यातैं स्वरूपसैं अनादि हैं, औ अहंकारा

दिकनकी तौ श्रुतिमैं उत्पत्ति कही है; यातैं स्वरूपसैं अनादि यद्यपि अहंकारादिक नहीं, तथापि प्रवाहरूपतैं सर्ववस्तु अनादि है. सर्ववस्तुका प्रवाह दूर होवै नहीं. अनादिकालमैं ऐसा समय कोई पूर्व हुवा नहीं, जा समय कोई घट होवै नहीं. यातैं घटका प्रवाह अनादि है. इस रीतिसैं सर्ववस्तुका प्रवाह अनादि है. प्रलयकालमैंभी सुषुप्तिकी नाईं सर्व वस्तु संस्काररूप होयके रहै हैं. यातैं प्रपंचका प्रवाह अनादि होनेतैं, प्रपंच अनादि कहिये है. ऐसा जाकूं ज्ञान नहीं है, ताकूं यह शंका होवै है—"जो प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं." औ सिद्धांतमैं किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्वसैं प्रथम है नहीं, किंतु अपनेसैं पूर्व पूर्व अध्यासतैं संपूर्ण उत्तर हैं, यातैं शंका बनै नहीं. इस रीतिसैं सजातीयके पूर्व ज्ञानजन्य संस्कारसैं अहंकारादिक बंधका अध्यास बनै है; यह प्रथमपादका अर्थ है.

और जो पूर्व कह्या "तीन प्रकारका दोष अध्यासका हेतु है; औ बंधके अध्यासमैं कोईभी दोष बनै नहीं. यातैं बंध सत्य है," सो शंका बनै नहीं. काहेतैं? जो दोषतैं बिना अध्यास होवै नहीं, तौ अध्यासका हेतु दोष होवै. जैसैं तुरी तंतु वेम इत्यादि पटके हेतु हैं. तुरी तंतु वेम होवैं तौ पट होवै, औ नहीं होवैं तौ पट होवै नहीं. तैसै दोष अध्यासके हेतु नहीं. काहेतैं? सादृश्यदोषबिना आत्मामैं जातिका अध्यास होवै है. ब्राह्मणत्वसैं आदि लेके जो जाति हैं, सो स्थूलशरीरका धर्म है; आत्माका औ सूक्ष्मशरीरका धर्म नहीं. काहेतैं? और शरीरकूं प्राप्त होवै, तब आत्मा औ सूक्ष्मशरीर तौ जो पूर्व शरीरमैं हैं, सोई रहै हैं; जाति औरभी होवै है.

यह नियम नहीं-"जो पूर्वशरीरमैं जाति है, सोई उत्त शरीरमैं होवै है." आत्माका अथवा सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति होवै, तौ उत्तरशरीरविषे और जाति नहीं हुई चाहिये यातैं आत्माका औ सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति नहीं; कि स्थूलशरीरका धर्म है. औ "मैं द्विजाति हूं" इस रीति ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्वजातिका आत्मामैं भान होवै है यातैं आत्मामैं जातिका अध्यास है. जैसैं रज्जुमैं सर्प परम र्थसैं नहीं है, औ भान होवै है; यातैं रज्जुमैं सर्पका अ ध्यास है. तैसैं आत्मामैं जाति नहीं है, औ भान होवै है, या आत्मामैं जातिका अध्यास है. औ आत्माके साथ जाति साद्दश्य नहीं है. काहेतैं ? आत्मा व्यापक है, औ जाति रिछिन्न है. आत्मा प्रत्यक् है, औ जाति पराक् है. आत विषयी है, औ जाति विषय है. इस रीतिसैं आत्मामैं विरो जातिकाभी अध्यास होवै है. द्विजाति नाम त्रिवर्णका जैसैं आत्माविषे साद्दश्यतैं विना जातिका अध्यास होवै तैसैं साद्दश्यविना अहंकारादिक बंधका अध्यास भी आत्म बनै है. साद्दश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं. जो साद्दश्य अध्यासका हेतु होवै, तौ आत्मामैं जातिका अध्यास न हुवा चाहिये; औ शंखमैं पीतताका अध्यास नहीं हुवा हिये औ मिसरीमैं कटुताका अध्यास नहीं हुवा चाहि काहेतैं ? श्वेत औ पीतका विरोध है; साद्दश्य नहीं. तैसैं म औ कटुका विरोध है; साद्दश्य नहीं. यातैं अधिष्ठान मिथ्यावस्तुका साद्दश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं.

तैसैं प्रमाताका, लोभ भयादिक दोपभी अध्यासका हे नहीं. काहेतैं ? जो लोभरहित वैराग्यवान् पुरुष है, ताकूं

सीपीमैं रूपेका अध्यास होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. यातैं प्रमाताका दोषभी अध्यासका हेतु नहीं. औ प्रमाणका दोषभी अध्यासका हेतु नहीं. काहेतैं? सर्वपुरुषनको रूपरहित जो आकाश है, सो नीलरूपवाला प्रतीत होवै है, औ कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवै है. यातैं सर्वकूं आकाशमैं नीलरूपका, कटाहका तथा तंबूका अध्यास है. औ सर्वके नेत्ररूप प्रमाणमैं दोष कहना बनै नहीं. यातैं प्रमाणका दोष अध्यासका हेतु नहीं.आकाशमैं नीलादिकनका जो अध्यास है,ताकेविषे एक प्रमाणदोषकाही अभाव नहीं है,किंतु सर्वदोषनका अभाव है;सादृश्यभी नहीं, औ प्रमाताका दोषभी नहीं. जैसे सर्वदोषके अभावतैंभी आकाशमैं नीलादिकनका अध्यास होवै है, तैसे आत्माविषेभी बंधका अध्यास दोष विनाही बनै है. यातैं "दोषके अभावतैं बंध अध्यासरूप नहीं" यह शंका बनै नहीं. काहेतैं? सर्वदोषका अभावभी है, तौभी आकाशमैं नीलादिकनका अध्यास सर्वपुरुषनकूं होवै है; यातैं दोष अध्यासका हेतु नहीं. कवित्तके चतुर्थपादका यह अर्थ है:—जिनके कोई पित्तप्रभृति कहिये पित्तसैं आदि लेके, अक्षेम कहिये, दोष नहीं हैं, तिनकूंभी आकाश नीलरूपवान् औ कटाहाकार, औ तंबूके आकार भासै हैं. यातैं प्रमाणदोष अध्यासका हेतु नहीं. क्षेम नाम कुशलका है. ताका विरोधी जो प्रमाणदोष, सो अक्षेम कहिये है. ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये है. इस रीतिसैं दोष अध्यासके हेतु नहीं. यातैं बंधके अध्यासमैं दोषकी अपेक्षा नहीं. और संक्षेपशारीरकमैं बंधके अध्याससमय दोषभी प्रतिपादन किये हैं, विस्तारके भयसैं हमने

नहीं लिखे. औ अध्यासके हेतु जो दोष होवैं, तौ तं
निरूपण करते. सो दोष अध्यासके हेतु नहीं है, यातैं
दोषका निरूपण नहीं किया ॥ १३ ॥

अथ कारणाध्यासनिरूपणम् ।

दोहा ।

चित् सामान्य प्रकाशतैं, नहीं नशै अज्ञान ॥
लहै प्रकाश सुषुप्तिमैं, चेतनतैं अज्ञान ॥ १४ ॥

टीकाः--पूर्व कह्या जो "विशेषरूपसैं अज्ञातव
अध्यास होवै है, औ आत्मा स्वयंप्रकाश है,ताके विषे अ
बनै नहीं. काहेतैं? तमका औ प्रकाशका परस्पर विरोध
यातैं जैसैं अत्यंतप्रकाशमैं स्थित रज्जुमैं सर्पका अध्यास हं
नहीं, तैसैं स्वयंप्रकाश आत्मामैं बंधका अध्यास बनै नहीं
सो शंकाभी बनै नहीं. काहेतैं? यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप
तथापि आत्माका स्वरूपप्रकाश, अज्ञानका विरोधी नहं
जो आत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्ति
प्रकाशरूप आत्माविषे अज्ञान प्रतीत होवै है, सो नहीं हु
चाहिये. घोरनिद्रासैं जाग्या जो पुरुष है, ताकूं ऐसा ज्ञा
होवै है:--मैं सुखसे सोया औ कछुभी नहीं जानता हुवा.
या ज्ञानका सुख औ अज्ञान विषय है. सो सुख औ अज्ञा
नका जो जागृतमैं ज्ञान है, सो प्रत्यक्षरूप नहीं. काहेतैं
जा ज्ञानका विषय सम्मुख होवै, सो ज्ञान प्रत्यक्षरू
होवै है. औ जागृतकालमैं सुख औ अज्ञान नहीं है

यातैं जागृतमैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप नहीं, किंतु स्मृतिरूप है. सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवै नहीं, किंतु ज्ञातवस्तुकी होवै है. यातैं सुषुप्तिमैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान है; सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरण औ इंद्रियजन्य तौ है नहीं. काहेतैं ? सुषुप्तिमैं अंतःकरण औ इंद्रियका अभाव है. यातैं सुषुप्तिमैं आत्मस्वरूपही ज्ञान है. ज्ञान औ प्रकाशका एकही अर्थ है. इस रीतिसैं सुषुप्तिमैं आत्मा प्रकाशरूप है. ता प्रकाशरूप आत्मासैं स्वरूपसुख औ अज्ञानकी प्रतीति होवै है. जो आत्मस्वरूपप्रकाश, अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्तिमैं अज्ञानकी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. यातैं आत्मा प्रकाशरूप तौ है, परंतु आत्माका स्वरूप प्रकाश, अज्ञानका विरोधी नहीं. उलटा आत्माका स्वरूप प्रकाश, अज्ञानका साधक है. इस अभिप्रायतैंही वेदांतशास्त्रमैं कहा है:-"सामान्यचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं; किंतु विशेषचैतन्यही अज्ञानका विरोधी है." व्यापक जो चैतन्य है, सो सामान्यचैतन्य कहिये है. जैसैं काष्ठमैं स्थित जो सामान्य अग्नि है, सो अंधकारका विरोधी नहीं औ मथनसैं प्रगट किया जो अग्नि है, सो वृत्तीमैं स्थित होयके अंधकारका विरोधी है, तैसैं व्यापकचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहींभी है, परंतु वेदांतके विचारसैं अंतःकरणकी जो ब्रह्माकारवृत्ति हुई है, ताके विषै स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. इस रीतिसैं केवलचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं; किंतु वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है, अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है.

प्रथमपक्षमैं तौ अज्ञानके नाशका हेतु चैतन्य है; औ वृत्ति सहायक है. दूसरे पक्षमैं अज्ञानके नाशका हेतु वृत्ति

है; औ चैतन्य सहायक है. यह अवच्छेदवादकी रीति है. औ अभासवादमैं तौ सामान्यचैतन्यकी नाईं विशेषचैतन्यभी अज्ञानका विरोधी नहीं, किंतु वृत्तिसहित आभास अथवा आभाससहित वृत्ति अज्ञानका विरोधी है. इस रीतिसैं प्रकाशरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं.यातैं चैतन्यके आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञानसैं आवृत जो आत्मा, ताके विषे बंधक अध्यास बनै है.

और पूर्व कह्या जो सामान्यरूपतैं ज्ञात वस्तुमैं, औ विशेषरूपतैं अज्ञातवस्तुमैं अध्यास होवै है औ आत्मामैं सामान्य विशेषभाव है नहीं, यातैं निर्विशेष आत्मा ज्ञात औ अज्ञात बनै नहीं. ताके विषे अध्यासका असंभव है. सो वार्ताभी बनै नहीं. काहेतैं ? "आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीति होवै है. आत्मा नाम अपने स्वरूपका है. 'मैं नहीं हूं' यह किसीकू प्रतीति होवै नहीं. किंतु 'मैं हूं' यह प्रतीति सर्वकूं होवै है. यातैं सत्‌रूपकरके आत्माका सर्वकूं भान होवै है. "औ चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूप आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीति होवै नहीं. यातैं चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूपतैं आत्मा अज्ञात है. औ सत्‌रूप करके ज्ञात है, यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है. सो अनुभवसिद्ध वार्त्ता युक्तिसैं दूर होवै नहीं. सर्वकूं प्रतीत जौ होवै है आत्माका सत्‌रूप, सो तौ सामान्यरूप है. औ केवल ज्ञानीकूं जो प्रतीत होवै चेतन आनंदादिक, सो विशेषरूप है. जो अधिककालमैं अधिक देशमैं होवै, सो सामान्यरूप कहिये है. औ न्यूनदेशमैं न्यूनकालमैं होवै, सो विशेषरूप कहिये है. यद्यपि आत्माका स्वरूपही

चेतनआनंदादिक है, यातैं सत्की नाईं चेतन आनंदादिक सर्वत्र व्यापक है; सत्की अपेक्षातैं चेतनआनंदादिकनकूं, न्यूनदेशमैं औ चेतनआनंदादिकनकी अपेक्षातैं सत्रूपकूं अधिकदेशमैं कहना बनै नहीं. यातैं सत्रूप आत्माका सामान्य अंश है, औ चेतन आनंदादिक विशेष अंश है, यह कहनाभी बनै नहीं. तथापि सत्की प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैंभी होवैहै, औ "चेतन आनंद रूप आत्मा है" यह प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैं होवै नहीं; केवल ज्ञानीकूंही होवै है. अविद्याकालमैं चेतन, आनंद, मुक्तता, शुद्धताभी है; परंतु प्रतीति होवै नहीं. यातैं अनहुयेके समान है. इस अभिप्रायतैं चैतन्यआनंदादिक न्यूनकालवृत्ति कहिये है औ सत्रूप अधिककालवृत्ति कहिये है. इस रीतिसैं सत्रूपका औ चेतनआनंदादिकनका सामान्यविशेषभाव नहींभी है, परंतु अल्पकाल औ अधिककालमैं प्रतीति होनेतैं सामान्यविशेषभावकी नाईं है. या कारणतैं आत्माका सत्रूप सामान्य अंश कहिये है; चेतन आनंदादिक विशेष अंश कहिये है.

औ 'आत्मा निर्विशेष है' या सिद्धांतकीभी हानि नहीं. जो आत्मामैं सामान्यविशेषभाव अंगीकार करैं, तौ "निर्विशेषआत्मा है" या सिद्धांतकी हानि होवै. सो सामान्यविशेषभाव अंगीकार किया नहीं, किंतु अविद्यासैं सामान्यविशेपकी नाईं प्रतीति होवै है; यातैं सामान्यविशेषभाव कहे हैं. इस रीतिसैं सत्यरूपकरके ज्ञात; औ चेतन, आनंद, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप करके अज्ञात, आत्माविषे बंधका अध्यास बनै है. अध्यासरूप बंधकी ज्ञानसैं निवृत्तिभी बनै है, यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै है.

और पूर्व कह्या जो "निषिद्धकाम्यकर्मका त्याग करे नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तकर्म करै; यातैं निषिद्धकर्मके अभाववतैं नीच लोककूं प्राप्त होवै नहीं, औ काम्यकर्मके अभाववतैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवै नहीं, औ नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं जो पाप होवै, सो तिनके करनेसैं होवै नहीं औ इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारण औ असाधारण प्रायश्चित्तसैं नाश होवै औ पूर्व करे जो काम्यकर्म हैं, तिनके फलकी इच्छाके अभाववतैं मुमुक्षुकूं तिनका फल होवै नहीं. यातैं मुमुक्षुकूं ज्ञानतैं बिनाही जन्मका अभावरूप मोक्ष होवै है, सो नहीं बनै काहेतैं? नित्यनैमित्तिककर्मकाभी स्वर्गरूप फल है, यह वार्ता भाष्यकारने युक्ति औ प्रमाणसैं प्रतिपादन करी है. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मसैं उत्तम लोककूं प्राप्त होवैगा; जन्मका अभाव बनै नहीं. औ नित्यनैमित्तिककर्मका फल अंगीकार नहीं करैं, तौ नित्यनैमित्तिककर्मका बोधक जो वेद है, सो निष्फल होवैगा. काहेतैं? जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै, तौ ता पापकी अनुत्पत्ति तिनका फल बनै. सो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै नहीं. काहेतैं? जो नित्यनैमित्तिककर्मका नहीं करना सो अभावरूप है, औ पाप भावरूप है; अभावसैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै है; यह कहना बनै नहीं. जो नित्य नैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पापकी उत्पत्ति अंगीकार करैं, तौ "अभावतैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं" यह दूसरे अध्यायमैं भगवान्नें कह्या है, तातैं

विरोध होवैगा. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके अभावतैं भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नहीं. इस रीतिसैं नित्यनैमित्तिककर्मका पापकी अनुत्पत्ति फल नहीं;किंतु नित्यनैमित्तिक कर्मसैं बिना भी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है.यातैं नित्यनैमित्तिक कर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहीं करैं, तौ कर्म निष्फल होवैंगे और जो निष्फल नित्यनैमित्तिककर्म हैं तिनका बोधक वेदभी निष्फल होवेगा.यातैं नित्यनैमित्तिक कर्मसैंभी स्वर्गफल होवै.

औ "जन्मांतरके जो काम्यकर्म हैं, तिनकी इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं, सो वार्ताभी बनै नहीं. काहेतैं? कर्मरूपी बीजसैं दो अंकुर उत्पन्न होवै हैं. एक तौ वासना और दूसरा अदृष्ट.धर्मअधर्मका नाम अदृष्ट है. शुभकर्मसैं तौ शुभवासना, औ धर्मरूप अंकुर होवै है; औ अशुभकर्मसैं अशुभवासना औ अधर्मरूप अंकुर होवै है. शुभवासनासैं तौ आगे शुभकर्ममैं प्रवृत्ति होवै है. औ धर्मसैं सुखका भोग होवै है" इस रीतिसैं अशुभवासनासैं अशुभकर्ममैं प्रवृत्ति होवै है, औ अधर्मसैं दुःखका भोग होवै है. इस रीतिसैं वासनारूप औ अदृष्टरूप अंकुर कर्मरूपी बीजसैं होवै है. तिनविषे "वासनारूप अंकुरका तौ उपायसैं नाश होवै है. औ अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसैं बिना किसी प्रकारसैंभी नाश होवै नहीं." यह शास्त्रका निर्णय है. अशुभकर्मसैं उत्पन्न हुवा जो अशुभवासनारूप अंकुर है, ताका तौ सत्संग आदिक उपायतैं नाश होवै है. औ शुभकर्मसैं उत्पन्न जो हुई शुभवासना, ताका कुसंगआदिकनतैं नाश होवै है. शास्त्रमैं जितना पुरुषार्थ कह्या है, तासैं प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना ताकाही नाश होवै है. यातैं पुरुषा-

थैंभी सफल है. औ भोगका हेतु जो अदृष्ट ताका नाश होवै नहीं, यातैं "फल दिये बिना कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं." यह वार्त्ता जो शास्त्रमैं कही है, तासैंभी विरोध नहीं. इस रीतिसैं अज्ञानीकूं फलभोगबिना कर्मकी निवृत्ति बनै नहीं; औ ज्ञानीकूं तौ भोगसैं बिनाभी कर्मकी निवृत्ति बनैं है. काहेतैं? कर्म औ कर्त्ता तथा फल परमार्थसैं तौ हैं नहीं; किंतु अविद्यासैं कल्पित हैं. ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है. यातैं अविद्याकल्पित जो कर्मादिक हैं, तिनकाभी ज्ञानसैं नाश होवै है. जैसे स्वप्नविषे निद्रासैं जो पदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनका जागृतविषे निद्राकी निवृत्तिसैं अभाव होवै है. तैसे अविद्यारूप निद्रासैं प्रतीत जो होवै हैं कर्म, कर्त्ता, फल, तिनकाभी ज्ञानदशारूप जागृतविषे अविद्याकी निवृत्तिसैं अभाव होवै है; औ ज्ञानबिना अभाव होवै नहीं. औ इच्छाके अभावतैं जो कर्मका फल भोग होवै नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या होवैगा. काहेतैं? "फल भोगेबिना अज्ञानीके कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं" यह ईश्वरका संकल्प है. जो इच्छाके अभावतैं करे कर्मका फल होवै नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्याही होवैगा. औ "सत्यसंकल्प ईश्वर है" यह वार्त्ता शास्त्रमैं प्रसिद्ध है. यातैं "इच्छाके अभावतैं पूर्व करे काम्य कर्मका फल होवै नहीं" यह वार्त्ता विरुद्ध है. जो इच्छाके अभावतैंही काम्यकर्मफल नहीं होवै तो अशुभकर्मका फल किसीकूंभी नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं? अशुभकर्मका फल दुःख है; ताकी किसीकूंभी इच्छा है नहीं. यातैं ज्ञानबिना कर्मके फलका अभाव होवै नहीं.

औ जो पूर्व कह्या, "जैसे कर्मके अनुष्ठानकालमैं

इच्छारहित पुरुष है, ताकूं कर्मका फल वेदांतमतमैं अंगीकार नहीं कऱ्या; तैसैं कर्मके अनुष्ठानसैं अनंतरभी जो पुरुषकी इच्छा दूर होय जावै, तौ कर्मका फल होवै नहीं," सो वार्त्ताभी वेदांतमतकूं नहीं जानके कही है. काहेतैं ? फलकी इच्छासहित जो कर्म करे, अथवा फलकी इच्छारहित जो कर्म करे हैं, तिनकूं कर्मका फलभोग तौ निश्चय होवै है, परंतु इच्छारहित कर्मसैं अंतःकरण शुद्ध होवै है. और इच्छासहित जो कर्म करै है, ताकूं केवल भोग तौ होवै है; परंतु अंतःकरण शुद्ध होवै नहीं. जो इच्छारहित कर्म करनेतैं शुद्ध अंतःकरण होयके श्रवणतैं ज्ञान होय जावै, ताकूं तौ कर्मका फल होवै नहीं. औ "जाने कर्म तौ फलकी इच्छारहित किये हैं, परंतु श्रवणके अभावतैं अथवा किसी अन्यनिमित्ततैं ज्ञान होवै नहीं. ताकूं तौ इच्छारहित कर्मके फलका भोग दूर होवै नहीं " यह वेदांतका सिद्धांत है.यातैं ज्ञानसैं बिना कर्मका फलभोग दूरि होवै नहीं.

और पूर्व कह्या जो " प्रायश्चित्तसैं संपूर्ण अशुभकर्मनका नाश होवै है" सो वार्त्ताभी बनै नहीं. काहेतैं ? अनंतकल्पके जो अशुभकर्म हैं, तिनका एकजन्मविषे प्रायश्चित्त बनै नहीं, औ गंगास्नान औ ईश्वरका नामउच्चारण करनेसैं आदि लेके सर्वपापके नाशक जो साधारण प्रायश्चित्त कहे हैं सोभी ज्ञानकाही साधन हैं, यातैं सर्वपापके नाशक कहे हैं. यातैं ज्ञानसैंही सर्वपापका नाश होवै है.

और पूर्व कह्या जो "नित्यनैमित्तिककर्म करनेतैं जो क्लेश होवै है,सो पूर्वसंचितनिषिद्धकर्मका फल है.यातैं संचितनिषिद्धकर्मका फल और होवै नहीं." सो वार्त्ताभी बनै नहीं.

काहेतैं ? अनंतप्रकारके संचितनिषिद्ध जो कर्म हैं, तिनका फलभी अनंतप्रकारका दुःख है, केवल कर्मके अनुष्ठानका क्लेशही तिनका फल बनै नहीं.

और पूर्व कह्या जो " संपूर्णसंचितकाम्यकर्मतैं एकही शरीर होवै है. " सो वार्त्ताभी बनै नहीं. काहेतैं ? संचित काम्यकर्म अनंत हैं. तिनका एक जन्मविषे भोग बनै नहीं औ एक पुरुषकूं एक कालमैं नानाशरीरसैं जो भोग कह्या सोभी सिद्धयोगीबिना औरकूं बनै नहीं. औ "सिद्धयोगीकूंभी संपूर्ण सामर्थ्य होवै है, परंतु ज्ञानबिना मोक्ष तौ होवै नहीं." यह वेदका सिद्धांत है. इस रीतिसैं काम्यकर्म औ निषिद्ध कर्मकूं त्यागके जो केवल नित्यनैमित्तिककर्म अज्ञानी करै, ताकूं नित्यनैमित्तिक कर्मका फल भोगनेके वास्ते; औ पूर्व जो शुभ अशुभ कर्म करे हैं, तिनका फल भोगनेके वास्ते अनंत शरीर होवैंगे; मोक्ष होवै नहीं. यातैं ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनै है. जैसै स्वप्नविषे जो मिथ्या पदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनकी जागृतबिना निवृत्ति होवै नहीं तैसैं बंधभी मिथ्या प्रतीत होवै है. ताकीभी ज्ञानरूप जागृतिबिना निवृत्ति होवै नहीं.

इस रीतिसैं ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन संभवे हैं औ अधिकारी आदिकनके संबंधभी संभवे हैं, यातैं ग्रंथका आरंभ बनै है.

दोहा ।

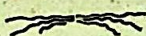
दादू दीनदयालुजू, सत सुख परमप्रकास ।
जामैं मतिकी गति नहीं, सोई निश्चलदास ॥१५॥

इति अनुबन्धविशेषनिरूपणं नाम द्वितीयस्तरंगः ॥ २ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीविचारसागरे

तृतीयस्तरंगः ३ ।



अथ श्रीगुरुशिष्यलक्षणम् ।

गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणम् ।

दोहा ।

पेखि चारि अनुबंधयुत, पढै सुनै यह ग्रंथ ।
ज्ञानसहित गुरुसें जु नर, लहै मोक्षको पंथ ॥ १ ॥

टीकाः—चारि अनुबंधसहित ग्रंथकूं जानके ज्ञानसहित गुरुसैं जो पुरुष पढै, अथवा एकाग्र चित्त करके सुनै, सो पुरुष मोक्षका पंथ जो ज्ञान है, ताकूं प्राप्त होवै ॥ १ ॥

दोहा ।

अनायास मतिभूमिमें[१], ज्ञानचिमन[२] आबाद ।
व्है इहिं कारण कहतहूं; गुरुशिष्यसंवाद ॥ २ ॥

टीकाः—गुरुशिष्यके संवादसैं अर्थनिरूपण करनेतैं श्रोताकूं बोध सुखसैं होवै है. इसकारणतैं गुरुशिष्यके संवादसैं ग्रंथका आरंभ करिये है ॥ २ ॥

---

१ बुद्धिरूप पृथ्वीपर. २ ज्ञानरूप बगीचा.

अथ श्रीगुरुलक्षण.

चौपाई ।

वेदअर्थकूं भले पिछानै। आतम ब्रह्मरूप इक जानै ।
भेद पंचकी बुद्धि नशावै। अद्वय अमल ब्रह्मदरशावै ॥
भव मिथ्या मृगतृषासमाना ।
अनुलव इमि भाषत नहिं आना ॥
सो गुरु दे अद्भुत उपदेशा ।
छेदक शिखा न लुंचितकेशा ॥ ४ ॥

टीकाः—"वेदके अर्थकूं भली प्रकारसैं पिछानै" इ
कहनेसैं अधीतवेद आचार्य होवै है, यह कह्या. औ जी
ब्रह्मकी एकता निश्चयकरके जानै, यातैं आत्मज्ञान
जाकी स्थिति होवै, सो आचार्य होवै है, यह कह्या.
वेद पढ्या होवै, आ ज्ञानविषे जाकी निष्ठा न होवै सो आच
नहीं है. औ ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै, ओ वेद नहीं पढ
सोभी आप तौ मुक्त है, परंतु उपदेश करनेयोग्य आच
नहीं है. काहेतैं? वाकूं जिज्ञासुकी शंका मेटनेकी युक्ति न
आती है. जाके चित्तविषे शंका उठै नहीं, ऐसा जो उत्तमसं
स्कारवाला जिज्ञासु है, ताके तौ उपदेश करनेविषे सम
हैभी, परंतु सर्वके उपदेश करनेयोग्य नहीं; यातैं आचा
नहीं. किंतु अधीतवेद होवै, औ ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै
सो आचार्य कहिये हैं. औ शिष्यकी बुद्धिमैं भान जो है
पंचप्रकारका भेद, ताकूं नानायुक्तिसैं दूर करनेविषे सम
होवैः— १ जीव ईशका भेद, २ जीवनका परस्पर भेद,
जीव जडका भेद, ४ ईश जडका भेद, ५ जडजडका भेद

यह पंचप्रकारका भेद है, ताकूं खंडन करै. काहेतैं ? भेद भयका हेतु है. यातैं भेदका निराकरण अवश्य कर्त्तव्य है. भेदका निराकरण करके अद्वय औ अमल कहिये अविद्यादिमलरहित जो ब्रह्म, ताकूं दरशावे कहिये आत्मरूपकरके साक्षात्कार करवावै. औ सर्व संसारकूं मिथ्यारूप करके उपदेश करै. सो अद्भुत उपदेश देनेवाला आचार्य कहिये है. औ केवल आप मुंडन कराके शिष्यकी शिखा छेदनमात्र करनेवाला; अथवा और कोऊ संप्रदायके चिह्नमात्रसैं अंकित करनेवाला आचार्य नहीं कहिये है ॥ ३ ॥ ४ ॥

दोह ।

करत मोक्ष भवग्राहतैं, दे अंसि[1] निज उपदेश ।
सो दैशिक बुध जन कहत, नहिं कृत गैरिकवेष[2] ॥५॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५ ॥

दोहा ।

दैशिकके लक्षण कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार ।
सो लक्षण है शिष्यके, व्है जिनतैं अधिकार ॥६॥

टीकाः—शास्त्रके अनुसार दैशिक कहिये गुरु, ताके लक्षण कहे, औ जिन साधनसैं ग्रंथमैं अधिकार होवै सो साधन शिष्यके लक्षण हैं. याका यह अभिप्राय हैः—जो अधिकारीके लक्षण पूर्व कहे, सोई लक्षण शिष्यके जान लेने ॥ ६ ॥

अथ गुरुभक्तिका फलवर्णन ।

दोहा ।

ईश्वरतें गुरुमें अधिक, धारै भक्ति सुजान ।

---

१ तलवाररूप. २ गेरूसे रँगे कपडे धारण करनेवाला.

विन गुरुभक्ति प्रवीणहू, लहै न आतमज्ञान ॥ ७

टीकाः—गुरुमैं ईश्वरसैं अधिक भक्ति करै. काहेतैं? सर्वशास्त्रमैं प्रवीणभी पुरुष होवै, सोभी गुरुके उपदेशवि ज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ७ ॥

अवतरणिकाः—जो पूर्वदोहेमैं बात कही सोई दृष्टां प्रतिपादन करै हैः—

दोहा ।

वेद उदधि बिन गुरु लखे, लागै लौन समान ।
बादर गुरुमुखद्वार व्है, अमृतसैं अधिकान ॥ ८

टीकाः—वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है सो बिना लोनके समान क्षार है. जैसैं क्षारसमुद्रमैं पैठके जलकूं जो पान करै, सो केवल क्षारताकूं अनुभव क औ तासूं क्लेशकूं प्राप्त होवै है. तैसैं गुरुबिना जो वे अर्थकूं विचारै है, सो भेदरूपी क्षारकूं अनुभवकरके जन्म रणरूपी खेदकूं प्राप्त होवै है, इसी कारणसैं रामानुज मध्वसैं आदि लेके जो नानापुरुष हुए हैं, तिन्होंने वे अर्थका विचारभी किया है; परंतु गुरुद्वारा नहीं किया. य भेदविषे निश्चयकरके जन्ममरणरूपी खेदकूंही प्राप्त भये क्तिरूप आनंद उनकूं प्राप्त नहीं भया. यद्यपि रामानुज जो भये हैं तिन्होंनेभी वेद अपने अपने गुरुसैंही विचाऱ्या है, औ विचारके व्याख्यान किया है, तथापि के पास उन्होंने वेद पढ्या सो गुरु नहीं; काहेतैं? "जो ब्रह्मकी एकताका उपदेश करै सो गुरु होवै है." यह पूर्व

लक्षणके प्रसंगमैं कहि आये. औ उनके जो पाठक हुवे हैं सो जीवब्रह्मका भेद उपदेश देनेवाले हुवे हैं, यातैं उनके विषे जो गुरुशब्दका प्रयोग करै हैं, सो अर्हंतके समान करै हैं. जैसैं अर्हंतके शिष्य अर्हंतकूं गुरु कहे हैं, परंतु अर्हंत, गुरुपदका विषय नहीं है; तैसैं भेदवादी पुरुषनके जो शिष्य हैं सो अपने पाठकोकूं गुरु कहै हैं; परंतु सो गुरु नहीं है. यातैं रामानुजसैं आदि लेके जो भेदवादी हुवे हैं, तिन्होंने गुरुद्वारा विचार नहीं किया, इस कारणतैं भेदमैं अभिनिवेशकरके जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही प्राप्त भये. तैसैं औरभी जो कोऊ पूर्वलक्षणयुक्त गुरुसैं बिना आपही वेदके अर्थका विचार करै, अथवा भेदवादी पुरुषसैं पढके विचारै, सोभी भेदरूपी क्षारकूं अनुभव करके जन्ममरणरूपी क्लेशकाही अनुभव करै है. यह दोहेके पूर्वार्धका अर्थ है. औ बादररूपी ब्रह्मवित गुरुके मुखद्वारा जो सुनके विचारै, ताकूं अमृतसैंभी अधिक आनंदका हेतु वेद होवै है. जैसैं समुद्रका जल स्वरूपसैं क्षार है, और बादरद्वारा मधुर होवै है, तैसे वेदका अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनंदका हेतु है ॥ ८ ॥

अवतरणिका—पूर्वदोहेमैं यह बात कही कि "गुरुसैं पढ्या जो वेदका अर्थ है" ताके विचारसैं मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवै है; तासो गुरु ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, ऐसा विशेष नहीं कह्या; सो अब कहै हैं. "यद्यपि ज्ञानहीन गुरु नहीं." यह पूर्व कहि आये, तथापि पूर्व कही वार्त्ताकूं दृष्टांतसैं प्रतिपादन करै हैं:—

---

१ जैनी लोग अर्हंतको अपना आचार्यगुरु मानते हैं.

दोहा ।

दृतिपुट घट सम अज्ञजन, मेघसमान सुजान ।
पढै वेद इहि हेतुतैं, ज्ञानीपै तजि आन ॥ ९ ॥

टीकाः—अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जन हैं, सो दृति कहिये मसक औ चरस आदि जो चर्मपात्र, अथवा घट ग्रहण किया जो समुद्रका जल, सो विलक्षणस्वादका नहीं है. तैसें अज्ञानी पुरुषद्वारा ग्रहण किया जो वेदरूपी द्रका अर्थरूपी जल, सो विलक्षण आनंदका हेतु नहीं. अज्ञानीपाठक चर्मपात्र औ घटके समान हैं औ सु कहिये ज्ञानी, मेघके समान हैं. यह वार्त्ता पूर्व प्रति करी है. यातैं चर्मपात्र औ घटके समान जो अज्ञानी हैं, ताकूं त्यागके, मेघसमान जो ज्ञानी ताहीसूं वेदका पढै अथवा सुनैं ॥ ९ ॥

अवतरणिका—"ज्ञानवान्के पास वेद पढै" या क यह शंका होवै है:—"जो वेदकी श्रुति है, तिनहीद्वारा ब्रह्मका स्वरूप विचारनेतैं ज्ञान होवै है; अन्य संस्कृतग्रंथ औ भाषाग्रंथनसैं ज्ञान होवै नहीं. यातैं भाषाग्रंथका आ निष्फल होवैगा.

ताके समाधानका
दोहा ।

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी वानी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रमछेद ॥ १० ॥

टीकाः—"[1] ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है."

[1] "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इति श्रुतिः ।

वार्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध है. यातैं ताकी बानी वेदरूप है. सो भाषारूप होवै, अथवा संस्कृतरूप होवै; सर्वथा भेदभ्रमका छेद करै है. और जो कहै हैं:—"वेदके बचनबिना ज्ञान होवै नहीं," सो नियम नहीं. जैसैं आयुर्वेदमैं कहे जो रोग औ तिनके निदान, औषध, तीन संपूर्णका अन्यसंस्कृतग्रंथ-नसैं, औ भाषा फारसी ग्रंथनसैं, ज्ञान होय जावै है. तैसैं सर्वका आत्मा जो ब्रह्म, ताका ज्ञानभी भाषादिक ग्रंथनसैं होवै है. इसवास्तै सर्वज्ञ जो ऋषि औ मुनि हुवे हैं, तिन्होंने स्मृति, औ पुराण, औ इतिहासग्रंथनमैं ब्रह्मविद्याके प्रकरण कहे हैं. जो वेदसैं बिना ज्ञान न होवै, तौ वे संपूर्ण प्रकरण निष्फल होय जावैंगे. यातैं आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक जो वाक्य है तासूं ज्ञान होवै है; सो वेदका होवै अथवा अन्य होवै. यातैं भाषाग्रंथसैंभी ज्ञान होवै है, यह वार्ता सिद्ध हुई ॥ १० ॥

दोहा ।

वानी जाकी वेदसम, कीजे ताकी सेव ।
व्है प्रसन्न जब सेवतें, तब जानें निजभेव ॥ ११ ॥

टीकाः—जा ब्रह्मवेत्ताकी बानी कहिये वचन वेदके समान है. ता ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करै. काहेतैं? सेवातैं जब आचार्य प्रसन्न होवै, तब निजभेव कहिये अपना स्वरूप जानै. यह कहनेतैं यह वार्ता जनाईः—जो आचार्यकी सेवा है, सो ईश्वरकी सेवासैंभी अधिक है. काहेतैं? जो ईश्वरकी सेवा है, सो तौ अदृष्टफलका हेतु है, औ आचार्यकी सेवा है सो अदृष्टफल औ दृष्टफल दोनोंका हेतु है. जो वस्तु धर्म अध-

र्मकी उत्पत्तिद्वारा फलका हेतु होवै, सो अदृष्टफलका
कहिये है. औ जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्तिसैं बिना सा
रफलका हेतु होवै सो दृष्टफलका हेतु कहिये है. ईश्वरकी
सेवा है सो धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धि
फलका हेतु है. यातैं ईश्वरकी सेवा अदृष्टफलका हेतु है.
आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेक्षाबिना आचार्यकी प्रसन्न
करके उपदेशरूप फलका हेतु है, यातैं दृष्टफलका हेतु है
धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु
यातैं अदृष्टफलकाभी हेतु है. इस रीतिसैं आचार्यकी
ईश्वरकी सेवासैंभी उत्तम है, यातैं जिज्ञासु सर्व प्रकारसैं
वेत्ता आचार्यकी सेवा करै ॥ ११ ॥

अथ आचार्यसेवाप्रकार.

सोरठा।

है जवही गुरुसंग, करै दंडजिमि दंडवत ।
धारै उत्तम अंग, पावन पादसरोजरज ॥ १२ ॥

टीका:—जब गुरु प्राप्त होवै, तब दंडकी नाईं सा
प्रणाम करै. औ पावन कहिये पवित्र जो हैं पादरूपी
जकमल तिनकी रज जो धूरि, ताकूं उत्तम अंग कहिये
कऊपर धारै ॥ १२ ॥

चौपाई।

गुरुसमीप पुनि करिये वासा ।
जो अति उत्कट है जिज्ञासा ॥
तन मन धन वच अर्पी देवै ।
जो चाहै हियबंधन छेवै ॥ १३ ॥

---

१ गुरुके निकट. २ प्रबल. ३ जाननेकी इच्छा छुटाना.

अथ तनअर्पणप्रकार.

चौपाई–तनकरि वहु सेवा विस्तारै।
आज्ञा गुरुकी कबहुँ न टारै ॥

अथ मनअर्पणप्रकार.

मनमें प्रेम रामसम राखै।
व्है प्रसन्न गुरु इमि अभिलाखै ॥ १४ ॥

दोषदृष्टि स्वपने नहिं आनै।
हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानै।
गुरुमूरतिको हियमैं ध्याना।
धारै जो चाहै कल्याना ॥ १५ ॥

अथ धनअर्पणप्रकार.

चौपाई--पत्नी पुत्र भूमि पशु दासी।
दास द्रव्य गृह व्रीहिं विनाशी ॥
धनपद इन सबहिनकूं भाखै।
व्है गुरुशरण दूरि तिहिं नाखै ॥ १६ ॥

सोरठा।

धनअर्पणको भेव, एक कह्यो सुन दूसरो।
व्है गृहस्थ गुरुदेव, याज्ञवल्क्यसम देहि तिहिं ॥१७॥

टीकाः–पत्नीसैं आदि लेके व्रीहि कहिये धान्यपर्यंत सारे धन कहिये हैं. तिन सर्वकूं त्यागके त्यागी जो गुरु है, ताके शरण होवै; यह धनअर्पण कहिये है. काहेतें ? गुरु

---

१ करै. २ स्त्री. ३ पृथ्वी. ४ सुवर्णादि. ५ घर. ६ धान्य. ७ नाशवान्.

७

त्यागी कहा है सो, आप तौ अंगीकार करै नहीं. परंतु ति
गुरुकी प्राप्तिवास्ते धनका त्याग किया है. यातैं ऐसा जे
त्याग है, सोभी गुरुकूंही अर्पण कहिये है.

औ गृहस्थ जो गुरु होवै, तिसकूं समग्र चढाइ देवै य
दूसरे प्रकारका धनअर्पण कहिये है.

यामैं कोऊ शंका करै है:—

कि ब्रह्मविद्याका आचार्य गृहस्थ नहीं होवै है.

सो शंका बनै नहीं.

काहेतैं ? याज्ञवल्क्य औ उद्दालकसैं आदि लेके ब्र
विद्याके आचार्य गृहस्थही वेदविषे बहुत सुने जावै हैं. यातैं
गृहस्थभी आचार्य संभवै है ॥ १७ ॥

अथ वाणीअर्पणविषे--छंदबरवै ।

भाषत गुणंगण[1] गुरुके, वाणी शुद्ध ।
दोष न कवहूं अर्पण, करि इमि बुद्धं[2] ॥ १८ ॥

सोरठा ।

जो चाहै कल्यान, तन मन धन वच अर्पि इमि,
वसै बहुत गुरुथान, भिक्षातैं जीवन करै ॥ १९ ॥

टीका:—जो पुरुष अपना कल्याण चाहै, सो पूर्व
तिसैं तनआदि अर्पण करके आप बहुत काल गुरु जहां हों
ता स्थानविषे वा समीपमैं वास करै. औ आप भिक्षा
जीवन कहिये प्राणधारण करै ॥ १९ ॥

चौपाई--सो भिक्षा धरि दैशिक आगै ।
निजभोजनकूं नहिं पुनि माँगै ।

१ गुणसमूह. २ चतुर.

जो गुरु देइ तु जाठर डारै ।
नहिं दूजे दिन वृत्ति संभारै ॥ २० ॥

टीकाः—जो भिक्षाका अन्न शिष्य ल्यावै सो आपही भोजन नहीं कर लेवै. किंतु दैशिक जो गुरु है, तिसके आगे धर देवे, औ भिक्षा गुरुके आगे धरके अपने भोजनकूं गुरुसैं मांगै नहीं. औ एक दिनमैं दूसरीबार भिक्षा ग्राममैंभी मांगै नहीं. किंतु गुरु जो कृपा करके देवै, तो भोजन करै औ गुरु जो शिष्यकी श्रद्धाकी परीक्षाके निमित्त नहीं देवै, तौ दूसरे दिन वृत्ति जो भिक्षा ताकूं सँभारै ॥ २० ॥

दोहा ।

पुनि गुरुके आगे धरै, भिक्षा शिष्य सुजान ।
निर्वेद न जियमें करै, जो निज चह कल्यान ॥ २१ ॥

टीकाः—निर्वेद नाम ग्लानिका है. अन्य अर्थ स्पष्ट. २१

चौपाई--इमि व्यवहृत अवसर जब पेखै ।
मुख प्रसन्न गुरुसन्मुख लेखै ॥
विनती करै दोउ कर जोरी ।
गुरुआज्ञातें प्रश्न बहोरि ॥ २२ ॥

टीकाः—इस रीतिका व्यवहार करते जब गुरुका अवकाश देखै, औ प्रसन्नमुखसैं गुरु जब अपने सन्मुख देखै, तब हाथ जोड़के गुरुकी स्तुति करै; औ विनती करै कि, हे भगवन्! मैं पूछ्या चाहूं हूं. तब गुरु आज्ञा करै तो प्रश्न करै.

औ कदाचित् जन्मांतरके उत्तम कर्मसैं गुरु कृपा करके शिष्यकूं तनअर्पणआदि सेवासैं विनाही उपदेश कर

देवै, तौभी शुद्ध अधिकारीका कल्याण होय जावै है. का हेतैं? गुरुसेवाके दो फल हैं:—एक तौ गुरुकी प्रसन्नता, औ दूसरा अंतःकरणकी शुद्धि, सो दोनों वाके सिद्ध हैं ॥२२

दोहा ।

तन मन धन वानी अरपि, जिहिं सेवंत[1] चितलाय।
सकलरूप[2] सो आप हैं, दादू सदा[3] सहाय ॥ २३ ॥

इति गुरुशिष्यलक्षण, गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणं नाम तृतीयस्तरंगः समाप्तः ॥ ३ ॥



१ सेवा करते हैं. २ सबका रूप. ३ सर्वकाल.

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीविचारसागरे.

चतुर्थस्तरंगः ४.

दोहा ।

गुरुशिषके संवादकी, कहूं व गाथ नवीन ॥
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन ॥ १ ॥
तीनि सहोदर वाल शुभ, चक्रवती संतान ॥
शुभसंततिपितुतिहिं नमै, स्वर्ग पताल जहान ॥ २ ॥

तीनौ बाल नाम.

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत अदृष्ट ॥
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तमं मध्य कनिष्ठ ॥ ३ ॥

चौपाई--वालपनो सव खेलत खोयो ।
तरुणं पाय पुनि मदनं विगोयो ॥
धारि नारिगृह मार प्रकाशी ।
भोग लहे तिहुँ सव सुखराशी ॥ ४ ॥

दोहा ।

स्वर्ग भूमि पातालके, भोगहि सर्व समाज ॥
शुभ संतति निजतेजवल, करत राजके काज ॥ ५ ॥

---

१ कथा. २ ज्ञानकी इच्छावाले. ३ ज्ञानमें कुशल. ४ बडा ५ छोटा. ६ युवाअवस्था. ७ कामदेवने. ८ कामदेव.

लहिअवसरइकतिहिंपिता, निजहियरच्योविचार ॥
सुखस्वरूपअज[1]आतमा, तासूं भिन्न अ[2]सार ॥ ६ ॥

इहिं कारण तजि राज यह, जानू आतमरूप ॥
स्वर्ग भूमि पातालके, तिहुं पुत्रन करि भूप ॥ ७ ॥

चौपाई-अस विचार शुभसंतति कीना ।
मंत्रि पेखि तिहुँ पुत्र प्रवीना ॥
देश इकंत समीप बुलाये ।
निज विरागके वचन सुनाये ॥ ८ ॥
भाष्यो पुनि यह राज सँभारहु ।
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु ॥
अपर वसहु काशीभुवि स्वामी ।
रहत जहाँ शिव अंतरयामी ॥ ९ ॥
जिहिं मरतहि सुनि शिवउपदेशा ।
अनयासहि तिहिं लोक प्रवेशा ॥
गंग अंग मनु कीर्ति प्रकासै ।
उत्तरवाहिनि अधिक उजासै ॥ १० ॥

दोहा ।

करहु राज इमि भिन्न तिहुँ, पालहु निज निज देश
विन विभाग भ्रातानको, भूमिकाज है क्लेश[3] ॥ ११

सवैया-मत्तगयन्द ।

राजसमाज तजों सब मैं अब ।
जानि हिये दुख ताहि असारा ॥

१ अजन्मा. २ निस्सार अर्थात् असत्य. ३ दुःख.

और तु लोक दुखी अपने दुख ।
मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा ॥
जे भगवान प्रधान अजान ।
समान दरिद्रन ते जन सारा ॥
हेतु विचार हिये [illegible]के भग ।
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा ॥ १२ ॥

वाक्य अनंत कहे इमि तात ।
सुने तिहुँ भ्रात सुबुद्धिनिधाना ॥
बैठि इकंत विचार अपार ।
भनै पुनि आपसमाहिं सुजाना ॥
दे दुखमूल समाज हमें यह ।
आप भयो चह ब्रह्मसमाना ॥
सो जन नागर बुद्धिकसागर ।
आगर दुःख तजै जु जहाना ॥ १३ ॥

दोहा ।

याते तजि दुखमूल यह, राज करौं निजकाज ।
करि विचार इमि गेहते, निकस्यो भ्रात समाज ॥१४॥
तिहुँ खोजत सद्गुरु चले, धारि मोक्ष हिय काम ।
अर्थसहित किय तातको, शुभसंतति यह नाम ॥१५॥
खोजत खोजत देश बहु, सुरसरितीर इकंत ।
तरु पल्लव शाखा सघन, वन तामें इक संत ॥ १६ ॥
बैठ्यो वटविटपहिं तरे, भद्रामुद्रा धारि ।
जीवब्रह्मकी एकता, उपदेशत गुण टारि ॥ १७ ॥

दोषरहित एकाग्रचित, शिष्यसंघ परिवार ।
लखि दैशिकउपदेश हिय, चहुँधा करत विचार ॥ १८ ॥
मनहु शंभु कैलासमें, उपदेशत सनकादि ।
पेखिताहितिहिंलहिशरण, करीदंडवत आदि ॥ १९ ॥
कियो वास षट मास पुनि, शिष्यरीतिअनुसार ।
करी अधिक गुरुसेव तिहुँ, मोक्षकाम हियधार ॥ २० ॥
है प्रसन्न श्रीगुरु तबै, ते पूछे मृदुबानि ॥
किहिंकारन तुम तात तिहुँ, वसहु कौन कह आनि ॥ २१ ॥
तत्त्वदृष्टि तव लखि हिये, निजअनुजनकी सैन ।
कहे उभय कर जोरि निज, अभिप्रायके वैन ॥ २२ ॥
भो भगवन् हम भ्रात तिहुँ, शुभसंततिसंतान ॥
लख्यो चहें बहु भेव हिय, दीन नवीन अजान ॥ २३ ॥
जो आज्ञा है रावरी, तौ व्है पूछि प्रवीन ।
आप दयानिधिकल्पतरु[1], हम अति दुखित अधीन ॥ २४ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

सोरठा ।

सुनहु शिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सो कहूं ।
लहो हिये कुशलात, संशय[2] कोऊ नारहे ॥ २५ ॥

दोहा ।

गुरुकी लखी दयालुता, शिष्यहिये भौ चैन ।
काज सिद्ध निज मानि हिय, भाषे सविनय[3] वैन ॥ २६ ॥

१ कल्पवृक्ष. २ संदेह. ३ विनयसहित.

तत्त्वदृष्टिरुवाच।

चौपाई—भो भगवन् तुम कृपानिधाना।
हौ सर्वज्ञ महेशसमाना ॥
हम अजान मति कछू न जानै।
जन्मादिक संसृतिभय मानै ॥ २७॥
कर्म उपासन कीने भारी।
और अधिक जगपाशी डारी ॥
आप उपाय कहौ गुरुदेवा।
व्है जातैं भवदुखको छेवा ॥ २८ ॥
पुनि चाहत हम परमानंदा।
ताको कहौ उपाय सुछंदा ॥
जबै कृपा करि कहिहौ ताता।
तब व्है है हमारे कुशलाता ॥ २९ ॥

टीकाः—हे भगवन्! आप कृपानिधान हो औ सदाशिवके समान आप सर्वज्ञ हो. औ हे भगवन्! हम जन्ममरणसैं आदि लेके जो दुःखरूप संसार है, तासैं डरैं हैं, ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहो,औ परमानंदकी प्राप्तिका उपाय कहो. औ हे गुरो! उपासना औ कर्मके अनंत अनुष्ठान करे भी, परंतु उनसैं हमारेकूं वांछितफल प्राप्त भया नहीं. औ उलटा संसार उनसैं बधता गया. यातैं आप और उपाय बतावौ, जाकरके हम कृतार्थ होवैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

---

१ संसारके. २ संसाररूप फाँसी डाली है. ३ संसारके दुःखोंका नाश.

दोहा।

मोक्षकाम गुरु शिष्य लखि, ताको साधन ज्ञान।
वेदउक्त भाषन लगे, जीवब्रह्म भिद भान ॥ ३० ॥

टीकाः—दुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिकूं मोक्ष कहै हैं. ताकी कामना शिष्यके हृदयमैं देखके ताका साधन जो वेदउक्त ज्ञान है, सो कहते भये. यद्यपि ज्ञानका स्वरूप अनेकशास्त्रनविषे भिन्न भिन्न वर्णन किया है, तथापि जीव ब्रह्मकी भिद कहिये भेद, ताकूं दूर करनेवाला जो ज्ञान सोई वेदमैं मोक्षका साधन कह्या है; यातैं ताहीकूं कहे हैं ॥ ३० ॥

श्रीगुरुरुवाच।

दोहा।

परमानंदमिलाप तूं, जो शिष चहै सुजान।
जन्मादिक दुखनाश पुनि, भ्रांतिजन्य तिहिं मान
परमानंदस्वरूप तूं, नहिं तोमैं दुखलेश।
अज अविनाशी ब्रह्म चित, जिन आनै हियक्लेश

टीकाः—हे शिष्य! परमानंदकी प्राप्तिविषे, औ जन्ममरणसैं आदि लेके जो दुःखरूप संसार है, ताकी निवृत्तिविषे जो तेरेकूं इच्छा भई है, ता इच्छाकी भ्रांतिसैं उत्पत्ति है, ऐसे तूं जान. काहेतैं? तूं आप परमानंदस्वरूप है, याते ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै है. औ अपना जो स्वरूप है, सो सदा प्राप्त है. ताकी प्राप्तिविषे जो इच्छा सो भ्रांतिविना बनै नहीं. औ जन्मसैं आदि लेके जो संसार है, सो जो कदाचित होवै

तौ वाकी निवृत्तिविषे इच्छा बनै सो जन्मादिक संसारका लेशभी तेरे विषे नहीं है. यातैं अनहुये दुःखकी निवृत्तिविषे भी इच्छा भ्रांतिविना बनै नहीं.औ हे शिष्य ! जन्म औ नाश करके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है, सो तूं है. यातैं अपने हृदयविषे जन्मादिका खेद मत मान ॥ ३२ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच ।

दोहा ।

विषयसंग क्यूं भान व्है, जो मैं आनंदरूप ॥
अव उत्तर याको कहौ, श्रीगुरु मुनिवरभूप ॥ ३३ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! जो मेरा आत्मा आनंदरूप होवै तो विषयके संबंधसैं आनंदका आत्माविषे भान नहीं हुवा चाहिये. यातैं आत्मा आनंदरूप नहीं, किंतु विषयके संबंधसैं आत्माविषे आनंद होवै है ॥ ३३ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

चोपाई—आतमविमुखबुद्धि जन जोई ।
इच्छा ताहि विषयकी होई ॥
तासूं चंचलबुद्धि वखानी ।
सुखअभास होइ तहँ हानी ॥ ३४ ॥
जव अभिलपित पदारथ पावै ।
तव मति छनक विछेप नशावै ॥
तामें व्हें अनँदप्रतिविंवा ।
पुनि क्षणमें वहु चाह विडंवा ॥ ३५ ॥
ताते व्है थिरताकी हानी ।

सो आनँदप्रतिबिंब नसानी ॥
विषयसंग आनंद जु होई ।
बिन सतगुरु यह लखै न कोई ॥ ३६ ॥

टीकाः--हे शिष्य! आत्मासैं विमुख है बुद्धि जाकी, ऐ
जो पुरुष, ताकूं विषयकी इच्छा होवै है. या स्थानविषे
भोगका साधन होवै सो विषय कहिये है, यातैं धनपुत्रादि
नकाभी ग्रहण कर लेना. ता विषयकी इच्छातैं बुद्धि चं
रहै है. ता चंचलबुद्धिमैं आत्मस्वरूप आनंदका. आ
कहिये प्रतिबिंब नहीं होवै है. औ जिस विषयकी इ
हुई होवै सो विषय याकूं प्राप्त होइ जावै, तब या पुरु
बुद्धि क्षणमात्र स्थित होयके अंतर्मुख बुद्धिकी वृत्ति हो
ता अंतर्मुखवृत्तिविषे आत्माका स्वरूप जो आनंद ताका
बिंब होवै है. तिस आत्मरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अ
करके पुरुषको भ्रांति होवै है; कि मेरेकूं विषयसे आनं
लाभ हुवा है, परंतु विषयमें आनंद है नहीं.

जो कदाचित् विषयमैं आनंद होवै, तौ एकविषयसैं
जो पुरुष, ताकूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवै, तबभी
मविषयसैं आनंद हुवा चाहिये; सो होवैं तौ नहीं है.
हमारी रीतिसैं स्वरूपआनंदका तौ भान बनै नहीं. काहे
जो दूसरे विषयकी इच्छा करके बुद्धि चंचल है, ताके
प्रतिबिंब बनै नहीं. किंवाः—

जो विषयमैंही आनंद होवै, तौ जा पुरुषका प्रिय
अथवा और कोई अत्यंत प्यारा; जो अकस्मात् बहुत
पीछे मिल जावै तब वाकूं देखतेही प्रथम जो आनंद
सो आनंद फेर सदा नहीं होता; सो सदाही हुवा चा

काहेतैं ? आनंदका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है. औ हमारी रीतिसैं तौ प्रथमही आनंद बनै है; सदा बनै नहीं. काहेतैं ? एकबेर प्यारेकूं देखके वृत्ति स्थित होवैं है, फेर वृत्ति और पदार्थमैं लगिजावै है; यातैं चंचल है. यातैं पदार्थमैं आनंद नहीं. किंवाः—

जो विषयमैं आनंद होवै,तौ समाधिकाल विषे जो योगानंदका भान होवै है, सो न हुवा चाहिये; काहेतैं ? समाधिमैं किसी विषयका संबंध नहीं है. किंवा—

जो विषयमैंही आनंद होवै, तो सुषुप्तिमैं आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं ? सुषुप्तिविषेभी किसी विषयका संबंध है नहीं. यातैं विषयमैं आनंद नहीं किंतु आत्मस्वरूप आनंद सारे भान होवै हैं, इसीवास्ते वेदमैं लिख्या है:— "आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवै हैं"[1] ॥३६॥

दोहा ।

विषयसंगतैं व्है प्रगट, आतम आनँदरूप ।
शिष्य सुनायों तोहिं मैं, यह सिद्धांत अनूप ॥ ३७ ॥

सोरठा ।

सो तू मोहिं व भाख, जो यामैं शंका रही ।
निजमतिमैं[2] मति राख, मैं ताको उत्तर कहूं ॥३८॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच ।

चौपाई—भो भगवन् तुम दीनदयाला ।
मेट्यो मम संशय ततकाला ॥

---

१ "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" "रसो वै रसः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" २ अपनी बुद्धिमें.

यामैं कछुक रही आशंका।
सो भाषूं अब ह्वै निर्बंका ॥ ३९ ॥
आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी।
ताकी यह सब रीति वखानी ॥
ज्ञानी जनको कहौ विचारा।
कोउ न तुमसम और उदारा ॥ ४० ॥

टीकाः—हे भगवन्! आपने पूर्व विषयके संबं आत्मानंदके भानकी जो रीति कही, सो अज्ञानीपुरु कही, औ ज्ञानीकी नहीं कही. काहेतैं? आत्मासैं वि है बुद्धि जाकी ताका आपने नाम लिया है; सो आत विमुख बुद्धि अज्ञानीकी होवै है; ज्ञानीकी नहीं. यातैं ज्ञानीका विचार कहो. कि ज्ञानवान्कूं विषयकी इ औ ताके संबंधसैं पूर्वरीतिकरके सुखका भान होवै है, थवा नहीं? यह वार्त्ता आप कहो ॥३७--४०॥

श्रीगुरुरुवाच।

दोहा।

सुनहु शिष्य इक बात मम, सावधान मन का
है द्वैविध आतमविमुख, अज्ञानी रु सुजान ॥ ४
ह्वै विस्मृत व्यवहारमें, कबहुँक ज्ञानी सं
अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तूं जान सिधंत ॥ ४

टीकाः—हे शिष्य! तू चित्त और श्रवणकूं साव करके सुन--पूर्व जो हमने आत्मविमुख कह्या है, सो आ विमुख अज्ञानीही नहीं होवै. किंतु ज्ञानवान्कीभी बुद्धि व्यवहारमैं आइ जावै, तब वह तत्त्वकूं भूल जावै है. ति

कालविषे ज्ञानवान्‌भी आत्मविमुख होवै है. औ ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकारही रहे, तौ भोजनादिक व्यवहार न होवै. यातैं आत्मविमुखबुद्धि दोनोंकी बनै है. अज्ञानीकी तौ बुद्धि सदा आत्मविमुख होवै तिसकालमैं ज्ञानीकूंभी इच्छा, औ विषयके संबंधसैं जो आत्मस्वरूप आनंदका भान सो अज्ञानीके समान है; परंतु इतना भेद है:--विषयके संबंधसैं जो आनंदका भान होवै है, ताकूं ज्ञानी तौ जानै है कि जो यह आनंद है सो मेरे स्वरूपसैं न्यारा नहीं है; किंतु ताकाही आभास है.यातैं ज्ञानीकूं विषयभोगमैंभी समाधिही है. औ अज्ञानी नहीं जानै है; कि मेराही स्वरूप आनंद है, औ दोनोंका स्वरूप आनंद है. विषयसैं केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवै है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

शिष्य उवाच.

चौपाई—हे प्रभु परमानंद बखान्यो ।
मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो ॥
नहिं तो मैं भवबंधनलेशा ।
कह्यो आप पुनि यह उपदेशा ॥ ४३ ॥
यामैं शंका मुहिं यह आवै ।
जातैं तव वच हिय न सुहावै ॥
नहिं मोमैं यह बंध पसारो ।
कहो कौन तौ आश्रय न्यारो ॥ ४४ ॥

टीकाः--हे भगवन् ! आपने कह्या " तूं परम आनंदस्वरूप है " सो मैं भलीप्रकारसैं जान्या और आपने कह्या कि जो "जन्ममरणसैं आदि लेके संसाररूप दुःख तेरे

विषे है नहीं; यातैं ताकी निवृत्ति बनै नहीं." याके
मेरेकूं शंका है:—कि जन्मादिक दुःख मेरेविषे नहीं है
जाविषे यह संसार है, सो मेरेसैं न्यारा कहिये भिन्न आ
आप कृपा करिके बतावौ, जाके विषे संसारदुःख जा
अपनेविषे नहीं मानूं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्रीगुरुरुवाच।

सोरठा।

सुनहु शिष्य मम वानि, जाते तव शंका मिटै
है जगकी अतिहानि, तौ मोमें नहिं औरमें ॥ ४५
अर्थ स्पष्ट ॥ ४५ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच.

दोहा।

जो भगवन् कहुं है नहीं, जन्म मरण जगखेद
व्है प्रत्यक्षप्रतीति क्यूं ?, कहो आप यह भेद ॥ ४
टीका:--हे भगवन् ! जो जन्ममरणसैं आदि लेके सं
रदुःख मेरेविषे तथा औरविषे कहूंभी नहीं है, तौ प्र
प्रतीत क्यूं होवै है ? जो वस्तु नहीं होवै, सो प्रतीत है
नहीं. जैसैं वंध्याका पुत्र औ आकाशविषे पुष्प नहीं है;
प्रतीत होवै नहीं. तैसैं संसारभी नहीं होवै तौ प्रतीत न
हुवा चाहिये. औ जन्मसे आदि लेके संसार प्रतीत होवै
यातें "जन्मादिक संसाररूपी दुःख नहीं है" यह कह
बनै नहीं ॥ ४६ ॥

श्रीगुरुरुवाच.

दोहा।

आत्मरूप अज्ञानतें, व्है मिथ्या परतीति ।

जगत स्वप्न नभनीलता, रज्जुभुजंगकी रीति ॥४७॥

टीकाः—जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है, तौभी आत्माका ब्रह्मस्वरूप करके, अज्ञानतैं मिथ्या प्रतीत होवै है. जैसे स्वप्नके पदार्थ, आकाशमैं नीलता, औ रज्जुमैं सर्प परमार्थसै नहीं है औ मिथ्या प्रतीत होवै हैं, तैसे जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है; मिथ्या प्रतीत होवै है ॥ ४७ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच ।

चौपाई—मिथ्यासर्प रज्जुमैं जैसे ।
भाष्यो भव आतममैं तैसे ॥
कैसे सर्प रज्जुमैं भासै ।
यह संशय मन बुद्धि विनासै ॥४८॥

टीकाः—जैसे रज्जुमैं[1] सर्प मिथ्या है, तैसे आत्मामैं भवदुःख[2] मिथ्या कह्या; तहां दृष्टांतके ज्ञानविना दार्ष्टांतका ज्ञान होवै नहीं. यातैं रज्जुमैं सर्प कैसे भासै ? यह दृष्टांतमैं प्रश्न है. ॥ ४८ ॥

अथ प्रश्नअभिप्राय.

चौपाई—असतख्याति पुनि आतमख्याती ।
ख्याति अन्यथा अरु अख्याती ॥
सुने चारि मत भ्रमकी ठौरा ।
मानूं कौन कहो यह ब्यौरा ॥ ४९ ॥

टीकाः—जहां रज्जुमैं सर्प, औ सीपीमैं रूपा, इत्यादिक भ्रम है, तहां चार मत सुने हैंः—शून्यवादी असत्यख्याति कहे हैं. क्षणिकविज्ञानवादी आत्मख्याति कहे हैं. न्याय औ

---

1 रस्सीमें. 2 सांसारिक दुःख.

वैशेषिकमतमैं अन्यथाख्याति कहै हैं. सांख्य औ प्रभा अख्याति कहै हैं. तहां:—

शून्यवादीका यह अभिप्राय है:---जेवरी देशमें अत्यंत असत् है, तैसैं अन्यदेशमेंभी अत्यंत असत् है. अत्यंत असत् सर्पकी जेवरीदेशमैं प्रतीति होवै है; असत्यख्याति कहै है. अत्यंत असत्यसर्पकी ख्याति क भान औ कथन है.

विज्ञानवादीका यह अभिप्राय है:--जेवरीदेशमैं तथा न्यदेशमें बुद्धिके बाहिर कहूं सर्प है नहीं. सारे पदार्थ बु भिन्न नहीं. किंतु सर्वपदार्थनके आकारकूं बुद्धिही धारै है बुद्धि क्षणिक विज्ञानरूप है, क्षणक्षणमैं नाश औ उत्पत्ति प्राप्त होवै है. जो विज्ञान सोई सर्परूप प्रतीत होवै है. आत्मख्याति कहै हैं. आत्मा कहिये क्षणिक विज्ञानरूप ताका सर्परूपसे ख्याति कहिये भान औ कथन है.

नैयायिकका औ वैशेषिकका यह अभिप्राय है:- आदिक स्थानमैं सांचा सर्प है, ताकूं नेत्रसैं देखे हैं. नेत्रमैं दोष है, ताके बलतैं सन्मुख समीप प्रतीत होवै यद्यपि सांचा सर्प औ नेत्रके मध्य भीति आदिक अंतराय तथापि दोषसहित नेत्रतैं अंतरायसहितभी सर्प दिखै है. यामैं कोऊ ऐसी शंका करै:—दोषतैं सामर्थ्य घटे है, बधै नहीं जैसे जठराग्निमैं पाचनसामर्थ्य वात-पित्त-कफदोषतैं घटै तैसैं नेत्रमेंभी तिमिरादिदोषतैं सामर्थ्य घटी चाहिये. वांबीआदिक स्थानमैं स्थित सर्पका दोपसहित नेत्रतैं कह्या, तहां शुद्ध नेत्रसैं तौ परदेशमैं स्थितका प्रत्यक्ष होवै नहीं; औ दोषसहितसैं होवै है. यातैं दोषतैं नेत्र

सामर्थ्य अधिक होवै है; यह माननेमैं कोई दृष्टांत नहीं सो शंका बनै नहीं. काहेतैं किसीकूं पित्तदोषतैं ऐसा रोग होवै है; जो चतुर्गुणभोजन कियेतैंभी तृप्त होवै नहीं. जैसे पित्त-दोषतैं जठराग्निमैं पाचनसामर्थ्य बधै है? तैसें नेत्रमैंभी तिमि-रादिदोषतैं परदेशमैं स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करनेका सामर्थ्य बधै है. इस रीतिसैं बांबी आदिक देशमैं स्थित सर्पका अ-न्यथा कहिये और प्रकारतैं सन्मुख जेवरीदेशमैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है, औ

चिंतामणिकार (नैयायिक) का यह मत है:--जो दो-षसहित नेत्रतैं बांबीमैं स्थित सर्पका ज्ञान होवै, तौ बीचके और पदार्थनका ज्ञानभी हुवा चाहिये. यातैं परदेशमैं स्थित वस्तुका नेत्रसैं ज्ञान होवै नहीं; किंतु दोषसहित नेत्रतैं जेव-रीका निजरूपतैं भान होवै नहीं. सर्परूपतैं भान होवै है. यातैं जेवरीकाही अन्यथा कहिये और प्रकारतैं सर्परूपतैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है.

औ अख्यातिवादीका यह अभिप्राय है:—जो असत्की प्रतीति होवै, तौ वंध्याका पुत्र, औ शशशृंगकी प्रतीति हुई चाहिये. यातैं असत्ख्याति असंगत है. क्षणिकविज्ञानकाही आकार सर्पादिक होवै तो क्षणमात्रसैं अधिककाल स्थिर प्रतीति नहीं हुई चाहिये. यातैं आत्मख्याति असंगत है. औ अन्यथाख्यातिकी प्रथम रीति तौ चिंतामणिके मतसैं दूषि-तही है. तैसें चिंतामणिकी रीतिसैंभी अन्यथाख्यातिमत असंगत है. काहेतैं? ज्ञेयके अनुसार ज्ञान होवै है. ज्ञेय रज्जु औ सर्पका ज्ञान, यह कहना अत्यंत विरुद्ध है. यातैं यह रीति माननी योग्य है:—

जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम है, तहां रज्जुसैं नेत्रका अपनी वृ
द्वारा संबंध होयके रज्जुका इदंरूपते सामान्य ज्ञान होवै
औ सर्पकी स्मृति होवै है. "यह सर्प है" यामैं दो ज्ञान
"यह अंश तौ रज्जुका सामान्यप्रत्यक्ष ज्ञान है" औ "
है" ऐसे सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है. इस रीतिसैं "यह सर्प
इहां दो ज्ञान हैं;परंतु भयदोष प्रमातामैं,औ तिमिरदोष प्र
णमैं. ताके बलतैं पुरुषकूं ऐसा विवेक नहीं होता, कि मेरेकूं
ज्ञान हुवे हैं. यद्यपि "यह" अंश रज्जुका सामान्यज्ञान य
है, औ पूर्व देखे सर्पका स्मृतिज्ञानभी यथार्थही है,तौभी
दो ज्ञानं हुवे हैं. तिनमैं रज्जुका सामान्यप्रत्यक्षज्ञान है;औ
र्पका स्मृतिज्ञान है; यह विवेक नहीं होवै है. तिस दो ज्ञा
अविवेककूंही सांख्यप्रभाकरमतमैं भ्रम कहै हैं. यही
सारे भ्रमस्थलमैं जाननी. या रीतिसैं रज्जु आदिकनमैं
दिक भ्रम जहां होवै, तहां चार मत सुने हैं, तिनमैं नीके
होइ सो कहो, ताहीकूं मैं मानूं. यह शिष्यका प्रश्न है.॥

श्रीगुरुरुवाच।

ख्याति अनिर्वचनीय लखि, पंचम तिनते और।
युक्तिहीन मत चारिये, मानहु भ्रमकी ठौर ॥ ५

टीकाः—हे शिष्य ! तिन चार ख्यातितैं औरही भ्रम
ठौरअनिर्वचनीयख्याति पंचम लख औ असतख्याति, आ
ख्याति, अन्यथाख्याति व अख्याति ये चार मत युक्ति
हैं. जैसे उत्तर उत्तर मतनिरूपणमैं तीन मत असंगत
तैसैं अख्यातिमतभी असंगत है. काहेतैं? "यह सर्प है

अज्ञानमैं प्रथम "यह" अंश तौ रज्जुका सामान्यज्ञानप्रत्यक्ष है; औ "सर्प है" इतना अंश पूर्वदृष्टसर्पका स्मरणज्ञान है. यह अख्यातिवादीका मत है. तहां पूर्वदृष्टसर्पका स्मरणही मानै. औ सन्मुख रज्जुदेशमैं सर्पका ज्ञान नहीं मानै, तौ सन्मुख रज्जुतैं पुरुषकूं भय होयके उलटा भागै है, सो भय औ भागना नहीं हुवा चाहिये. यातैंः—

सन्मुख रज्जुदेशमैंही सर्पकी प्रतीति होवै है; पूर्वदृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं. किंवाः--रज्जुका विशेषरूपतैं यथार्थज्ञान हुवेतैं अनंतर ऐसा बाध होवै हैः--मेरेकूं रज्जुमैं सर्पकी प्रतीति मिथ्या होती भई." या बाधतैंभी रज्जुमैंही सर्पकी प्रतीति होवै है, पूर्वदृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं. औ 'यह सर्प है' इहां ज्ञान एकही प्रतीत होवै है, दो नहीं. औ एक कालमैं अंतःकरणतैं स्मृतिरूप औ प्रत्यक्षरूप दो ज्ञान होवैंभी नहीं. यातैं अख्यातिमतभी अत्यंत असंगत है. इन चार मतनका प्रतिपादन औ खंडन 'विवरण' औ 'स्वराज्यसिद्धि' आदिक ग्रंथनमैं विस्तारसैं लिख्या है. प्रतिपादन औ खंडनकी युक्ति कठिन है. यातैं संक्षेपतैं जिज्ञासुकूं रीति जनाई है; विस्तार हमने लिख्या नहीं.

सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है; ताकी यह रीति हैः—अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रादिद्वारा निकसके विषयके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. तातैं विषयका आवरण भंग होयके ताकी प्रतीति होवै है. तहां प्रकाशभी सहायक होवै है. प्रकाश बिना पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं. जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम होवै है, तहां अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसी भी, औ रज्जुसैं ताका संबंधभी होवै; परंतु तिमिरादिकदोष

प्रतिबंधक हैं, यातैं रज्जुके समानाकारवृत्तिका स्वरूप
नहीं; यातैं रज्जुका आवरण नाशै नहीं. इस रीतिसैं आ
भंगका निमित्त वृत्तिका संबंध हुयेतैंभी, जब रज्जुका
रणभंग होवै नहीं, तब रज्जुचेतनमैं स्थित अविद्यामैं
होयके, सो अविद्या सर्पाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है
अविद्याका कार्य सर्प सत् होवै, तौ रज्जुके ज्ञानसैं
बाध होवै नहीं. औ बाध होवै है; यातैं सत् नहीं. औ
होवै तौ वंध्यापुत्रकी नाईं प्रतीति नहीं होवै, औ प्र
होवै है; यातैं असत्भी नहीं. किंतु सत्असत्सैं वि
अनिर्वचनीय है.शुक्तिआदिकनमैं रूपादिकभी याही
अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं. ता अनिर्वचनीयकी जो
कहिये प्रतीति औ कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहि
५ जैसैं सर्प अविद्याका परिणाम है, तैसैं ताका ज्ञान
त्तिभी अविद्याकाही परिणाम है, अंतःकरणका नहीं.
जैसैं रज्जुज्ञानतैं सर्पका बाध होवै है, तसैं ताके ज्ञान
बाध होवै है. अंतःकरणका ज्ञान होवै तौ बाध नहीं
चाहिये. यातैं ज्ञानभी सर्पकी नाईं अविद्याका कार्य
सत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय है. परंतु रज्जुउपहित
स्थित तमोगुणप्रधान अविद्या अंशका परिणाम सर्प है
साक्षीचेतनमैं स्थित अविद्याके सत्वगुणका परिणाम वृत्ति
है. रज्जुचेतनकी अविद्याका जा समय सर्पाकार परिणाम
है, ताही समय साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परि
होवै है. काहेतैं? रज्जुचेतन आश्रित अविद्यामैं क्षोभ
निमित्त है, ता निमित्तसैंही साक्षीआश्रित अविद्या
क्षोभ होवै है; यातैं भ्रमस्थलमैं सर्पादिक विषय औ ति

ज्ञान, एकही समय उत्पन्न होवै है. औ रज्जुआदिक अधिष्ठानके ज्ञानतैं एकही समय लीन होवै है, या रीतिसैं सर्पादिक भ्रमविषे बाह्य अविद्याअंश सर्पादिक विषयका उपादानकारण है. औ साक्षीचेतनआश्रित अंतरअविद्याअंश तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारण है.

औ स्वप्नमें तौ साक्षीआश्रित अविद्याकाही तमोगुण अंश विषयरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है. ता अविद्यामैं सत्वगुण अंश ज्ञानरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है. यातैं स्वप्नमैं अंतर अविद्याही विषय औ ज्ञान दोनोंका उपादानकारण है. याहीतैं बाह्यरज्जुसर्पादिक, औ अंतरस्वप्नपदार्थ, साक्षीभास्य कहिये है.

रज्जुआदिकनमैं अनिर्वचनीयसर्पादिक,औ तिनका ज्ञान भ्रम कहिये है; औ अध्यास कहिये है. सो भ्रम अविद्याका परिणाम है, औ चेतनका विवर्त्त है. उपादानकारणके समानस्वभाववाला अन्यथास्वरूप परिणाम कहिये है. औ अधिष्ठानतैं विपरीतस्वभाववाला अन्यथारूप विवर्त्त कहिये है. उपादानकारण अविद्या, सो अनिर्वचनीय है. तैसैं रज्जुमैं सर्प औ ताका ज्ञानभी अनिर्वचनीय है. यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञान अविद्याके समानस्वभाववाला अन्यथास्वरूप कहिये अविद्यातैं और प्रकारका आकार है. सो अविद्याका परिणाम है. तैसैं रज्जु अवच्छिन्न अधिष्ठान, चेतन सत्‌रूप है, सर्प औ ताका ज्ञान सत्‌सैं विलक्षण है. यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञान अधिष्ठानचेतनतैं विपरीतस्वभाववाला, अन्यथास्वरूप कहिये चेतनसैं और प्रकारका आकार है.

मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन है, रज्जु नहीं. काहेतैं? सर्पकी नाईं रज्जुभी कल्पित है. कल्पित वस्तु अ-

न्यकल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं. यातैं रज्जुउपहित
नही अधिष्ठान है, रज्जु नहीं. औ रज्जुविशिष्टकूं
ष्ठान कहैं, तौभी रज्जु औ चेतन दोनों अधिष्ठान हैं
तहां रज्जुभागमैं अधिष्ठानपना बाधित है. यातैं रज्जुउप
चेतनही अधिष्ठान है, रज्जुविशिष्ट चेतन नहीं. तैसैं
ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है.यारीतिसैं भ्रमस्थानमैं
यका औ ताके ज्ञानका उपाधिभेदसैं अधिष्ठान भिन्न है
नहीं औ विशेषरूपतैं रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामैं क्षोभ
दोनोंकी उत्पत्तिमैं निमित्त है. तैसैं रज्जुका ज्ञान दो
निवृत्तिमैंभी निमित्त कही है. याके विषे,

ऐसी शंका होवै है.

रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं. काहेतैं ?
वस्तुका जो अधिष्ठान होवै, तो अधिष्ठानके ज्ञानतैं मि
निवृत्ति होवै है, यह अद्वैतवादका सिद्धांत है. औ
सर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहित चेतन है; रज्जु नहीं.
रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं. या शंका

यह समाधान है.

रज्जुआदिक जडपदार्थका ज्ञान अंतःकरणकी
रूप होवै तहां आवरणभंग वृत्तिका प्रयोजन है. सो
रण अज्ञानकी शक्ति है. यातैं आवरण जडके आश्रि
नहीं, किंतु जडका अधिष्ठान जो चेतन, ताके आश्रि
यातैं रज्जुसमानाकार अंतःकरणकी वृत्तितैं रज्जुअव
चेतनकाही आवरणभंग होवै है. वृत्तिमैं जो चिदाभा
तातैं रज्जुका प्रकाश होवै है. चेतन स्वयंप्रकाश है.

भासका उपयोग नहीं. यह प्रक्रिया संपूर्ण आगे प्रतिपा-
न करैंगे. इस रीतिसैं चिदाभाससहित अंतःकरणकी वृत्ति-
रूप ज्ञानमैं जो वृत्तिभाग, ताका आवरणभंगरूप फल चेत-
मैं होवै है, औ चिदाभासभागका प्रकाशरूप फल रज्जुमैं
होवै है. यातैं वृत्तिज्ञानका केवल जडरज्जु विषय नहीं, किंतु
अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु साभासवृत्तिका विषय है. इसी-
कारणतैं सिद्धांतग्रंथमैं यह लिख्या है—"अंतःकरणजन्य
वृत्तिज्ञान सारे ब्रह्मकूं विषय करै है." या प्रकारसैं रज्जुज्ञानसैं
निरावरण होके सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्नचेतनकाभी
निजप्रकाशतैं भान होवै है. यातैं रज्जुका ज्ञानही सर्पके
अधिष्ठानका ज्ञान है. तातैं सर्पकी निवृत्ति संभवै है.

अन्यशंका.

यद्यपि या रीतिसैं सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानतैं संभवै है,
तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं. काहेतें ? सर्पका
अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्न चेतन है. औ सर्पके ज्ञानका अ-
धिष्ठान साक्षी चेतन है. पूर्वउक्तप्रकार रज्जुज्ञानसैं रज्जु-
अवच्छिन्नचेतनकाही भान होवै है; साक्षीचतनका नहीं.
यातैं रज्जुज्ञान हुयेतैंभी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन
अज्ञात है औ अज्ञातअधिष्ठानमैं कल्पितकी निवृत्ति होवै
नहीं, किंतु ज्ञातअधिष्ठानमैंही कल्पितकी निवृत्ति होवै है.
यातैं रज्जुज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं. ताका,

समाधान यह है ।

विषयके अधीन ज्ञान होवै है. विषय जो सर्प, ताकी
निवृत्ति होतेही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावतैं आपही
निवृत्ति होवै है.

और जो ऐसे कहे कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान-
ना होवै नहीं, औ सर्पका ज्ञानभी कल्पित है, ताका
ष्ठान साक्षी चेतन है; ताके ज्ञानविना कल्पितसर्पके
निवृत्ति बनै नहीं.

ताका समाधान यह है:—निवृत्ति दो प्रकारकी
एक तौ अत्यंतनिवृत्ति होवै है, औ दूसरी कारणमें
सोभी निवृत्ति कहिये है. कारणहित कार्यकी निवृत्ति
तनिवृत्ति कहिये है. सारे कल्पितवस्तुका कारण अ
आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञानसहित कल्पित
निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतैंही होवै है, परंतु
लयरूप जो निवृत्ति, सो अधिष्ठानज्ञानविनाभी होवै
सुषुप्ति प्रलयमें सर्वपदार्थनका अज्ञानमैं लय अधिष्ठा
विना होवै है. तहां सर्व पदार्थनमें लयके निमित्त, भो
न्मुख कर्मका अभाव है. तैसैं अधिष्ठानसाक्षीके ज्ञान
सर्पज्ञानका लय होवै है. तहां सर्पज्ञानका विषय
ताका अभावतैं सर्पज्ञानके लयमें निमित्त है. या
सर्पकी निवृत्ति रज्जुज्ञानतैं होवै है. औ सर्पज्ञानका वि
सर्प, ताके अभावतैं सर्पज्ञानका लय होवै है.

अथवा, सर्प औ ताका ज्ञान दोनोंकी निवृत्ति
नतैंही होवै है. काहेतैं? जब रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान है
अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसके रज्जुदेशमें प्रा
है. औ रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवै है. यातैं
प्रत्यक्षसमय वृत्तिउपहितचेतन, औ रज्जुउपहितचेतन
एक होवै हैं. तिनका भेद रहै नहीं. यामैं यह हेतु है
नका स्वरूपसे तौ भेद कहूंभी नहीं, किंतु उपाधिके

चेतनका भेद होवै है. वृत्तिउपहितचेतन औ रज्जुउपहितचेतनका भेदक उपाधि, वृत्ति औ रज्जु है. सो वृत्ति औ रज्जु भिन्न भिन्न देशमैं स्थित होवैं, तब तौ उपाधिवाले चेतनका भेद होवै है, औ दोनों उपाधि एकदेशमैं स्थित होवैं, तब उपहितचेतनका भेद बनै नहीं.यह वार्त्ता "वेदांतपरिभाषादि"क ग्रंथनमैं लिखी हैं. भिन्नदेशमैं स्थित उपाधितैंही उपहितचेतनका भेद होवै है.एकदेशमैं जब दोनों उपाधि स्थितभी होवैं तब दोनों उपाधिनसैं उपहितभी चेतन एकही होवै है. या प्रकारतैं रज्जुके प्रत्यक्षज्ञानसमय रज्जुउपहितचेतन औ वृत्तिउपहितचेतन एक है, तहां साक्षीचेतनही वृत्तिउपहितचेतन है. काहेतैं ? अंतःकरण औ ताकी वृत्तिमैं स्थित जो तिनका प्रकाशक चेतनमात्र, सो साक्षी कहिये है. इस रीतिसैं रज्जुज्ञानसमय साक्षीचेतन औ रज्जुउपहित चेतनका अभेद होवै है. औ रज्जुउपहितचेतनका रज्जुज्ञानसैं भान होवै है, औ रज्जुउपहित चेतनसैं अभिन्न साक्षीकाभी रज्जुज्ञानसैं भान होवै है. या प्रकारतैं रज्जुज्ञानसमय अधिष्ठानसाक्षी भान होनेतैं कल्पितसर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है. किंवाः—

"कूटस्थदीप" मैं "विद्यारण्यस्वामी"ने यह प्रक्रिया कही है:-"आभाससहित अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रियद्वारा निकसके घटादिक विषयकूं प्रकाशै है. घटादिक विषय, औ तैसैं आभाससहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान, तथा आभाससहित अंतःकरणरूप ज्ञाता, इन तीनोंकूं साक्षी प्रकाशै है." "यह घट है" इस रीतिसैं आभाससहित वृत्तिसैं घटमात्रका प्रकाश होवै है. "मैं घटकूं जानूं हूं" या रीतिसैं "मैं" शब्दका अर्थ ज्ञाता, औ ज्ञेय घट, औ ताका ज्ञान;

या त्रिपुटीका साक्षीसैं प्रकाश होवै है. या प्रकारतैं सर्व
टियोंका प्रकाशक साक्षी है. साक्षी आप अज्ञात होवै
त्रिपुटीका ज्ञान साक्षीसैं बनै नहीं. यातैं सर्वत्रिपुटियोंके
नमैं साक्षीका ज्ञान अवश्य होवै है. ता साक्षीज्ञानतैं सर्प
की निवृत्ति संभवै है. या पूर्वरीतिसैं सर्प औ ताके ज्ञा
अधिष्ठान भिन्न भिन्न कह्या. तामैं इतने शंका समाधा
या पक्षमैं शंकासमाधानरूप विवाद और भी बहुत है.

सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है, यह पक्ष
तहां बाह्य जो रज्जुचेतन है ताकूं सर्प औ ताके ज्ञानका
ष्ठान कहैं, तौ बनै नहीं. काहेतैं? जितने ज्ञान होवै हैं सो
ता अथवा साक्षीके आश्रित होवै हैं. बाह्य जो रज्जुचेतन,
आश्रित ज्ञान बनै नहीं. तैसे सर्प औ सर्पके ज्ञानका अ
अतःकरणउपहित साक्षी चेतनकूं मानै, तौ शरीरके
अंतःकरणदेशमैं सर्पकी प्रतीति चाहिये; रज्जुदेशमैं
नहीं चाहिये. अंदर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति भ
प्रतीतिबलतैं मानै तौ आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवैगी.
रीतिसैं रज्जुउपहितचेतन, ज्ञानका अधिष्ठान बनै नहीं
अंतःकरणउपहितचेतन, सर्पका अधिष्ठान बनै नहीं. यातैं
औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नहीं बनै. तथापि र
समीप प्राप्त जो अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति, तामैं
चेतनके आश्रित अविद्या, सर्पाकार औ ज्ञानाकार परिण
प्राप्त होवै है. वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्याका
गुण सर्पका अंश उपादानकारण है. सर्प औ ताके ज्ञा
वृत्तिउपहितचेतन अधिष्ठान है. वृत्ति, रज्जुदेशमैं
गई, यातैं वृत्तिउपहितचेतनभी बाहिर है. यातैं सर्पका

श्रय बनै है. जितना अंतःकरणका स्वरूप होवै, उतनाही साक्षीका स्वरूप होवै है. शरीरके अंदर स्थित जो अंतःकरण, सोई वृत्तिस्वरूपपरिणामकूं प्राप्त होवै है. यातैं वृत्तिउपहितचेतन साक्षी है. यातैं ज्ञानका आश्रय बनै है. रज्जुका जब साक्षात्कार होवै, तब रज्जुचेतन औ वृत्तिचेतन दोनों एक होवै हैं. यातैं रज्जुके ज्ञानसैं सर्प औ ताके ज्ञानकी निवृत्तिभी बनै है.

जहां एक रज्जुमैं दशपुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसीकूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार, किसीकूं जलधारा; इस रीतिसैं भिन्न भिन्न प्रतीति होवै; अथवा, सर्वकूं सर्पही प्रतीत होवै, तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साक्षात्कार होवै है, ताके वृत्तिचेतनमैं कल्पित अध्यासकी निवृत्ति होवै है. जाकूं रज्जुज्ञान नहीं होवै, ताके अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं. यातैं वृत्तिचेतनही कल्पितका अधिष्ठान है, रज्जुआदिक विषय उपहितचेतन नहीं. जो रज्जुउपहित चेतनकूं सर्पदंडादिकनका अधिष्ठान मानै, तो दशपुरुषनकूं प्रतीत जो होवै दशपदार्थ, सो एक एककूं सारे प्रतीत हुए चाहिए. औ हमारी रीतिसैं तौ जाकी वृत्तिचेतनमैं जो पदार्थ कल्पित है, सो ताहीकूं प्रतीत होवै; अन्यकूं नहीं. इस रीतिसैं बाह्य सर्पादिक औ तिनके ज्ञानका वृत्तिउपहित साक्षी अधिष्ठान है. स्वप्नके पदार्थ, औ तिनके ज्ञानकाभी अंतःकरणउपहितसाक्षीही अधिष्ठान है. या प्रकारतैं सत् असत्सैं विलक्षण जो अनिर्वचनीय अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय सर्पादिक तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति औ कथन, सो अनिर्वचनीय ख्याति कहिये हैं ॥ ५० ॥

शिष्यउवाच ।

दोहा ।

यह मिथ्या परतीत व्है, जामें जगत अपार ।
सो भगवन् मोकूं कहौ, को याको आधार ॥ ५१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५१ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा ।

तव निजरूप अज्ञानतें, व्है मिथ्या जग भान ।
अधिष्ठान आधार तूं, रज्जु भुजंग समान ॥ ५२ ॥

टीका:--हे शिष्य! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूप ताके अज्ञान, तिससैं मिथ्या जगत् प्रतीत होवै है. यातैं जगत्का आधार औ अधिष्ठान तूं है. जैसें रज्जुके अज्ञानसैं मिथ्याभुजंग प्रतीत होवै है, तहां मिथ्याभुजंगका आधार औ अधिष्ठान रज्जु है. यद्यपि मिथ्यासर्पका अधिष्ठान मुख्य द्वितीयपक्षमैं वृत्तिउपहितचेतन है, औ प्रथमपक्षमैं रज्जुउपहितचेतन है, किसी पक्षमैं रज्जु अधिष्ठान नहीं; तथापि प्रथम पक्षमैं चेतनमैं अधिष्ठानपनेकी उपाधि रज्जु है. यातैं स्थूलदृष्टिसैं[2] रज्जु अधिष्ठान कहिये है. जैसैं मिथ्याभुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है, तैसैं मिथ्याजगत्का अधिष्ठान औ आधार तूं है ॥ ५२ ॥

या स्थानमें यह रहस्य[3] है:--जैसे जेवरीके दो स्वरूप हैं: एक तौ सामान्यरूप है, एक विशेषरूप है; सामान्यरूप 'यह' है. विशेषरूप 'रज्जु' है. 'यह सर्प है' या रीतिसैं

---

१ झूंठा सांप. २ मोटी निगाहसे. ३ कुंजी.

मिथ्यासर्पसैं अभिन्न होयके भ्रांतिकालमैंभी प्रतीत होवै जो "इदंरूप"सो सामान्यरूप है.औ जा स्वरूपकी भ्रांतिकालमैं प्रतीति न होवे, किंतु जाकी प्रतीति हुवेतैं भ्रांति दूर होवै, सो रज्जुका विशेषरूप है. तैसे आत्माकेभी दो स्वरूप हैं. एक सामान्यरूप, दूसरा विशेषरूप. सत्रूप सामान्य है. असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक विशेषरूप हैं. काहेतैं ? " स्थूलसूक्ष्मसंघात हैं, " यामैं स्थूल सूक्ष्मसंघातकी भ्रांति-समयभी मिथ्यासंघातसैं अभिन्न होयके सत्रूप प्रतीति होवै है. यातैं आत्माका सत्स्वरूप सामान्यरूप है. औ स्थूलसू-क्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्त-स्वरूप प्रतीत होवै नहीं, किंतु असंगादिस्वरूप आत्माकी प्रतीति हुवेतैं संघातभ्रांति दूरि होवै हैं; यातैं असंगता, कूटस्थ-ता, नित्यमुक्तता, व्यापकतादिक विशेषरूप हैं. सर्वभ्रांतिमैं सामान्यरूप आधार कहिये है. औ विशेषरूप अधिष्ठान कहिये है. जैसैं सर्पका आश्रय जो जेवरी, ताका सामान्य " इदं " स्वरूप सर्पका आधार है. औ विशेष रज्जुस्वरूप अधिष्ठान है तैसैं मिथ्याप्रपंचका आश्रय जो आत्मा ताका सामान्य सत्रूप प्रपंचका आधार है. औ असंगतादिक विशेषरूप अधिष्ठान है. इस रीतिसैं आधार औ अधिष्ठानका "सर्वज्ञात्म"नाम मुनिने किंचित् भेद प्रतिपादन कियाहै ५२

शिष्य उवाच ।

दोहा ।

भगवन् मिथ्याजगतका, द्रष्टा[1] कहिये कौन ।
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन ॥ ५३ ॥

---

१ देखनेवाला.

टीकाः—अर्थ स्पष्ट है. भाव यह है किः--जगत्का आधार औ अधिष्ठान आत्मा है, यातैं जगत्का द्रष्टा आत्मा भिन्न कह्या चाहिये. जैसे सर्पका आधार औ अधिष्ठान रज्जु तासैं भिन्न पुरुष सर्पका द्रष्टा है ॥ ५३ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

चौपाई--मिथ्यावस्तु जगतमें जे हैं ।
अधिष्ठानमें कल्पित ते हैं ॥
अधिष्ठान सो द्विविध[1] पिछानहु ।
इक चेतन दूजो जड जानहु ॥ ५४ ॥
अधिष्ठान जड वस्तु जहां है ।
द्रष्टा तातें भिन्न तहां है ॥
जहां होय चेतन आधारा ।
तहां न द्रष्टा होवै न्यारा ॥ ५५ ॥

अर्थ स्पष्ट है. भाव यह है किः--जहां जड अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानसैं भिन्न द्रष्टा होवै है. जहां चेतन अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानही द्रष्टा होवै है, भिन्न नहीं।

दोहा ।

चेतन मिथ्यास्वप्नको अधिष्ठान निर्धार ।
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं, तैसे जगत विचार ॥ ५६

टीकाः--जैसैं स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीचेतन है, स्वप्नका द्रष्टा है, तैसैं जगत्का आत्माही अधिष्ठान है, द्रष्टा है. यह शंका औ समाधान स्थूलदृष्टिसैं जे

१ दो प्रकारका.

सर्पका अधिष्ठान मानके कहै हैं, औ सिद्धांतमतमैं तो सर्पका अधिष्ठान साक्षीचेतन है, सोई द्रष्टा है. यातैं सारे कल्पितका अधिष्ठानही द्रष्टा है. शंका समाधान बनै नहीं ॥ ५६ ॥

दोहा ।

इमि मिथ्या संसारदुख, व्है तोमैं भ्रम भान ।
ताकी कहा निवृत्ति तूं, चाहै शिष्य सुजान ॥५७॥

टीकाः—हे शिष्य ! इस रीतिसैं तेरेविषे संसाररूपी दुःख, मिथ्याही भ्रांतिसैं प्रतीत होवै है, ताकी निवृत्ति तू क्यों चाहता है ? क्योंकि मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं. दृष्टांतः—जैसैं बाजीगरने किसी पुरुषकूं मिथ्याशत्रु मंत्रके बलसे दिखाया होवै, ताके मारनेविषे वह पुरुष उद्योग नहीं करता, तैसैं मिथ्यासंसारकी निवृत्ति की चाह बनै नहीं ॥ ५७ ॥

शिष्य उवाच।

चौपाई--जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा ।
तद्यपि मैं चाहूं तिहि छेवा ॥
स्वप्न भयानक जाकूं भासै ।
करि साधन ज़न जिमितिहिं नासै ॥ ५८ ॥
यातैं व्है जातैं जग हाना ।
सो उपाव भाखो भगवाना ॥
तुमसमान सद्गुरु नहिं आना ।
श्रवण फूँक दे वंचक नांना ॥ ५९ ॥

---

१ कान. २ छली. ३ अनेक.

टीका:--हे भगवन्! आपने कह्या जो "जगत् तेरैं मिथ्यारूप करके है; औ सत्यरूप करके नहीं." सो यद्यपि सत्य है, तथापि हे भगवन्! सो मिथ्यारूप करके वा उपाय करके मरणादिक संसार मेरेविषे भान न होवै उपाय आप कहो. और आपने कहा, कि मिथ्याकी निवृत्तिवास्ते साधन चाहिये नहीं. सो वार्ताभी सत्य है. परंतु हे भगवान्! जाकूं मिथ्यपदार्थभी दुःखका हेतु होवै, ताकूं वह मिथ्याभी साधनसैं दूर करना योग्य है. जैसैं किसी पुरुषकूं प्रतिदिन भयानक स्वप्न आवते होवैं, सो मिथ्याभी हैं परंतु तिनकेभी दूर करनेकूं जप औ पादप्रक्षालनादिक नाना साधन अनुष्ठान करै हैं; तैसैं यह संसार मिथ्याभी है परंतु जन्मादिक दुःखका हेतु मेरेकूं प्रतीत होवै है. यातैं संसारकी निवृत्ति चाहूं हूं, आप कृपा करके बतावो ॥ ५८ ॥

श्रीगुरुरुवाच.

सोरठा।

सो मैं कह्यों वखानि, जो साधन तै पूछियों।
निजहिय निश्चय आनि, रहै न रंचक खेद जग॥५९॥

टीका:--हे शिष्य! जो तैंने जगत्रूपी दुःखकी निवृत्तिका साधन पूच्छ्या सो हम तेरेकूं प्रथमही कहदिया, तिस विषे तूं दृढ निश्चय कर; तातें जगत्रूपी खेद रहै नहीं॥५९॥

दोहा।

निजआतम अज्ञानतें, व्है प्रतीत जगखेद ॥
नशै सुताके बोधतें, यह भाषत मुनि वेद ॥ ६०॥
जस मोमैं नहिं "ब्रह्ममें" 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान।
सो तोकूं शिष मैं कह्यों, नहिं उपाय को आन॥६१॥

टीकाः—हे शिष्य! अपने आत्मस्वरूपके अज्ञानतैं जगतरूपी खेद[1] प्रतीत होवै है; सो आत्मज्ञानतैं मिटै है. जो वस्तु जाके अज्ञानतैं प्रतीत होवै सो ताके ज्ञानतैं मिटै है, यह नियम है. जैसैं रज्जुके अज्ञानतैं सर्प प्रतीत होवै है, सो रज्जुके बोधतैं मिटै है, तैसैं आत्मज्ञानतै जगत् मिटै है, सो आत्मज्ञान हमने कहदिया. जगत् तो मेरेविषे तीनकालमैं है नहीं. काहेतैं? मिथ्या है. जो मिथ्यावस्तु होवै है, सो अधिष्ठानकी हानि नहीं करै है. जैसैं मरीचिका[3]का जो जल है, सो पृथ्वीकूं गीली नहीं करै है. तैसैं "जगत्प्रतीतिभी होवै," परंतु मिथ्या है. कछु मेरी हानि करनेविषे समर्थ है नहीं; औ मैं "सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मस्वरूप हूं" ऐसा जो निश्चय, ताका नाम ज्ञान है सोई मोक्षका साधन है, और कोई नहीं. ज्ञानका हमने प्रथम उपदेश करदिया ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

दोहा ।

कर्मउपासनतें नहीं, जगनिदान तम नाश ।
अंधकार जिमि गेहमैं, नशै न विन परकाश ॥ ६३ ॥

टीकाः—हे शिष्य! जगत्का निदान कहिये उपादान कारण तम कहिये अज्ञान है. ता अज्ञानके नाशतैं जगत्का आपही नाश होय जावै है; काहेतैं? उपादानके नाश हुये पीछे कार्य रहै नहीं है. ता अज्ञानका नाश केवल ज्ञानकरके है, कर्म औ उपासना करके नाश होवै नहीं. काहेतैं? अज्ञानका विरोधी ज्ञान है, कर्मउपासना विरोधी नहीं.

---

१ दुःख. २ ज्ञानसे. ३ ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नसमय सूर्यकी किरणको दूरसे जलसा प्रतीत होता है जिसे मृग देखकर जल मान पान करनेके दौड़ता है उसेही 'मरीचिका' या 'मृगतृष्णा' भी कहते हैं.

दृष्टांतः—जैसे गृहके विषे जो अंधकार है, सो काहू क्रिया दूर होवै नहीं, केवल प्रकाशसैं दूर होवै है; तैसैं अज्ञानरूपी जो अंधकार है सो ज्ञानरूपी प्रकाशसैं दूर होवै और काहू साधनसैं नहीं ॥ ६३ ॥

दोहा ॥

भाख्यो शिष उपदेश मैं, जंगभंजक[1] हिय धारि ।
जो यामें संशय रह्यो, सो तूं पूछ विचारि ॥ ६४

शिष्य उवाच ।

चौपाई—भो भगवन् जो कछु तुम भाख्यो ।
सो सव सत्य जानि हिय राख्यो ॥
जगनिदान अज्ञान वखान्यो ।
ताको भंजक ज्ञान पिछान्यो ॥ ६५ ॥
ज्ञानरूप वर्णन पुनि कीह्नो ।
जग मिथ्या सो मैं भल चीह्नो ।
सुखस्वरूप आतम परकास्यो ॥
दया तिहारीसों मुहिं भास्यो ॥ ६६ ॥
पुनि भाख्यो "तू ब्रह्मस्वरूपं"।
यह मैं लख्यो न भेद अनूपं ॥
यामें मुहिं शंका इक आवै ।
जीव ब्रह्मको भेद जनावै ॥ ६७ ॥

टीकाः—हे भगवन्! आपने जो कह्या सो मैं आ वचन सत्य जानूं हूं. आपने कह्या जो जगत्का कारण अ

१ संसारका नाश करनेवाला.

न हता अज्ञानके नाश करके, "जगत्की निवृत्ति ज्ञानकरके होवै है;" सो वार्त्ता मैं जानी. सो ज्ञानका स्वरूप आपने कह्याः—"जगत् मिथ्या है. औ जीव आनंदस्वरूप है. सो ब्रह्मसैं भिन्न नहीं. किंतु ब्रह्मरूप है. ऐसे निश्चयका नाम ज्ञान है. ताके विषे जगत् मिथ्या है. औ जीव आनंदस्वरूप है." यह वार्त्ता मैं जानी, परंतु "जीव ब्रह्म दोनो एक हैं." यह वार्त्ता मैं जानी. काहेतें ? जीवब्रह्मके भेदकूं जनावनेवाली शंका मेरें हृदयमैं फुरै है ॥ ६७ ॥

अथ शंकाकी चौपाई.

पुण्यपापका हुं मैं कर्त्ता ।
जन्म मरण औ सुखदुखभ्रत्ता ॥
और अनेकभांति जग भासै ।
चहूं ज्ञान अज्ञान जु नाशै ॥ ६८ ॥
जो यातें विपरीतस्वरूपा ।
ताकूं ब्रह्म कहत मुनिभूपा ॥
कहों एकता कैसे जानू ।
रूप विरुद्ध हिये पहिंचानू ॥ ६९ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! मैं पुण्यपापका कर्त्ता हूं औ तिनका जो फल जन्ममरण, सुखदुःख, तिनकूं धारण करूं हूं, औ नानाप्रकारका जगत् मेरेविषे प्रतीत होवै है; औ जगत्का कारण जो अज्ञान है ताके दूर करनेकूं मैं ज्ञान चाहूं हूं. औ ब्रह्मविषे न पुण्य है, न पाप है, न जन्म है, न मरण है, न सुख है, न दुःख है और कोई क्लेश ब्रह्मविषे नहीं, औ ज्ञानकी इच्छा नहीं है, यातें ब्रह्मका औ मेरा स्वरूप परस्पर

विरुद्ध है. यातैं दोनोंकी एकता बनै नहीं. यद्यपि मेरे विषे जन्मादिक संसार परमार्थ करके है नहीं, तथापि मिथ्या जन्मादिक है, सो मेरेकूं भ्रांतिसैं प्रतीत होवै है औ ब्रह्म नहीं. यातैं इतना भेद है, एकता बनै नहीं ॥ ६८॥६९॥

अन्यसंशयकी चौपाई.

सुनहु गुरु दूजो पुनि संशै ।
जीवब्रह्म एकत्व प्रनंशै ॥
एक वृक्षमें सम द्वै पच्छी ।
फल भोगै इक दूजो स्वच्छी ॥ ७० ॥
भोगरहित परकास असंगा ।
वेदवचन यह कहत प्रसंगा ॥
कर्मउपासन पुनि बहु भाखै ।
जीव ब्रह्म यातैं द्वय राखै ॥ ७१ ॥

टीकाः–हे गुरो ! मेरे एक और संशय है; सो सुनौ. कैसा वह संशय है:–जासूं जीवब्रह्मकी एकताका निश्चय प्रनंशै कहिये दूरि होय जावै; सो संशय मैं आपकूं कहूं; आप सुनके तिस संशयकूं दूर करौ. वेदविषे मैं देख्या है:–एक बुद्धिरूपी वृक्षमैं दो पक्षी हैं, सो दोनों समान हैं. तिनविषे एक तो कर्मके फलकूं भोगै है. एक स्वच्छ कहिये शुद्ध है, भोगरहित है, असंग है औ ता भोगनेवालेका प्रकाशी है. याके विषे भोगनेवाला जीव प्रतीत होवै है, औ दूसरा परमात्मा प्रतीत होवै है, यातैं उनकी एकता बनै नहीं. औ वेदके विषे कर्म औ उपासना बहुत प्रकारके कहे हैं, सो जीवब्रह्मकी एकताविषे निष्फल होय जावैंगे. काहेतें

आप जीवब्रह्मकी एकता कहो हो; सो ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतर्भाव कहो हो, अथवा जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपकूं अंतर्भाव कहो हो? जो कदाचित् ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतर्भाव कहोगे, तौ जीवकूं ब्रह्मरूप होनेतैं अधिकारीका अभाव होवैगा. यातैं कर्म औ उपासना निष्फल होवैंगे. औ जो जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपका अंतर्भाव कहोगे, तौ ब्रह्मकूं जीवरूप होनेतैं जाकी उपासना कहिये हैं, ता उपास्यका अभाव होवैगा. यातैं उपासना निष्फल होवैगी. औ कर्मका फल देनेवाला जो परमात्मा, ताका अभाव होवैगा. यातैं कर्म निष्फल होवैंगे. औ मीमांसक जो कहै हैं, कर्मही ईश्वर है, तिनसैंही फल होवै है, सो वार्त्ता समीचीन नहीं. काहेतैं? जो कर्म हैं, सो जड हैं; तिनकूं फल देनेका सामर्थ्य बनै नहीं; यातैं कर्मका फल ईश्वरही देवै है. या रीतिसैं परमात्मा औ जीवकी एकता बनै नहीं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

श्रीगुरुरुवाच.

चौपाई—सुनहु शिष्य इक कहूं विचारा ।
व्है जातैं शंका निस्तारा ॥
घटाकाश इक जलआकाशा ॥
मेघाकाश महाआकाशा ॥ ७२ ॥
चारि भेद ये नभके जानहु ।
पुनि चेतनके तथा पिछानहु ॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये ।
ईश ब्रह्म हिय जाने रहिये ॥ ७३ ॥
जब इनको तूं रूप पिछानै ।
निज शंका तबहीं सब भानै ॥

यातैं सुन इनको अब भेदा ।
नशै सुनत जन्मादिक खेदा ॥ ७४ ॥

टीकाः—जो तेरेकूं शंका हुई है, तिसका निस्तार कौ निराकरण जातैं होवै, सो विचार मैं कहूं हूं; तूं सुन. एक आकाशमें चार भेद हैं:—एक घटाकाश है, औ जलाकाश है, औ मेघाकाश है, औ महाकाश है, तैसे चेनतके चार भेद हैं; एक कूटस्थ है, औ जीव है, औ ईश है, औ ब्रह्म है; ये चार भेद आकाशकी नाईं चेतनविषै हे शिष्य ! जब इनके स्वरूपकूं तूं भली प्रकारसैं पिछानै गा, तब अपनी शंकाका तूं आपही समाधान जान लेवैगा यातैं मैं इनका स्वरूप वर्णन करूं हूं, तूं सुन. जाकूं सुनके संशयरहित ज्ञान होइके जन्मादिक दुःखका नाश होवैगा. ॥ ७२-७४ ॥

अथ घटाकाशवर्णन.

दोहा ।

जलपूरित घटकूं जुदे, जितनो नभ अवकाश ॥
युक्तिनिपुण पंडित कहैं, ताकूं घटआकाश ॥ ७५ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जलसैं भरे घटकूं जितनो आकाश अवकाश देवै है, तितने आकाशकूं पंडितजन घटाकाश कहे हैं ॥ ७५ ॥

अथ जलाकाशवर्णन.

दोहा ।

जलपूरित घटमैं जु पुनि, है नभको आभास ॥
घटाकाशयुतविज्ञजन, भाषत जलआकाश ॥ ७६ ॥

टीकाः—हे शिष्य! जलसें भर्‍या जो घट है, ताके विषे नक्षत्रादिसहित आकाशका प्रतिबिंब होवै है; सो आकाशका प्रतिबिंब, औ घटाकाश, दोनो मिले हुये जलाकाश कहिये हैं ॥ ७६ ॥

याके विषे कोई शंका करै हैः—

कि आकाशका प्रतिबिंब[1] नहीं होवै है, किंतु केवल नक्षत्रादिकनकाही प्रतिबिंब होवै है. काहेतें? आकाश स्वरूपकरके रहित है. औ रूपवाले पदार्थका प्रतिबिंब होवै है यातें आकाशका प्रतिबिंब बनै नहीं ऐसी शंका करै है.

ताके समाधानका

दोहा ।

जो जलमें आकाशको, नहिं प्रतिबिंब लखाई ॥
थोरेमें गंभीरता, व्है प्रतीत किहि भाइ ॥ ७७ ॥
यातें जलमें व्योमको, लखि आभास सुजान ॥
रूपरहित जिमि शब्दतें, व्है प्रतिध्वनिको भान॥७८॥

टीकाः—जो जलके विषे आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवै तौ गोडेपरिमाण जलविषे मनुष्यपरिमान गंभीरताकी जो प्रतीति होवै है, सो नहीं हुई चाहिये. यातें आकाशका प्रतिबिंब अंगीकार करना योग्य है, औ जो कहे है "रूपरहित पदार्थका प्रतिबिंब नहीं होवै है" सोभी नियम नहीं है. काहेतें? रूपरहित जौ शब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवै है, सो शब्दका प्रतिबिंब है. यातें रूपरहित जो आकाश है ताकाभी प्रतिबिंब बनै है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

---

1 परछाहीं.

अथ मेघाकाशवर्णन

दोहा ।

जो मेघहि अवकाश दे, पुनि तामैं आभास ॥
तिन दोनोंकूं कहत हैं, बुधजन मेघाकाश ॥७९॥

टीकाः—मेघ जो बादल, तिनकूं जो आकाश अवकाश देवै है, औ मेघके जलमैं जो आकाशका प्रतिबिंब है, तिन दोनोंकूं मेघाकाश कहै हैं ॥ ७९ ॥

याके विषे कोई शंका करै हैः–

कि मेघ तो आकाशविषे हैं, तिनमें जल औ आकाशका प्रतिबिंब दीखे बिना कैसे जाने जावै हैं ?

ताके समाधानका

दोहा ।

वर्षत मेघ अनंत जल, उदकसहित इहि हेत ॥
दक नहिंनभआभास विन, इमि प्रतिबिंबसमेत ॥८०॥

टीकाः—यद्यपि मेघविषे जल औ आकाशका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमानकरके जाना जावै है. मेघ जलकी वृष्टि करै है, यातैं ऐसा अनुमान होवै है; कि मेघविषे जल है. क्यों कि जो मेघोंविषे जल न होवै, तौ जलकी वृष्टि मेघोंसे नहीं होवै. औ मेघविषे जल है, सो आकाशके प्रतिबिंबसहित है. काहेतें ? जो जल होवै है, सो आकाशके प्रतिबिंबविना नहीं होवै है. यातैं मेघोंविषे जो जल है सोभी आकाशके प्रतिबिंबवाला है. इस रीतिसैं मेघविषे जल औ आकाशके प्रतिबिंबका अनुमान होवै है. उदक औ दक ये दोनो जलके नाम हैं ॥ ८० ॥

अथ महाकाशवर्णन.

दोहा ।

बाहिर भीतर एक रस, व्यापक जो नभरूप ॥
महाकाश ताकूं कहैं, कोविद बुद्धिअनूप ॥ ८१ ॥

टीकाः—बाहिर और भीतर सर्वत्र एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकाशका स्वरूप है, ताकूं अनूप कहिये अद्भुत बुद्धिवाले पंडित, महाकाश कहै हैं ॥ ८१ ॥

दोहा ।

चतुर्भांति नभके कहे, लक्षण श्रुतिअनुसार ॥
अब चेतनके शिष्य सुन, जासूं लहै विचार ॥ ८२ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! चार प्रकारके आकाशके लक्षण कहे, अब चार भांतिके चेतनके लक्षण सुन; जाके सुननेतैं विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवै ॥ ८२ ॥

अथ कूटस्थवर्णन.

दोहा ।

मति वा व्यष्टिअज्ञानको अधिष्ठानचैतन्य ॥
घटाकाशसम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य ॥ ८३ ॥

टीकाः-बुद्धि अथवा व्यष्टिअज्ञानका जो अधिष्ठानचेतन है सो कूटस्थ कहिये है. जा पक्षमैं बुद्धिसहित चेतन जीव है ता पक्षमैं बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ कहिये है. और जा पक्षमैं व्यष्टिअज्ञानसहित चेतन जीव कहिये है, ता पक्षमैं व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान है, सो कूटस्थ कहिये है. या स्थानविषे यह सिद्धांत है कि:—जीवपनेका जो विशेषण है, ताके

अधिष्ठानका नाम कूटस्थ कहिये है. सो कूटस्थ अज उत्पत्तिसें रहित है याका अभिप्राय यह है किः—ब्रह्मसें जैसें चिदाभास उत्पन्न होवै है, तैसें यह उत्पन्न नहीं किंतु ब्रह्मरूपी है. जैसें घटाकाश महाकाशसैं न्यारा नहीं गया किंतु महाकाशरूप है. यह जो कूटस्थ है सोई आ दका लक्ष्य अर्थ है. और याहींकूं प्रत्यक् कहै हैं औ या निजरूप कहै हैं. और यही जीवसाक्षी है ॥ ८२ ॥

अथ जीववर्णन.

दोहा ।

काम कर्मयुत बुद्धिमें, जो चेतनप्रतिबिंब ॥
जीव कहै विद्वान तिहिं, जलनभतुल्यसबिंब ॥८

टीकाः—नाना काम और कर्मसहित जो बुद्धि है, जो चेतनका प्रतिबिंब है, ताकूं विद्वान् कहिये ज्ञानी कहै हैं. सो केवल प्रतिबिंबमात्रकूं नहीं जीव कहै हैं; जैसें घटाकाशसहित आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश हैं, तैसें सबिंब कहिये बिंब जो कूटस्थ, तासहित चिदा सकूं जीव कहै है. यातैं यह सिद्धांत हुवाः-बुद्धिमैं जो चि भास औ बुद्धिका अधिष्ठानचेतन, दोनोंका नाम जीव है

दोहा ।

अधिष्ठान कूटस्थसें, व्है अभास बहाल ॥
रक्तपुष्पऊपर धऱ्यो, स्फटिक होइ जिमि लाल॥८

टीकाः—पूर्व दोहेविषे बिंब जो कूटस्थ तासहित आ स जीव कह्या. यातैं यह प्रतीति होवै हैः-जो बुद्धिमैं प्र

बिंब है सो कूटस्थका है; औ बाहिरके ब्रह्मचेतनका नहीं. काहेतैं? जाका प्रतिबिंब होवै, सो बिंब कहिये है. सो कूटस्थकूं बिंब कह्या. यातैं ताका प्रतिबिंब है, यह प्रतीत होवै है. सो या दोहेसैं प्रतिपादन करै है:—जैसें बड़े लाल पुष्पके ऊपर धऱ्या जो सुफेद स्फटिक है, ताके विषे फूलकी लालीकी दमक होवै है, सो लाल फूलका प्रतिबिंब है; तैसैं कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि, ताके विषे कूटस्थके प्रकाशकी दमक होवै है. जैसें स्फटिक अत्यंत उज्ज्वल है, तैसें बुद्धि भी अत्यंत शुद्ध है. काहेतैं? बुद्धि सत्वगुणका कार्य है; यातैं कूटस्थकी दमकका नाम प्रतिबिंब है.

अथवा ब्रह्मचेतनका प्रतिबिंब है. जैसैं महाकाशका घटके जलमैं प्रतिबिंब होवै है, और भीतरके आकाशका नहीं. काहेतैं? जितनी गंभीरता जलविषे प्रतीत होवै है, उतनी गंभीरता भीतरके आकाशमैं है नहीं, सो गंभीरता आकाशका प्रतिबिंब है, यातैं बाहिरके आकाशका प्रतिबिंब है. यह जो कहै हैं, "व्यापक चेतनका प्रतिबिंब बनै नहीं," सो आकाशके दृष्टांतसैं शंका दूर होवै है. काहेतैं? जो आकाशभी व्यापक है, औ ताका प्रतिबिंब होवै है, तैसें व्यापकचेतनकाभी प्रतिबिंब बनै है.

और जो कहै हैं, "रूपवाले पदार्थका रूपवाले पदार्थमें प्रतिबिंब होवै है;" सोभी नियम नहीं है. काहेतैं? रूपरहित शब्दका रूपरहित आकाशमैं प्रतिबिंब होवै है. यह पूर्व कह आए यातें चेतनका प्रतिबिंब बनै है.

इस रीतिसैं बुद्धिमैं आभास औ बुद्धिका अधिष्ठान चेतन, दोनोंका नाम जीव है, यह कह्या सो जीव त्वंपदका

वाच्य कहिये है. औ ताके विषै चिदाभासका त्याग करि केवल जो कूटस्थ है, सो त्वंपदका लक्ष्य कहिये है. औ अहंशब्दका वाच्यभी जीव है. केवल कूटस्थ लक्ष्य है॥८५॥

दोहा ।

बुद्धिमाहिं आभास जो, पुण्यपाप फलभोग ॥
गमन आगमन सो करै, नहिं चेतनमें योग ॥ ८६ ॥
मिथ्या नभ घटसंग ज्यों, लहै क्रिया बहुभांति ॥
घटाकाश अक्रिय सदा, रहै एकरस शांति ॥ ८७ ॥

टीकाः—यद्यपि जीव नाम चिदाभास और कूटस्थ दोनोंका हैं, तथापि जीवपनेके जो धर्म हैं सो सारे आभासविषे हैं. पुण्य औ पाप औ पुण्यपापके फल सुखदुःख औ लौकांतरविषे गमन, औ या लोकविषे आगमन, इसतैं आदि लेके सारे आभाससहित बुद्धि करै है. औ कूटस्थ नहीं करै है. कूटस्थविषे केवल भ्रांतिसें प्रतीत होवै है. सो भ्रांतिसैं प्रतीतिभी बुद्धिसहित आभासकूं होवै है; कूटस्थकूं नहीं. काहेतें ? कूट जो लुहारका अहरन, ताकी नाईं निर्विकाररूपसैं स्थित होवै, सौ कूटस्थ कहिये है, अथवा कूट कहिये मिथ्या जो बुद्धि औ चिदाभास, ताके विषे असंगरूपसैं स्थित होवै, सो कूटस्थ कहिये है. यातैं कूटस्थविषे भ्रांति आदिक बनै नहीं, किंतु चिदाभासमैं बनै है.

औ अत्यंत विचारसैं देखिये सो पुण्य पाप, सुख दुःख, लोकांतरमैं गमन और आगमन केवल बुद्धिमैं है, आभासमैं भी नहीं. बुद्धिके संयोगमैं आभासमैं है. जैसें जलसहित जो घट है, सो टेढ़ा होवै है, और सीधा होवै है, औ जावै आवै

है; औ ताके संबंधसैं व्योमका आभास संपूर्ण किया करै हैं. औ स्वतंत्र कछु भी नहीं करै है. तैसैं कामकर्मरूपी जलसैं भऱ्या जो बुद्धिरूपी घट है सो पुण्यसैं आदि लेके संपूर्ण विकार धारै है, औ ताके संबंधसैं चिदाभास धारै है. औ कूटस्थ सर्व विकारसैं रहित है. जैसै जलपूरित घटके विकारसैं रहित घटाकाश है, ताकी नाईं कूटस्थकूं जान यातैं जीवपनेके धर्म चिदाभासमैं है; तथापि कूटस्थमैं अज्ञानसैं प्रतीत होवै हैं यातैं बुद्धिके विषे कूटस्थसहित जो चिदाभास सो जीव कहिये है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

यह जो जीवका स्वरूप वर्णन किया, याके विषे प्राज्ञकी हानि होवै है. काहेतैं? सुषुप्तिविषे अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ है. ता सुषुप्तिविषे बुद्धिका अभाव होवै है. यातैं बुद्धिमैं आभासभी बनै नहीं. यातैं प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है, ताका विरोध होवैगा इस कारणतैं जीवका स्वरूप और प्रतिपादन करैः--

दोहा।

अथवा व्यष्टिअज्ञानमैं, जो चेतन आभास ॥
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहैं जीवपद तास ॥ ८८ ॥

टीकाः--अज्ञानके अंशका नाम व्यष्टिअज्ञान कहिये है, औ संपूर्ण अज्ञानका नाम समष्टिअज्ञान है. ता अज्ञानके अंशविषे जो चेतनका आभास, औ अज्ञानके अंशका अधिष्ठान जो कूटस्थ है, तिन दोनोंकूं जीवपद कहै हैं. यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं होवै है. काहेतैं? सुषुप्तिविषे अज्ञान रहै है. जो सुषुप्तिविषे चेतनके प्रतिबिंबसहित अज्ञानका अंश है, सोई बुद्धिरूपकूं प्राप्त होवै है. औ चेतनका प्रतिबिंब सा-

थही होवै है. ता चिदाभाससहित बुद्धिमैं पुण्यादिक सं
प्रतीत होवै है. इस अभिप्रायसैं बुद्धिही कहूं शास्त्रनमें
जीवपनेकी उपाधि वर्णन करी है. औ विचारदृष्टिसैं जीव
नेकी उपाधि अज्ञान है ॥ ८८ ॥

अथ ईशवर्णन.

दोहा ।

चित्छाया मायाविषे, अधिष्ठानसंयुक्त ॥
मेघ व्योमसम ईश सो, अंतरयामी मुक्त ॥ ८९ ॥

टीकाः--मायाके विषे जो चेतनकी छाया कहिये आ
भास औ मायाका अधिष्ठान चेतन, दोनोंकूं ईश्वर कहै
सो ईश्वर मेघाकाशके सम है, सो ईश्वर अंतर्यामी है. का
तैं ? सर्वके अंतर प्रेरणा करै है, यातैं अंतर्यामी है औ
सदामुक्त है. काहेतैं ? वाकूं अपने स्वरूपमैं आवरण न
यातैं जन्ममरणादिक बंधकी प्रतीति नहीं. इस हेतुतैं ई
नित्यमुक्त है, औ सर्वज्ञ है, सर्व पदार्थनके जाननेवाला
याके विषे यह हेतु हैः-मायाविषे शुद्ध सत्त्वगुण है. तमो
औ रजोगुणसे दब्या हुआ सत्त्वगुण नहीं होवै, किंतु र
गुण औ तमोगुणकूं आप दबावनेवाला होवै, सो शुद्ध
त्त्वगुण कहिये है. सत्त्वगुणसें ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है. य
प्रकाशस्वभाववाला सत्त्वगुण है. ऐसी सत्त्वगुणवाली मा
के विषे जो चेतनका आभास, ताकूं स्वरूपविषे अथवा
परमार्थविषे आवरण संभवै नहीं याते मुक्त है औ सर्वज्ञ
अधिष्ठान जो चेतन है, सो तौ जीव और ईश्वर दो
विषै बंधमोक्षभेदसे रहित है; आकाशकी ज्यूनाईं ए
एक है पर.. आभास .. विषे बंध मोक्ष है ...

ता अहंशब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तौ ब्रह्मके साथ सदा अभेद है. जैसे घटाकाशका और महाकाशका सदा अभेद है; इसी कारणतैं कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुख्यसमानाधिकरण वेदांतशास्त्रमें कह्या है. जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदा अभेद होवै, ता वस्तुका ताके संग मुख्यसमानाधिकरण कहिये है. जैसे घटाकाशका महाकाशके संग सदा अभेद है, यातें घटाकाश महाकाश है. इस रीतिसे घटाकाशका महाकाशके साथ मुख्यसमानाधिकरण है. इस रीतिसे कूटस्थका ब्रह्मके संग मुख्य समानाधिकरण है. काहेतैं ? कूटस्थका ब्रह्मते सदा अभेद है; यातें 'मैं' शब्दमें भान जो होवैं है कूटस्थ, ताका तो ब्रह्मके संग सदा अभेद है.

और 'मैं' शब्दमें भान जो होवै है आभास, ताका ब्रह्मसे अपने स्वरूपकूं बाधके अभेद होवै है. जैसे मुखका जो प्रतिबिंब, ताका बिंबस्वरूप मुखके संग प्रतिबिंब स्वरूपकूं बाधके अभेद होवै है. इसी कारणतैं वेदांतशास्त्रविषे आभासका ब्रह्मके संग बाधसमानाधिकरण कह्या है. जा वस्तुका बाध होइके जाके संग अभेद होई, ता वस्तुका ताके संग बाधसमानाधिकरण कहिये है. जैसे मुखके प्रतिबिंबका बाध होयके मुखके साथै अभेद होवै है. यातैं प्रतिबिंब मुख है; न्यारा नहीं, ऐसा प्रतिबिंबका मुखके साथ बाधसमानाधिकरण है.

किंवा, जैसे स्थाणुमें[1] पुरुषभ्रम होयके स्थाणुज्ञानसें अनंतर, "पुरुष स्थाणु है" इस रीतिसैं पुरुषका स्थाणुसें

१ शाखारहित सूखा वृक्ष, जिसे (ठूंठ) कहते हैं.

बाधसमानाधिकरण होवै है, तैसे आभासका बाध होइके ब्रह्मके साथ अभेद होवै है. यातैं मैंशब्दविषे भान जो होवै आभास, सो ब्रह्म है; न्यारा नहीं. ऐसा बाधसमानाधिकरण आभासका ब्रह्मके साथ होवै है. इस रीतिसे हे शिष्य अहंशब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ ताका तौ मुख्य अभेद है, और आभासका बाधकरके अभेद है ॥ ११३ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच ।

दोहा ।

अहंवृत्तिमें भान व्है, साक्षी अरु आभास ॥
सो क्रमतें वा क्रमविना, याको करहु प्रकाश ॥ ११४ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपने कह्या कि " अहंवृत्तिमें साक्षी अरु आभास दोनोंका भान होवै है " याके विषे एक वार्ता नहीं जानूं हूं सो कूटस्थ और आभासको भान अहंवृत्तिविषे क्रमसे होवै है, अथवा क्रमसे विना होवै है ? याका अर्थ यह हैः—क्रमसे कहिये भिन्न भिन्न कालमें होवै है, अथवा दोनोंका एकही कालमें भान होवै है ? याका अर्थ मेरेकूं प्रकाश कहिये बोध करो ॥ ११४ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा ।

सावधान व्है शिष्य सुन, भाषूं उत्तर सार ॥
सुनत नशै अज्ञानतम, बोधभानुउजियार ॥ ११५ ॥

टीकाः--हे शिष्य ! जो तैंने प्रश्न किया, मैं ताका सद्भूत उत्तर कहूं हूं. तूं सावधान होइके सुन. कैसा उत्तर है

जाके सुनतेही बोधरूपी सूर्यका प्रकाश होयके अज्ञानरूपी तमकूं नाशै है ॥ ११५ ॥

दोहा ।

एकसमयही भान व्है, साक्षी अरु आभास ॥
दूजो चेतनको विषय, साक्षी स्वयंप्रकास ॥ ११६ ॥

टीकाः—हे शिष्य! एकही समय साक्षीका और आभासका अहंवृत्तिविषे भान होवै है. सारे प्रकरणविषे आभासशब्दसे अंतःकरणसहित आभासका ग्रहण करना. यातैं दूजो कहिये अंतःकरणसहित जो आभास है, सो तौ चेतन जो साक्षी, ताका विषय होइके भान होवै है. और साक्षी स्वयंप्रकाशरूप करके भान होवै है और अंतःकरणकी जो आभाससहित वृत्ति, ताका विषय साक्षी नहीं. और घटादिक बाहिरके पदार्थनविषे तो ऐसी रीति है:--जब इंद्रियका और घटका संयोग होवै, तब इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति निकसके घटके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. जैसे मूषामें गेऱ्या जो ताम्र, ताका मूषाके आकारके समान आकार होवै है. तैसे, अंतःकरणकी वृत्तिकाभी घटके आकारके समान आकार होवै है. काहेतें? वृत्ति अंतःकरणका परिणाम है; अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहे हैं. जैसे अंतःकरणका सत्त्वगुणका कार्य होनेतें स्वच्छ है, यातैं अंतःकरणविषे चेतनका आभास होवै है; तैसे वृत्तिभी स्वच्छ अंतःकरणका कार्य है, यातैं वृत्तिविषे चेतनका आभास होवै है. और वृत्ति जो उत्पन्न

---

१ ज्ञानरूप. २ अन्धकारको.

होवै है, सो आभाससहित अंतःकरणसे उत्पन्न होवै है;
इस कारणतैंभी वृत्ति आभासहितही होवै है.

और विषय जो घट है, सो तमोगुणका कार्य है; या
स्वरूपसे जड है,और ताके विषे अज्ञान और ताका आवरण॥
यामैं यह शंका होवै है:—अज्ञान और ताका आवरण वि
रद्दष्टिसैं चेतनविषे है, घटविषे नहीं. काहेतैं ? अज्ञान चेतन
आश्रित है, औ चेतनहीकूं विषय करै है, यह वेदांत
सिद्धांत है; औ सात अवस्थाओंके प्रसंगमें जो अज्ञान
आश्रय अंतःकरणसहित अभास कह्या, सो अज्ञानका अ
मानी है, "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अभिमान अंतःकरण
हित आभासकूं होवै है. इस कारणतैं अज्ञानका आश्रय
हिये है.और मुख्य आश्रय चेतन है;आभाससहित अंतःक
नहीं.काहेतैं?आभाससहित अंतःकरण अज्ञानका कार्य है;
जाका कार्य होवै है, सो ताका आश्रय बनै नहीं; यातैं चे
नही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है.औ चेतनहीकूं अ
न विषय करै है.स्वरूपका जो आवरण करना सोई अज्ञान
विषय करना है. सो अज्ञानकृत आवरण जडवस्तुविषे
नहीं. काहेतैं ? जडवस्तु स्वरूपसेही आवृत है. वाके
अज्ञानकृत आवरणका कछु उपयोग नहीं. इस रीति
अज्ञानका आश्रय औ विषय चैतन्य है. जैसे गृहके मध्य
अंधकार है, सो गृहके मध्यकूं आवरण करै है. यातैं घ
विषे अज्ञान और ताका आवरण बनै नहीं ॥ ११६ ॥

ताका यह समाधान है-

जैसे चेतनके स्वरूपसैं भिन्न सत्असत्सैं विलक्षण अ
चेतनके आश्रित है, ता अज्ञानसैं चेतन आवृत होवै है;

घटके स्वरूपसे भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है, तथापि अज्ञानतैं घटादिक, स्वरूपसैं प्रकाशरहित जडस्वरूप रचे है. यातैं सदाही अंधके समान आवृत है. सो आवृतस्वभाव घटादिकनका अज्ञानने किया है. काहेतैं ? तमोगुणप्रधान अज्ञानसे भूतकी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजै हैं, सो तमोगुण आवरणस्वभाववाला है. यातैं घटादिक प्रकाशरहित अंधही होवे हैं. इस रीतिसे अंधतारूप आवरण घटादिकनमें अज्ञानकृत स्वभावसिद्ध है. औ घटादिकनके अधिष्ठान चेतन-आश्रित अज्ञान, चेतनकूं आच्छादित करके स्वभावसें आवृत घटादिकनकूंभी आवृत करै है. यद्यपि स्वभावसे आवृत पदार्थके आवरणमें प्रयोजन नहीं है, तथापि आवरणकर्त्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षासे बिनाही निरावरणकी नाई आवरणसहितमेंभी आवरण करै है; यह लोकमें प्रसिद्ध है. ता अज्ञानसैं आवृत घटकूं व्याप्त जो होवै है, अंतःकरणकी आभाससहित घटाकारवृत्ति, तामें वृत्तिभाग तौ घटके आवरणकूं दूर करे है. औ वृत्तिमें जो आभासभाग है, सो घटका प्रकाश करै है. इस रीतिसे बाहिरके पदार्थविषे वृत्ति और आभास दोनोंका उपयोग है.

दृष्टांत--

जैसे अंधकारमें कूंडेसे मृत्तिका अथवा लोहका पात्र ढक्या धर्या होवै, तहां दंडसे कूंडेकूं फोडे विगेरे पीछे दीपकविना उस निरावरणपात्रकाभी प्रकाश होवै नहीं; किंतु दीपकसे प्रकाश होवै है, तैसे अज्ञानसैं आवृत जो घट ताके आवरणकूं वृत्ति भंगभी करै है, तथापि घटका प्रकाश होवै नहीं. काहेतैं ? घट तो स्वरूपसे जड है, और वृत्तिभी जड है; ताका

आवरणभंगमात्र प्रयोजन है. तासैं प्रकाश होवै नहीं. घटका प्रकाशक आभास है. नेत्रका विषय जो वस्तु ताके प्रत्यक्षज्ञानकी यह रीति कही. और श्रवणादिक जो विषय है, ताके प्रत्यक्षकीभी रीति ऐसेही जानि ले

वृत्ति और घट दोनों एकदेशमें स्थित होनेतैं घट ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. औ अंतःकरणकी वृत्ति तौ घ कार होवै, और घटके संग वृत्तिका संबंध न होवै, अंतरही वृत्ति होवै, सो घटका परोक्षज्ञान कहिये "यह घट है" ऐसा अपरोक्षज्ञानका आकार है. "घट है" अथवा "सो घट है" ऐसा परोक्षज्ञान आकार है. यद्यपि स्मृतिज्ञानभी परोक्षज्ञानही है, तथ स्मृतिज्ञान तो संस्कारजन्य है, और अनुमितिआदिक क्षज्ञान प्रमाणजन्य हैं; इतना भेद है प्रमाणके प्रसंग

हम प्रमाण निरूपण करै हैं.

चार्वाक जो हैं, सो एक प्रत्यक्षप्रमाण अंगीकार हैं, और कणाद औ सुगतमतके जो अनुसारी हैं दूसरा अनुमानप्रमाणभी अंगीकार करै हैं. काहेतैं प्रत्यक्षही प्रमाण अंगीकार करैं तो तृप्तिके अर्थीकी भो नविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी. काहेतैं? अभुक्तभोजन तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्षप्रमाणजन्य प्रत्यक्षज्ञान है यातैं भुक्तभोजनमें अनुभव जो करी है तृप्तिकी हेतु सो अभुक्तभोजनमेंभी अनुमानसैं जानके तृप्तिके अर्थ भोजनमें प्रवृत्ति होनेतैं अनुमानप्रमाणभी अंगीकार क चाहिये. इस रीतिसैं कणाद और सुगतमतके अनुस प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण अंगीकार करै हैं. औ

सांख्यशास्त्रका कर्त्ता जो कपिल है, ताके मतके अनुसारी तीसरा शब्दप्रमाणभी अंगीकार करै हैं. काहेतैं ? जो प्रत्यक्ष औ अनुमान दोही प्रमाण अंगीकार करैं तौ देशांतरविषे जाका पिता मर गया होवे, ताकूं कोई यथार्थवक्ता आयके कहै, "तेरा पिता मर गया है." तब श्रोताकूं पिताके मरनेका निश्चय नहीं होना चाहिये. काहेतैं ? देशांतरविषे स्थित पिताके मरणका ज्ञान प्रत्यक्ष औ अनुमानकरके बनै नहीं. इस रीतिसे कपिलमतके अनुसारी प्रत्यक्ष और अनुमान और शब्द तीन प्रमाण अंगीकार करै हैं. और—

न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है, ताके मतके अनुसारी उपमानभी चतुर्थप्रमाण अंगीकार करै हैं. काहेतैं ? प्रत्यक्ष-आदिक तीनही प्रमाण अंगीकार करैं, तौ जा पुरुषने गवय नहीं देख्या है, औ वनवासी पुरुषसैं ऐसा श्रवण किया है:— "गौके सदृश गवय होवै है." सो पुरुष जो वनमें चल्या जावै औ गवयकूं देख लेवै; तब वाकूं वनवासी पुरुषने कह्या कि "गौके सादृश्य गवय होवै है," यह वाक्य ताके अर्थका स्मरण होवै है. ता स्मृतिसे अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवै है:—"यह पशु गवय है" ऐसा ज्ञान नहीं होना चाहिये. यातैं ऐसे विलक्षणज्ञानका हेतु उपमानप्रमाणभी अंगीकार करै हैं. और—

पूर्वमीमांसाका एकदेशी जो भटका शिष्य प्रभाकर है, सो पंचम अर्थापत्तिप्रमाणभी अंगीकार करै है. दिनमें भोजन-त्यागी पुरुषकूं स्थूल देखके ऐसा ज्ञान होवै है:—"यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करै है" तहां रात्रिभोजनविना दिनमें भोजन-त्यागीके विषे स्थूलता बनै नहीं. यातैं रात्रिभोजन स्थूलताका

संपादक है. रात्रिभोजन संपाद्य है. संपाद्य जो रात्रिभोजन
ताके ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा
कहिये है. औरः–

पूर्वमीमांसक जो भट है, सो षष्ठ अनुपलब्धिप्रमाण
अंगीकार करै है. और वेदांतशास्त्रविषेभी षट्प्रमाण अंगीकार
किये. हैं अनुपलब्धिप्रमाणका प्रयोजन यह है कि–गृहादि
कनमें घटादिकनके अभावका ज्ञान होवै है. तहां जा पदा
र्थकी प्रतीति नहीं होवै है, ताके अभावका ज्ञान होवै है
अप्रतीतिकूं अनुपलब्धि कहै हैं. घटकी जो अनुपल
कहिये अप्रतीति, तातैं घटका अभाव निश्चय होवै है.
पदार्थनके अभावनिश्चयका हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति
ताकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहै हैं.

प्रमाज्ञानका जो करण है, सो प्रमाण कहिये है. स्मृति
भिन्न जो अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला ज्ञान है,
प्रमा कहिये है. स्मृतिज्ञान जो है, सो प्रमा नहीं है. काहेतैं
जो प्रमाज्ञान है सो प्रमाताके आश्रित होवै है. और स्मृ
प्रमा ताके आश्रित नहीं; किंतु साक्षीके आश्रित अंगी
करी है. औ भ्रांतिज्ञान संशयभी साक्षीके आश्रि
अंगीकार किये हैं. इसी कारणतैं स्मृति औ भ्रांति औ सं
यज्ञान, ये तीनों आभाससहित अविद्याकी वृत्तिरूप
अंतःकरणकी वृत्तिरूप नहीं. यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं
किन्तु साक्षीके आश्रित हैं. जो अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञा
होवै, सो प्रमाताके आश्रित होवैं है. सोई प्रमा कहिये जावै
स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति नहीं; यातैं प्रमाताके आश्रि
नहीं; और प्रमाभी नहीं, यातैं प्रमाके लक्षणविषे स्मृतिसैं भि

कह्या चाहिये. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला ज्ञान तौ स्मृतिज्ञानभी है, परंतु स्मृतिज्ञान स्मृतिसे भिन्न नहीं है. यातैं अबाधितअर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसे भिन्न ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है; या लक्षणविषे कोई दोष नहीं.

और कोई स्मृतिज्ञानकूंभी प्रमारूप मानै हैं. तिनके मतमें प्रमाके लक्षणविषे स्मृतिसे भिन्न ऐसा नहीं कहना. किंतु अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है. भ्रांतिज्ञान जो है, सो अबाधित अर्थकूं विषय नहीं करे है, किंतु बाधित अर्थकूं विषय करै है, यातैं प्रमाका लक्षण भ्रांतिज्ञानमें जावै नहीं है. जिन्होंके मतमें स्मृतिज्ञान विषेभी प्रमाव्यवहार है, तिनके मतमें स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति है, अविद्याकी वृत्ति नहीं; औ साक्षीके आश्रितभी नहीं. किंतु प्रमाताके आश्रित है. काहेतैं ? अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय प्रमाताही बनै है, साक्षी बनै नहीं. इस रीतिसैं स्मृतिज्ञान किसीके मतमें तौ अंतःकरणकी वृत्ति है, यातैं प्रमारूप है औ किसीके मतमें तौ अविद्याकी वृत्ति है यातैं प्रमारूप नहीं है और भ्रांतिज्ञान औ संशयज्ञान, ये दोनों सर्वके मतमें अविद्याकी वृत्ति हैं औ साक्षीके आश्रित हैं यामैं कोई विवाद नहीं. औ विचार करके देखिये तौ स्मृतिज्ञानभी अविद्याकी वृत्ति है; औ साक्षीके आश्रित है; प्रमारूप नहीं. काहेतैं ? जो वेदांतसंप्रदायके वेत्ता हैं, तिन्होंने प्रमाज्ञान षट्प्रकारका कह्या है. ता षट्प्रकारमें स्मृतिज्ञान है नहीं, यातैं प्रमा नहीं.

औ मधुसूदनस्वामीने स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रितही कह्या है. एक तो प्रत्यक्षप्रमा है, औ दूसरी, अनुमितिप्रमा है, औ एक तीसरी उपमितिप्रमा है, और चतुर्थी शाब्दी प्रमा है,

और पंचमी अर्थापत्तिप्रमा है, औ षष्ठी अभावप्रमा है; ये प्रमा हैं. और पूर्व कहे जो प्रत्यक्षआदिक षट् प्रमाण हैं इनके क्रमतैं करण हैं. प्रत्यक्षप्रमाका जो करण होवे, सो प्रत् प्रमाण कहिये है. असाधारणकारण जो होवै, सो क कहिये है. जो सर्वकार्यका कारण होवै, सो साधारणका कहिये है. जैसे धर्म अधर्मादिक सर्वकार्यके कारण हैं साधारणकारण हैं. सर्वकार्यका कारण न होवै, किंतु कि कार्यका कारण होवै सो असाधारणकारण कहिये है. दंड जो है सो सर्वकार्यका कारण नहीं; किंतु घटआ जो कार्यविशेष हैं, तिनका कारण है. यातैं दंड असाध कारण कहिये है, और घटका कारणभी कहिये है. प्रत्यक्षप्रमाके ईश्वर औ ताकी इच्छासे आदि लेके तौ सा रणकारण हैं. काहेतैं ? ईश्वरसे आदि लेके सर्वकार्यके का हैं. तिनविना कोई होवै नहीं, यातैं ईश्वरादिक साध णकारण हैं. औ नेत्रसे आदि लेके जो इंद्रियें हैं सो प्र प्रमाके असाधारणकारण हैं. यातैं नेत्र आदिक जो इं हैं, सो प्रत्यक्षप्रमाके कारण हैं. इस रीतिसे नेत्र आदिक इंद्रिय हैं, सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये हैं.

यद्यपि इंद्रियकूं वेदांतसिद्धांतविषे प्रमाज्ञानकी कार कहना बनै नहीं. काहेतैं? चेतनके चार भेद हैं:—एक तो माताचेतन है, और दूसरा प्रमाणचेतन है, और तीसरा प्र तिचेतन है, ताहीकूं प्रमाचेतनभी कहै हैं. औ चौथा प्र चेतन है, ताहीकूं विषयचेतनभी कहै हैं. इस रीतिसे नाम चेतनका है; सो नित्य है; इंद्रियजन्य नहीं; यातैं इं ताका कारण नहीं. तथापि चेतनमें प्रमाव्यवहारका संपा वृत्तिभी प्रमा कहिये है. ताके इंद्रिय कारण हैं.

देहके मध्य अंतःकरण, ताकरके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाता कहिये है, सोई अंतःकरण नेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसके जितने दूर घटादिक विषय स्थित होवैं, उतना लंबा परिणाम अंतःकरणका होवै है. औ आगे विषय जो घटादिक हैं, तिनसे मिलके जैसा घटादिकका आकार होवै, तैसाही अंतःकरणका आकार होवै है. जैसे कोठेमें भऱ्या जो जल, सो छिद्रद्वारा निकसके लंबे नालेका आकार होयके बगीचेके केदारमें[1] जावै है और केदारमें जाईके जैसा केदारका आकार होवै तिस आकारकूं जल प्राप्त होवै है; तैसे अंतःकरणकी इंद्रियरूपी छिद्रद्वारा निकसके विषयरूपी केदारकूं जावै है. तहां शरीरसे लेके घटादिक विषयपर्यंत जो अंतःकरणका नालेके समान परिणाम, ताकूं वृत्तिज्ञान कहै हैं. ताकरके अवच्छिन्न जो चेतन, ताकूं प्रमाणचेतन कहै हैं और वृत्तिज्ञानरूप जो अंतःकरणका परिणाम, ताकूं प्रमाण कहै हैं. जैसे केदारविषे जल जाईके केदारके समान आकार होवै है; तैसे घटादिक जो विषय हैं, तिनमें वृत्ति जाईके घटादिकके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. ताकरके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाचेतन कहिये हैं. ज्ञानके विषय जो घटादिक, तिनकरके अवच्छिन्न जो चेतन, सो विषयचेतन कहिये है. और प्रमेयचेतन भी है. यह वेद अर्थके जाननेवाले जो आचार्य हैं, तिनकी परिभाषा है.

यामें इतना भेद है. जो अवच्छेदवाद अंगीकार करै हैं, तिनके मतमें तो अंतःकरणविशिष्ट जो चेतन है, सो प्रमाता

---

[1] क्यारीमें.

है. औ सोई कर्ता भोक्ता है और अंतःकरण उपहित साक्षी
एकही अंतःकरण प्रमाताका तौ विशेषण है; और साक्षी
उपाधि है. स्वरूपविषे जाका प्रवेश होवै, ऐसी जो व्या
वस्तु है, सो विशेषण कहिये है और पदार्थसे भिन्नता
वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावै, सो व्यावर्त्तक कहिये है.
भिन्नता करके जनावै, सो व्यावर्त्य कहिये है. जैसे "
घट है" या स्थानमें घटका नीलता विशेषण है. काहे
नीलघटके विषे नहीं. औ बाहिरके आकाशतैं भिन्नता
श्रोत्रकूं जनावै है यातैं व्यावर्त्तक है और घटाकाश
सो मनपरिमाण अन्नकूं अवकाश देवै है. या स्थानमेंभी
काशकी घट उपाधि है. काहेतैं ? मन अन्नकूं अवकाश
वाला जो आकाश है, ताके स्वरूपविषे तौ घटका प्रवे
नहीं. घट पार्थिव है; ताके विषे अवकाश देना बनै
यातैं घटका स्वरूपमें प्रवेश बनै नहीं और व्यापकआ
भिन्नताकरके जनावै है. यातैं मन अन्नकूं अवकाश देने
जो आकाश ताकी घट उपाधि है. तैसे अंतःकरण
हित जो चेतन है, सो साक्षी है. या स्थानमें अंतः
साक्षीकी उपाधि है. काहेतैं ?

साक्षीके स्वरूपविषे तौ अंतःकरणका प्रवेश है नहीं
प्रमेयचेतनसे साक्षीकूं भिन्नता करके जनावै है. यातैं
अंतःकरण साक्षीकी तौ उपाधि है, औ प्रमाताका वि
है. इस रीतिसे अंतःकरणरहित जो चेतन है सो तौ
है और अंतःकरणविशिष्टचेतन प्रमाता है. जो उपाधि
होवै, सो उपहित कहिये है, और विशेषणवाला होवै
विशिष्ट कहिये है. जो अंतःकरणविशिष्ट प्रमाता है,

कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखी संसारी जीव है, यह अवच्छेदवादकी रीति है. और आभासवादमें आभाससहित अंतःकरण जीवका विशेषण है. और आभाससहित अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है. यातैं साभास अंतःकरणविशिष्टचेतन जीव है. और साभास अंतःकरणउपहितचेतन साक्षी है. यद्यपि दोनों पक्षमें विशेषणसहित चेतन जीव है, सोई संसारी है, तथापि विशेष्य-भाग जो चेतन है, ताके विषे तौ जन्ममरणसें आदि लेके संसारका संभव है नहीं. यातैं विशेषणमात्रमें संसार है. सोई विशिष्टचेतनमें प्रतीत होवै है. और कहूं तो विशेषणके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है, औ कहूं विशेष्यके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है; औ कहूं विशेषण विशेष्य दोनोंके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है. जैसे दंडकरके घटाकाशका नाश होवै है, या स्थानमें विशेषण जो घट है, ताका दंड-करके नाश होवै है, और विशेष्य जो आकाश है, ताका नाश बनै नहीं. तोभी विशिष्ट जो घटाकाश है, ताका नाश प्रतीत होवै है. और " कुंडली पुरुष सोवै है. " या स्थानमें कुंडल विशेषण है; और पुरुष विशेष्य है. विशेषण जो कुंडल है, ताके विषे सोवना बनै नहीं, किंतु विशेष्य जो पुरुष है, ताके विषे सोवना है और "कुंडलविशिष्ट विप्र सोवै है" ऐसा विशिष्टमें व्यवहार होवै है. और " शस्त्री पुरुष युद्धमें गया है." या स्थानमें विशेषण जो शस्त्र और विशेष्यपुरुष, दोनों युद्धमें गये हैं; यातैं दोनोंके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है. या स्थानमें अवच्छेदवादमें तौ अंतःकरण विशेष्यन है, और आभासवादमें साभास अंतःकरण विशेषण है; और दोनों पक्षमें चेतन विशेष्य है. ताके विषे तो जन्मादि संसार

बनै नहीं. किंतु विशेषण अंतःकरण अथवा साभास अं
करण ताका धर्म जो जन्मादिक संसार, ताका विशिष्टे
नमें व्यवहार करिये है. व्यवहार नाम प्रतीति और कह
है. इस रीतिसे आभासवाद और अवच्छेदवादका भेद

आभासवादमें तौ अंतःकरण आभाससहित है और अ
च्छेदवादमें अंतःकरण आभासरहित है. दोनों पक्षनमें आ
सवाद श्रेष्ठ है. काहेतैं ? भाष्यकारने आभासवाद अंगी
किया है. और अवच्छेदवादमें विद्यारण्यस्वामीने दो
कहा है:—जो आभासरहित अंतःकरण अविच्छिन्नचेत
प्रमाता मानै, तो घटअवच्छिन्न चेतनभी प्रमाता होना
हिये. काहेतैं ? जैसे अंतःकरण भूतनका कार्य है, तैसे घ
भूतनका कार्य है, और जैसे अंतःकरण चेतनका अवच्छे
कहिये व्यावर्त्तक है, तैसे घटभी चेतनका अवच्छेदक
यातैं अंतःकरणविशिष्टकी नाईं घटविशिष्टभी प्रमाता है
चाहिये. और अंतःकरणमें आभास अंगीकार कियेतैं यह
नहीं. काहेतैं ? अंतःकरण तौ भूतनके सत्वगुणका कार्य
यातैं स्वच्छ है. और घटादिक भूतनके तमोगुणके कार्य
यातैं स्वच्छ नहीं. जो स्वच्छ पदार्थ होवै, सोई आभा
योग्य होवै है. मलिन पदार्थ आभासके योग्य नहीं.
काच और ताका ढकना दोनों पृथिवीके कार्य हैं,
काच तो स्वच्छ है, तामें मुखका आभास होवै है; ढ
स्वच्छ नहीं, यातैं तामें आभास होवै नहीं. तैसे सत्वगु
कार्य होनेतैं अंतःकरण स्वच्छ है, ताहीमें चेतनका आ
होवै है. शरीरादिक और घटादिक तमोगुणके कार्य हों
स्वच्छ नहीं; तिनमें चेतनका आभास होवै नहीं.

इस रीतिसैं अंतःकरणमें द्विविध प्रकाश है. एक तौ व्यापकचेतनका प्रकाश, और दूसरा आभासका प्रकाश है. शरीरादिक और घटादिकनमें एक व्यापकचेतनका प्रकाश तौ है, दूसरा आभासका प्रकाश नहीं. यातैं द्विविध प्रकाशसहित अंतःकरणविशिष्टही चेतन प्रमाता कहिये है. एक प्रकाशसहित जो घटादिक तिनकरके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं. जिनके मतमें अंतःकरणमें आभास नहीं, तिनके मतमें घटादिकनकी नाईं अंतःकरणमेंभी आभासका दूसरा प्रकाश तौ है नहीं. व्यापकचेतनका जो एक प्रकाश अंतःकरणमें है, सोई व्यापकचेतनका प्रकाश घटादिकनमें हैं. अंतःकरणविशिष्टकी नाईं घटविशिष्ट वा शरीरविशिष्ट वा भीतविशिष्टचेतनभी प्रमाता होना चाहिये. इस रीतिसैं घट शरीरादिकनतैं अंतःकरणमें यही विलक्षणता है. अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य है; यातैं स्वच्छ होनेतैं चेतनका आभास ग्रहण करनेके योग्य है और पदार्थ स्वच्छ नहीं; यातैं आभास ग्रहण करनेके योग्य नहीं. आभासग्रहणके योग्य जो अंतःकरण, ता करके संयुक्तही चेतन प्रमाता कहिये है. घटादिक और शरीरादिक आभासग्रहणके योग्य नहीं, यातैं तिनकरके विशिष्टचेतन प्रमाता नहीं. इस रीतिसैं आभासवादही उत्तम है; अवच्छेदवाद नहीं.

जैसे अंतःकरण आभाससहित है, तैसे अंतःकरणकी वृत्तिभी आभाससहितही होवै है, साभासवृत्तिविशिष्ट चेतन प्रमाणचेतन कहिये है. अंतःकरणकी घटादि विषयाकार जो वृत्ति, तामें आरूढचेतनकूं प्रमा और यथार्थज्ञान कहे हैं. ताका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये हैं. काहेतैं ? विषयाकार-

वृत्तिमें आरूढचेतनकूं प्रमा कहै हैं. तहां चेतन यद्यपि स्व
परकरके नित्य है, यातैं इंद्रियजन्य ताके अभावते प्रमा
नका साधन इंद्रिय नहीं; तथापि निरुपाधिकचेतनमें तौ प्र
व्यवहार है नहीं, किंतु विषयाकारवृत्तिउपहित चेतनमें प्र
व्यवहार होवै है. यातैं चेतनविषे प्रमाशब्दकी प्रवृत्तिमें वि
याकार वृत्ति उपाधि है. सो विषयाकारवृत्ति इंद्रियजन्य
इंदिय ताका साधन है. प्रमापनेका उपाधि जो वृत्ति, ता
इंद्रियजन्य होनेतैं उपहित जो प्रमा, सोभी इंद्रियजन्य
हिये है. यातैं इंद्रिय प्रमाका साधन कहिये है; परंतु अं
करणका परिणाम सारा प्रमा नहीं कहिये है; किंतु शरी
भीतर जो अंतःकरण ताका विषय घटादिकन तोडी परिण
ताकूं प्रमाण कहै हैं. विषयतैं मिलके विषयके समान
अंतःकरणका परिणाम, उतनेकूं प्रमा कहै है. शरीरके भी
जो अंतःकरण तासैं लेके घटादिक विषयतोडी पहुंचा
अंतःकरणका परिणाम सोई प्रमारूपकूं धारै है. यातैं प्रमा
प्रमाणरूप अंतःकरणकी वृत्तिसैं अत्यंतभेद नहीं. इस री
बाहिरके पदार्थका प्रत्यक्षज्ञान जहां होवै तहां अंतःकर
वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक, तिनके समान आ
ररूपकूं धारै है. और शरीरके अंतर जो आत्मा, ताका प्र
होवै, तब अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जावै नहीं. कि
शरीरके भीतरही वृत्ति आत्माकार होवै है, ता वृत्तिसें
त्माके आश्रित आवरण दूर होवै हैं. और आत्मा अपने
काशतैं ता वृत्तिमें प्रकाशै है. इसी कारणतैं वृत्तिका वि
आत्मा कह्या है. और चिदाभासरूप जो वृत्तिमैं फल, ता
विषय आत्मा नहीं, या प्रकारतैं साक्षी आत्मा स्वयंप्र
शरूप भान होवै है; यह सिद्ध हुआ.

तत्त्वदृष्टिरुवाच ।

दोहा ।

इंद्रियके संबंधबिन "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
कैसे व्है प्रत्यक्ष प्रभु, मोकूं कहौ बखान ॥ ११७ ॥

टीकाः—"ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानतैं सकल अविद्याजालका नाश होवै है, परोक्षज्ञानतैं नहीं," यह पूर्व कह्या. ताके विषे शंका करै हैः—ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष बनै नहीं. काहेतैं ? इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है; ब्रह्मका ज्ञान इंद्रियजन्य बनै नहीं. काहेतैं ?

नेत्रइंद्रियतैं रूपवान्का अथवा नीलादिकरूपका ज्ञान होवै है, ऐसा ब्रह्म नहीं. यातैं नेत्रइंद्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नहीं. रामकृष्णादिकनकी जो मनुष्याकार मूर्ति है सो यद्यपि रूपवाली है, तथापि सो मूर्ति मायारचित है, मिथ्या है, सो मूर्ति ब्रह्म नहीं. और पुराणमें रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही है सो तिनकी शरीररूप मूर्ति ब्रह्मरूप है, इस अभिप्रायतैं नहीं कही, किंतु तिनके शरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है इस अभिप्रायतैं कही है. याके विषे ऐसी शंका होवै है किः--सर्व शरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है, यातैं अधिष्ठानचेतन अभिप्रायतैं रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही होवै तौ सर्वशरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होनेतैं मनुष्य पशुपक्षीआदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं. तिनके समानही रामकृष्णादिक होवैंगे. यातैं रामकृष्णादिकनकूं अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायतैं ब्रह्मरूपता नहीं

---

१ प्रत्यक्षज्ञानसें.

कही, किंतु तिनकूं और जीवनतैं विशेषरूपताकी सिद्धि वास्ते तिनका शरीरही ब्रह्म है ऐसा मानना योग्य है.

सो बनै नहीं. काहेतैं? शरीरका बाध करके तिनके शरीरनकूं ब्रह्मरूपता मानैं तौ सर्वशरीरनका बाध करके सारे शरीर ब्रह्मरूप हैं. और बाध कियेबिना तौ अन्य शरीरनकी नाई हस्तपादादिक अवयवसहित रूपवान् क्रियावान् शरीरका निरवयव निरूप अक्रिय ब्रह्मतैं अभेद बनै नहीं, यातैं रामकृष्णादिकनका शरीर ब्रह्म नहीं; परंतु इतना भेद है: जीवनके शरीर पुण्यपापके आधीन हैं. भूतनके कार्य हैं. जीवनकूं देहादिक अनात्मपदार्थनविषे अविद्याबलतैं अहंमअध्यास है; आचार्यके उपदेशतैं ता अध्यासकी निवृत्ति होवै है. और रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्यपापरचित नहीं, और भूतनकेभी कार्य नहीं.

किंतु जैसे सृष्टिके आदिमें प्राणियोंके कर्म भोग देनेकूं सन्मुख होवैं तब आप्तकाम ईश्वरमेंभी प्राणियोंके कर्मके अनुसार "मैं जगत्की उत्पत्ति करूं" ऐसा संकल्प होवै है ता संकल्पतैं जगत्की उत्पत्तिरूप सृष्टि होवै है तैसे सृष्टि अनंतरभी "मैं जगत्का पालन करूं" ऐसा ईश्वरका संकल्प होवै है, ता संकल्पतैं जगत्का पालन होवै है. कर्मनके अनुसार सुखदुःखका संबंध पालन कहिये है. ता पालनसंकल्पमध्य उपासकपुरुषनकी उपासनाके बलतैं ईश्वरकूं ऐसा संकल्प होवै है.--"रामकृष्णादिक नामसहित मूर्ति सर्वकूं प्रतीत होवै." ता ईश्वरसंकल्पतैं विशेषनामरूपरहित ईश्वरमें रामकृष्णादिकनाम, पीतांबरधरादि श्यामसुंदरविग्रहरूपकी उत्पत्ति होवै है; सो विग्रह कर्मके आधीन नहीं. यद्यपि रामकृष्ण-

दिक विग्रहतैं साधु और दुष्टनकूं क्रमतैं सुखदुःख होवै है. जो जाके सुखदुःखका हेतु होवै है, सो ताके पुण्यपापतैं रचित होवै है. यातैं पुण्यपाप आधीन कहिये है. इस रीतिसे अवतारनके शरीर साधुपुरुषनकूं सुखके हेतु होनेतैं साधुपुरुषनके पुण्यसमुदायतैं रचित हैं. तैसे असुरादिक असाधुपुरुषनकूं दुःखके हेतु होनेतैं तिनके पापतैं रचित हैं. यातैं "अवतारनके शरीर पुण्यपापके आधीन नहीं," यह कहना नहीं संभवै; तथापि जैसे जीवन पूर्वशरीरमें पुण्यपाप कर्म किये हैं, तिनका फल उत्तरशरीरमें ता जीवकूं सुखदुःख होवै है. तहां शरीरअभिमानी जीवके पूर्वशरीरके आपने पुण्यपापके आधीन उत्तरशरीर कहिये है. तैसे रामकृष्णादिकनके शरीर यद्यपि साधु-असाधु-पुरुषनके पुण्यपापके आधीन हैं और तिनकूं सुखदुःखके हेतु हैं, परंतु रामकृष्णादिकनके पुण्यपापतैं रचित अवतारशरीर नहीं. और तिनकूं अपने शरीरतैं सुखका तथा दुःखका भोग होवै नहीं. यातैं रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्यपापके आधीन नहीं. यह संभवे है.

तैसे भूतनके परिणामभी रामकृष्णादिक शरीर नहीं, किंतु चेतनआश्रित मायाका परिणाम है. जो पंचीकृत भूतनके परिणाम होवै तो कृष्णशरीरविषे रज्जुकृत बंधनादिकनका अभाव शास्त्रमें कह्या है, सो असंगत होवैगा. यद्यपि पंचभूतरचित सिद्धयोगीशरीरमेंभी बंधनादिक होवैं नहीं, तथापि योगीशरीरमें प्रथम बंधनादिकनका संभव होवै है. फेर योगाभ्यासरूप पुरुषार्थतैं बंधनदाहादिकनकी योग्यता नाश होवै है. कृष्णादिकनके शरीरमें योगीकी नाईं कछु पुरुषार्थसैं बंधनादिकनका अभाव नहीं, किंतु तिनके

शरीर सहजही बंधनादियोग्य नहीं, यातैं भूतनके परि
नहीं. और मांडूक्यभाष्यकी टीकामें आनंदगिरिमें रामा
शरीर भूतनके परिणाम कहे हैं; सो स्थूलदृष्टिसे और अन्
रीरनके समान वे शरीर प्रतीत होवै हैं; इस अभिप्रायतैं क
काहेतैं ? भाष्यकारने गीताभाष्यमें यह कह्या है:-"जीव
ऊपर अनुग्रह करके शरीरधारीकी नाई मायाके बलतैं
मात्मा कृष्णरूप प्रतीत होवै है, सो जन्मादिकरहित
ताका वसुदेवद्वारा देवकीतैं जन्मभी मायातैं प्रतीत
है," इस रीतिसे भाष्यकारने कृष्णशरीर मायाका
कह्या है, यातैं भूतनतैं अवतारशरीरनकी उत्पत्ति
किंतु तिनके शरीरनका उपदानकारण साक्षात् माया

और जीवनकूं देहादिकनमें आत्मभ्रांति है; रामकृ
दिकनकूं नहीं. काहेतैं ? जीवकी उपाधि अविद्या मलिनस
गुणवाली है, रामकृष्णादिकनकी उपाधि माया शुद्धसत्त्व
णवाली है; यातैं जीवनकूं अविद्याकृतभ्रांति और रामकृ
दिकनकूं मायाकृत सर्वज्ञता होवै; जीवनकूं अज्ञानकृत
रण है, यातैं भ्रांतिके नाशनिमित्त आचार्यद्वारा महावा
उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा है. तैसे रामकृष्णादिकनकूं
रण और भ्रांति नहीं यातैं उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा
किंतु जीवकूं अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञानकी नाई, ई
मायाकी वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान तौ उपदेशादिक वि
होवै है, परंतु ता ज्ञानतैं कछु प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवै
काहेतैं ? जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानतैं आवरणभंग, और
जो घटादिक तिनका प्रकाश होवै है. और ब्रह्मरूपतैं आ
का ज्ञान जो जीवकूं होवै है, ता ज्ञानका विषय जो आ

ताका आवरणभंग तौ ज्ञानतैं होवै है, और आत्माविषय स्वयंप्रकाश है; यातैं आत्मज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै नहीं. तैसे ईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप जो "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान, ताका विषय ईश्वरका आत्मा, सो आवरणरहित स्वयंप्रकाश है, यातैं आवरणभंग वा विषयका प्रकाश ईश्वरके ज्ञानका प्रयोजन नहीं. जैसे जीवन्मुक्त विद्वान्कूं निरावरण आत्माकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति आवरणभंगादिक प्रयोजनरहित होवै है; तैसे ईश्वरकूंभी आवरणभंगादिक प्रयोजनविना मायाकी वृत्तिरूप "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान उपदेशादिकनतैं बिना होवै है.

इस रीतिसे रामकृष्णादिकनकूं जीवनतैं विलक्षणता ईश्वरता है, तौभी तिनका शरीर मायारचित है, यातैं ब्रह्म नहीं; किंतु मिथ्या है. मायाने उत्पन्न किया जो अवतारनका शरीर, सो हस्तपादादिक अवयवसहित, और रूपसहित किया है; यातैं नेत्रइंद्रियका विषय तिनका शरीर होवै है. ब्रह्मकूं नेत्रइंद्रिय विषय करै नहीं.

तैसे त्वचाइंद्रियभी स्पर्शकूं, और स्पर्शके आश्रयकूं विषय करै है. ब्रह्म स्पर्शका आश्रय नहीं, और स्पर्श नहीं. यातैं त्वचा इंद्रियका विषय नहीं.

रसनाइंद्रियतैं रसका ज्ञान, घ्राणतैं गंधका ज्ञान, और श्रोत्रतैं शब्दका ज्ञान होवै है. रस गंध शब्दतैं ब्रह्म विलक्षण है; यातैं रसना घ्राण और श्रोत्रतैं ब्रह्मका ज्ञान होवै नहीं.

और कर्मइंद्रिय ज्ञानके साधन नहीं, किंतु वचनादिक क्रियाके साधन हैं; यातैं तिनतैं तौ किसीका ज्ञान होवै नहीं.

इस रीतिसे किसी इंद्रियतैं ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं, और इंद्रियतैं जो ज्ञान होवै, सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है; प्रत्यक्षकूं अपरोक्ष कहे हैं. यातैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान बनै नहीं; किंतु शब्दसे ब्रह्मका ज्ञान होवै है. जो शब्दसे ज्ञान होवै सो परोक्ष होवै है; यातैं ब्रह्मका ज्ञानभी परोक्षही होवै है।

श्रीगुरुरुवाच।

दोहा।

इंद्रियविन प्रत्यक्ष नहिं, शिष यह नियम न जान।
विनइंद्रिय प्रत्यक्ष है, जैसे सुख दुख ज्ञान ॥ १९ ॥

टीकाः—इंद्रियसंबंधबिना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं, यह नियम नहीं.काहेतैं? जैसे सुखका और दुःखका ज्ञान है, सो किसी इंद्रियतैं होवै नहीं. सो सुखदुःखका ज्ञानभी प्रत्यक्ष होवै है, यातैं इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै, सोई प्रत्यक्ष होवै, यह नियम नहीं. किंतु विषयतैं वृत्तिका संबंध होयके विषयाकारवृत्ति जहां होवै, तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है। विषयतैं वृत्तिका संबंध कहूं इंद्रियद्वारा होवै है; और कहूं शब्दसैं होवै है. जैसे "दशम तूं है" इस शब्दतैं, दशम आप, तातैं अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध होयके दशमाकार वृत्ति होवै है, यातैं शब्दजन्यभी दशमका ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है।

तैसें प्रमाताविषे दुखदुःख होवै, तब सुखाकार और दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै; ता वृत्तिसे सुखदुःखका संबंध होवै है, यातैं सुखदुःखका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. पूर्वउत्पन्न सुख दुःख नष्ट हुये पीछे जहां पुनः याद आवै, तहां सुखाकार और दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति तो होवै है परंतु वृत्तिके नष्ट हुये सुखदुःखतैं

नहीं, यातैं सो ज्ञान स्मृतिरूप है, प्रत्यक्षरूप नहीं. यद्यपि अंतःकरणके धर्म सुखदुःख साक्षीभास्य हैं, तथापि सुखाकार और दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा साक्षी सुखदुःखका प्रकाश करै है. जो साक्षीभास्य पदार्थ हैं, तिनकूंभी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षताही प्रकाशै है, जैसे शुक्तिरजत साक्षीभास्य हैं, तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेक्षाकरके साक्षी-रजतकूं प्रकाशै है; परंतु सुखदुःखके प्रकाशमैं अंतःकरणकी वृत्ति साक्षीकी सहायक है. और मिथ्यारजतादिकनके प्रकाशमैं अविद्याकी वृत्ति सहायक है.

इस रीतिसे साक्षीभास्य पदार्थके ज्ञानमेंभी वृत्तिकी अपेक्षा है. सो वृत्ति जहां इंद्रियादिक बाह्यसाधनतैं होवै, ताका विषय साक्षीभास्य नहीं कहिये है. सुखदुःखको विषय करनेवाली वृत्तिमें बाह्यइंद्रियादिक हेतु नहीं किंतु जब सुखादिक उत्पन्न होवैं, तिसीकालमें अन्यसाधनकी अपेक्षाविना सुखाकार और दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै है. ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशै है. यातैं सुखदुःख साक्षीभास्य कहिये हैं.

और बाह्य जो घटादिक हैं, तिनसे अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रियद्वारा होवै है; यातैं घटादिक साक्षीभास्य नहीं. तैसे ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै है सो अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर नहीं जावै है, किंतु शरीरके अंतरही होवै है. ता वृत्तिसे ब्रह्मका संबंध है, यातैं ब्रह्मका ज्ञानभी सुखदुःखके ज्ञानकी नाईं प्रत्यक्षरूप है; परंतु सुखाकारदुःखाकारवृत्तिमें बाह्यसाधनकी अपेक्षा नहीं. यातैं सुखदुःख साक्षीभास्य हैं और ब्रह्माकार जो अंतःकरणकी वृत्ति, तामैं तौ गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसे

संबंधबाह्यसाधन चाहिये है; यातैं ब्रह्म साक्षीभास्य न
इस रीतिसैं जहां विषयतैं वृत्तिका संबंध होवै, तहां प्र
ज्ञान कहिये है. "अहं ब्रह्मास्मि" या वृत्तिका विषय
ब्रह्म, तासैं संबंध है. यातैं ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभ

और जहां धूमकूं देखके अग्निका ज्ञान होवै है,
धूमका ज्ञान तौ प्रत्यक्ष है और अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष न
काहेतैं ? नेत्रद्वारा अंतःकरणकी वृत्तिका धूमतैं संबं
यातैं धूमका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. और अनुमानतैं अं
करणकी वृत्ति शरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहण
नेवाली तौ हुई, परंतु अग्निसे वृत्तिका संबंध नहीं,
अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं. इस रीतिसे जहां वृत्तिसे
यका संबंध होवै तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. जहां वृ
विषयका संबंध नहीं होवै, विषय बाहिर दूर होवै, अ
भूत वा भविष्यत् होवै और अनुमानतैं अथवा शब्दतैं
याकारवृत्ति अंतर होवै, सो ज्ञान परोक्ष कहिये है. इंद्रि
न्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवै है; यह नियम नहीं. जैसे सुखा
का ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं, किंतु प्रत्यक्ष है, तैसे दशम
का ज्ञान शब्दजन्य है तौभी प्रत्यक्ष होवै है. इस री
गुरुद्वारा श्रवण किया जो "महावाक्यरूप वेदशब्द"
उत्पन्न हुवा ब्रह्मज्ञानभी प्रत्यक्षही संभवै है ॥ ११८

दोहा ।

गुरुको अस उपदेश सुनि, तत्त्वदृष्टि बुधिमंत ॥
ब्रह्मरूप लखि आतमा, कियो भेदभ्रम अंत ॥ ११
"अहं ब्रह्म" या वृत्तिमें, निरावरण व्है भान
दादू आदूरूप सो, यूं मैं लियो पिछान ॥ १२०

इति श्रीउत्तमाधिकारी उपदेशनाम चतुर्थस्तरंगः समाप्तः ॥ ४ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीविचारसागरे

पंचमस्तरंगः ५ ।

अथ श्रीगुरुवदादि व्यावहारिकप्रतिपादन मध्यमाधिकारिसाधननिरूपणम् ।

पूर्वतरंगमें यह कह्या:—“ गुरुमुखद्वारा श्रवण किये वेद-वाक्यतैं अद्वैतब्रह्मका साक्षात्कार होवै है. ” ताकूं सुनके अदृष्ट नामा द्वितीय शिष्य, यह शंका करै है--वेद गुरु सत्य होवैं तौ अद्वैतकी हानि; असत्य होवैं तौ तिनतैं पुरुषार्थकी प्राप्ति बनै नहीं, दोनों रीतिसैं वेद गुरुतैं अद्वैत ज्ञान बनै नहीं.

वेदऽरु गुरु जो मिथ्या कहिये ।
तिनते भवदुख नश्यो न चहिये ॥
जैसे मिथ्या मरुथलको जल ।
प्यासनाशको नहिं तामें बल ॥ १ ॥

सत्य वेदगुरु कहें तु द्वैत ।
* भयो गयो सिद्धांत अद्वैत ॥
यूं शंकरमत पेखि अशुद्धा ।
तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा ॥ २ ॥

---

* “ भयो ” पदका प्रथमपादसैं अन्वय है.

१ विवेकी.

यह शंका भगवन् मुहिं उपजै ।
उत्तर देहु दयालु न कुपिजै ॥
गुरु बोले शिषकी सुनि बानी ।
शंकरको मत परम प्रमानी ॥ ३ ॥

चारियार मध्वादिक जे हैं ।
वेदविरुद्ध कहत सब ते हैं ॥
यामें व्यासवचन सुनि लीजे ।
शंकरमतहिं प्रमाण करीजे ॥ ४ ॥

कलिमें वेद अर्थ बहु करि हैं ।
श्रीशंकरशिव तब अवतरि हैं ॥
जैनबुद्धमतमूल उखारैं ।
गंगातें प्रभुमूर्ति निकारैं । ५ ॥

जैसे भानुउदय उजियारो ।
दूरि करैं जगमें अँधियारो ॥
सब वस्तुहि ज्यूंको त्यूं भासै ।
संशय और विपर्यय नासै ॥ ६ ॥

देवअर्थमें त्यूं अज्ञाना ।
नशि है श्रीशंकरव्याख्याना ॥
करि हैं ते उपदेश यथारथ ।
नाशहिं संशय अरु अयथारथ ॥ ७ ॥
और जु वेदअर्थकूं करि हैं ।
ते शठ वृथा परिश्रम धरि हैं ॥

❀ अयथार्थ कहिये भ्रांति.

यूं पुराणमें व्यास कही है ।
शंकरमतमें मान यही है ॥ ८ ॥
मध्वादिकको मत न प्रमानी ॥
यह हम व्यासवचनतें जानी ॥
और प्रमाण कहूं सो सुनिये ।
वाल्मीकिऋषि मुख्य जु गिनिये ॥ ९ ॥
तिन मुनि कियो ग्रंथ वासिष्ठा ।
तामें मत अद्वैत स्पष्टा ।
श्रीशंकर अद्वैतहि गान्यो ।
तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो ॥ १० ॥
वाल्मीकिऋषि वचनविरुद्धं ॥
भेदवाद लखि सकल अशुद्धं ॥ ११ ॥

टीकाः--सर्वप्रकरणका भाव यह है किः-व्यास भगवान्ने पुराणमें यह कहा हैः--"जब कलिमें वेदके अर्थकूं नाना भांति करैंगे, तब कृपालु शिव, श्रीशंकर नाम धारके अवतार लेके बद्रीनाथकी मूर्तिका देवनदीमध्यतैं उद्धार, स्वस्थानमें स्थापन, जैनबुद्धमतखंडन, और वेदका यथार्थ व्याख्यान करैंगे," या व्यासवचनतैं श्रीशंकरमत प्रमाण है, और मध्वादिकनका भेदमत अप्रमाण है. और उपनिषद्, गीता, सूत्र, ये तीन जो वेदांतके प्रस्थान हैं, तिनके यद्यपि मध्वादिकनने किसीतरह खींचके स्वस्वमतके अनुसार व्याख्यान किये हैं, तथापि व्यासवचनतैं श्रीशंकरकृत व्याख्यानही यथार्थ है. और आदिकवि सर्वज्ञ वाल्मीकिऋषिने उत्तररामायण वासिष्ठ[1]

[1] जिसे योगवासिष्ठ कहते हैं।

नाम ग्रंथ किया है, तहां अद्वैतमतमें प्रधान जो दृष्टि
वाद है, सो अनेक इतिहासनसे प्रतिपादन किया है.
वाल्मीकिवचनके अनुसार अद्वैतमत प्रमाण है,
वाल्मीकिवचनाविरुद्ध भेदमत अप्रमाण है, इस रीतिसैं
ऋषिमुनिवचनविरोधतैं भेदमत अप्रमाण कह्या॥
॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

और युक्तिसेभी भेदवाद विरुद्ध है; यह खंडनआ
ग्रंथनमें श्रीहर्षादिकनने प्रतिपादन किया है. युक्ति क
है यातैं भेदमतखंडनकी युक्ति नहीं लेखी. और-

ऋषिमुनिवचनतैं विरुद्ध भेदमतमें जैनमतकी
अप्रमाणता निश्चित हुयेतैं युक्तिसे खंडनकी आ
अधिकारीकूं अपेक्षाभी नहीं. यह तीन चौपाईसौं कहै

चौपाई-कियो ग्रंथ श्रीहर्ष जु खंडन ।
खंडनभेद एकतामंडन ॥
लिख्यो तहां यह बहु विस्तारा ।
भेदभाव नहिं युक्ति सहारा ॥ १२ ॥
और भेदधिक्कार जु ग्रंथा ।
तहां भेदखंडनको पंथा ॥
कठिन दुरूह तर्क हैं ते अति
नहिं पैठिहि शिष्य तिनमैं ते मति ॥ १३ ॥
यातैं कही न ते तुहिं उक्ती ।
करें जु भेदहि खंडन युक्ती ॥
अप्रमाण मत भेद लख्यो जव ।
खंडनमें युक्ति न चहियत तव ॥ १४ ॥

वेदवचनसेभी भेदमत विरुद्ध है; यह कहै हैं—

भेदप्रतीति महादुखदाता ।
यम कठमें यह टेरत ताता ॥
यातें भेदवाद चित त्यागहु ।
इक अद्वैतवाद अनुरागहु ॥ १५ ॥

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यती" ति श्रुतेः "द्वितीयाद्वै भयं भवति" "अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानां" इति द्वे श्रुती ।

अर्थः---जो द्वितीयकूं मतिमें धारै ।
भय ताकूं यह वेद पुकारै ॥
ज्ञेय ध्येय मोते कछु औरा ।
लखै सु पशु यह वेद ढँढोरा ॥ १६ ॥

शिष्य यातें मध्वादिकवानी ।
सुनी सु विचरह अतिदुखदानी ॥
द्वैतवचन तव हियमें जोलों ।
व्है साक्षात अद्वैत न तोलौं ॥ १७ ॥

द्वैतवचनको स्मरण जु होवै ॥
व्है साक्षात तु ताहि विगोवै ॥
पूर्वस्मृति साक्षात विनाशत ।
सुन इक अस तुहिं कथा प्रकाशत ॥ १८ ॥

---

१ अर्थ—"जो पुरुष इस परमात्माविषे नानाकी नाईं देखता है, सो मृत्युकूं पावता है." इति. कठोपनिषद अ. द्वि.

राजाको इक भर्छू मंत्री ।
राजकाज सब ताके तंत्री* ॥
और मुसाहिब मंत्री जेते ।
करैं ईरषा तासूं तेते ॥ १९ ॥

करि न सकत भर्छूकी हाना ।
महाराज निज जिय प्रिय जाना ॥
तब तब मिलि यह रच्यो उपाया ।
धरि दौर दंगा मचवाया ॥ २० ॥

सो सुनि राजहिं करी कचहरी ।
लिये बुलाय मुसाहिब जहरी ॥
तिनसूं कह्यो वेग चढ़ि जावहु ।
दौरत धारि सु धूम नशावहु ॥ २१ ॥

तब सब मिलि उत्तर यह दीना ।
सदा एक भर्च्छुहि तुम चीना ॥
मरणलिए अब हमहिं पठावत ।
भर्छूकूं कहु क्यूं न चढावत ॥ २२ ॥

तब बोल्यो भर्छू कर जोरी ।
महाराज सुनु विनती मोरी ॥
आज्ञा होय मोहिं यह रौरी ।
मारूं सकल धारि जो दौरी ॥ २३ ॥

तब भर्छूकूं बोल्यो राजा ।

---

* तंत्री कहिये आधीन.

तुम चढि जाहु समारहु काजा ॥
ते जातहि भर्छू सव मारे ।
वनक कृषीवल किये सुखारे ॥ २४ ॥

भर्छूविजय सुन्यो तिन जवहीं ।
राजापै भाष्यो यह तवहीं ॥
भर्छू मर्‍यो न सुधर्‍यो काजा ।
मिथ्यावचन सुनतही राजा ॥ २५ ॥

और प्रधान मुसाहिव कीनो ।
छत्रऽरु पीनस पंखा दीनो ॥
वंदोवस्त तिन कीनो अपनहु ।
सुनै न राजा भर्छुहि सुपनहू ॥ २६ ॥

सव वृत्तांत भर्छु तव सुनिकै ।
रूप तपस्वि धर्‍यो यह गुनिकै ॥
राजापै मुहिं जान न दै हैं ।
गये द्वारलग प्राणहु लै हैं ॥ २७ ॥

अवलग सवहि पदारथ भोगे ।
देहऽरु इंद्रिय रहे अरोगे ॥
तिय जो चारि चतुष्पद सोहत ।
चारि फूल फल खग सन मोहत ॥ २८ ॥

" तिय " आदि, " खग " अंत. ये दो पदके अर्थ.

खेती करनेवाले.

दोहा।

चारि चतुष्पद।

करिकर उरु मृग खुरु पुरज, केहरिसी कटि मान
लोचन चपल तुरंगसे, वरणै परमसुजान ॥ २९॥

चार फूल.

कमल वदन अलसी कुसुम, चिबुकचिन्ह[1] मतिधा
तिलप्रसूनसी नासिका, चंपकतनु अभिराम ॥३॰

चार फल.

बिंवअधर दाडिमदशन, उरज बिल्वसे धीर ॥
कोहरसी ऍडी कहत, कोविद मतिगंभीर ॥ ३१

चारि खग.

है मरालसी मंदगति, कंठ कपोत सुढार ॥
पिकसी वानी अतिमधुर, मोरपुच्छसम वार ॥३

चौपाई–गंग पयोनिधि कबहुं न त्यागत।
जात रसिक सुमन अनुरागत॥
विधि तिलोत्तमा अपर वनाई।
हून्यो सुंद जिन सो न सुहाई॥ ३३॥
मिहंदी यावककर पद रागा।
तिनको में किय निमिष न त्यागा॥
और भोग तिनके उपकरना।
भोगे सबै निकट भौ मरना॥ ३४॥

---

१ ठोढीका तिल.

अहो मूढ को मम सम जगमें ।
औ लंपट अबलग मैं भगमें ॥
गीलो मलिन मूत्रतें निशि दिन ।
स्रवत मांसमय रुधिर जु क्षत बिन ॥ ३५ ॥

चर्म लपेट्यो मांस मलीना ।
ऊपर बार अशुद्ध अलीना ।
इनमें कौन पदारथ सुंदर ।
अति अपवित्र ग्लानिको मंदिर ॥ ३६ ॥

तियकी जंघ जघन्य सदाही ।
रंभा करिकर उपमित जाही ॥
आद्र मूतको मनु पतनारो ॥
रुधिर मांस त्वक् अस्थि पसारो ॥ ३७ ॥

लगत जु नीके स्थूलनितंबा ।
तिनके मध्य मलिन मलवंबा ॥
तट ताकेतें अतिदुर्गंधा ।
व्है आसक्त तहां सो अंधा ॥३८

अधर जो थूक लारसें भीजत ।
त्यागि ग्लानि निजमुखमें दीजत ॥

१ अधम. २ कदली (केलेका खंभ). ३ हाथीकी सूंड. ४ गीले. ५ नर्दवा (पंढोह). ६ चमडा (खाल). ७ हड्डी. ८ मोटे भारी चूतड. ९ ओष्ठ.

*दृष्टमदा नारी मदिरा भजि ।
शुद्ध अशुद्ध विवेक दियो तजि ॥ ३९ ॥

कहत नारिके अंग जु नीके ।
करत बिचार लगत यूं फीके ॥

कपट कूटको[१] आंकर[२] नारी ।
मैं जानी अब तजन बिचारी ॥ ४० ॥

कलाकंद दधि पायस पेरा
तंदुल घृत व्यंजन बहुतेरा ॥
और विविध भोजन जे कीने ।
तिन सबके रसना रस लीने ॥ ४१ ॥

अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं
यातें वृथा पोषना ताकूं ॥
क्षुधा विनाशहि वनफल कंदा ।
व्है क्यूं पराधीन यह वंदा ॥ ४२ ॥

गुहा महल बन बाग घनेरा ।
क्यूं राजाको व्हैहूं चेरा ॥
सेजशिला अरु निजभुज तकिया ।
निर्झरजल कर पात्र न रुकिया ॥ ४३ ॥

बेठि इकंत होय स्वच्छंदा ।
लहिये भर्छू परमानंदा ॥

---

* दृष्टमदा कहिये जाके देखतही मद चढ़ै.

१ पाखण्ड, अथवा माया (छल). २ समूह.

विन एकांत न आनँद कबहूं ।
मिलै अंब्धिलौं पृथ्वी सबहूं ॥ ४४ ॥

दोहा ।

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ स्थूल बलवंत ॥
विद्यायुत तिहि भूपमें, मानुष सुखको अंत ॥ ४५ ॥

चौपाई–जे मानवगंधर्व कहावत ।
ते नृपतै शतगुण सुख पावत ॥
होत देवगंधर्व जु औरा ।
तिनके तहँ सौगुण सुखब्यौरा ॥ ४६ ॥
सुख गंधर्वदेवको जो है ।
तातें शतगुण पितरनको है ॥
पुनि आजानदेवमें तिनते ।
सौगुण कर्मदेवमें जिनते ॥ ४७ ॥
*मुख्यदेव जे हैं पुनि तिनमें ।
कर्मदेवतें सौगुण जिनमें ।
जो त्रिलोकपति इंद्र कहीजे ।
तामें पुनि सौगुण गिनि लीजे ॥ ४८ ॥

---

* मुख्यदेव कहिये ग्यारा रुद्र, बारा आदित्य, और आठ वसु ये इकतीस.

१ समुद्रपर्यंत. २ जो मनुष्य होकर कर्मोपासनाके बलसे गन्धर्वत्वको प्राप्त हैं 'अर्थात् अन्तर्धानादि शक्तियोंकरके सम्पन्न हैं वे मनुष्यगंधर्व कहलाते हैं. ३ कल्पकी आदिमें जो जातिसें गन्धर्व होते हैं वे देवगन्धर्व कहलाते हैं. ४ आजान जो देवलोक तिस विषे स्मृतिप्रतिपादित कर्मसे जो हुये हैं वे आजानदेव कहलाते हैं. ५ जो केवल वेदोक्त कर्मोंसे देवभावको प्राप्त होते हैं वे कर्मदेव कहलाते हैं.

सब देवनको गुरू बृहस्पति ।
लहै इंद्रतें शतगुण सुखगति ॥
जाको नाम प्रजापति भाषत ।
गुरुतैं सुख सौगुण सौ राखत ॥ ४९ ॥

ताहूतैं सौगुण ब्रह्महिं सुख ॥
लहै न रंचक सो कबहूं दुख ॥
इतने या क्रमतें सुख पावत ।
तैत्तिरीयश्रुति यूं समुझावत ॥ ५० ॥

सोरठा ।

राजातैं ब्रह्मांड, कह्यो जु सुख सगरो लहै ।
रहत सदा एकांत, कामदग्ध जाको न हिय ॥ ५१

व्है एकांतदेशमें अस दुख ।
युवति पुत्र धन संग सदा दुख ॥

अथ युवतिसंगदुःखवर्णन ।

युवति कुरूप कुबोलनि जाके
सदा शोक हिय व्है यह ताके ॥ ५२ ॥

प्रभु पुंरीषपंडा यह रंडा ॥
दिय मुहिं कौन पापको दंडा ॥

---

१ यह प्रकरण तैत्तिरीयोपनिषद्के २ अ. २ वल्ली ७ अनुवाक ... पादित है. अर्थात् जिसके हृदयमें कोई कामना नहीं है. ३ एकान्त ... ४ निष्ठा कृमि.

बोलत बैन ¹ब्याल कागनिके ।
भेड भैंसि न्योरी नागनिके ॥ ५३ ॥

भूत भावती ऊंटनि को है ।
बोल ²खरीको सुनि ³खर मोहै ॥
रैनि जु ऊंचे स्वरहिं उचारत ।
स्यार हजारन सुनत पुकारत ॥ ५४ ॥

निरपराध तिय विन वैरागा ।
तजत न बनत पाप जिय लागा ॥
रहत दुखी यूं निशिदिन पिय मन ।
तिन कुबोल सुनि लखि कुरूप तन ॥ ५५ ॥

कामिनी व्है जु सुरूप सुबानी ।
सो कुरूपतें व्हैं दुखदानी ॥
चमक चामकी पियहिं पियारी ।
अर्थ धर्म नशि मोक्ष विगारी ॥ ५६ ॥

अथ धनविगार ।

मीठे बैन जहरयुत लडवा ।
खाय गमाय बुद्धि व्है भडवा ॥
और कछू सुपनहु नहिं देखै ।
कामअंध इक कामिनि लेखै ॥ ५७ ॥

---

१ सर्प. २ गद्धीका. ३ गधा.

धन कछु मिलै जु बाहिर घरमैं ।
सो सब खरचै कामिनिघरमैं ॥
भूषण वस्त्र ताहि पहिरावै
गुरु पितु मातु न यादिहु आवै ॥ ५८ ॥

पांयस पान मिठाई मेवा ।
देय भक्तितें तिय निजदेवा ॥
नेंहनाथ नाथ्यो नहिं छूटै ।
तियकिसान पियबैलहि कूटै ॥ ५९ ॥

अथ धर्मबिगार ।

ज्यूं सूवा पिंजरेमें बँधुवा ।
सिखयो बोलत शुद्ध अशुधवा ॥
तैसै जो कछु नारि सिखावत ।
सो गुरु पितु मातहीं सुनावत ॥ ६० ॥

जैसे मोर मोरनी आगे ।
नाचि रिझाय आप अनुरागे ॥
तैसे विविध वेष करि तियको ।
मन रिझाय रीझत मन पियको ॥ ६१ ॥

जब दुहूनको मन अनुराग्यो ।
तबहिं मंदनमदिरामद जाग्यो ॥

---

१ स्त्रीके शरीरमें. २ गहने. ३ खीर. ४ अर्थात् जैसे (... नाकमें जो रस्सी डालते हैं उसे नाथ कहते हैं) नाथसे नाथा हुआ ... कृषकके वश रहता है तैसेही प्रेमरूप नाथसे नाथा हुआ पुरुषरूप बैल ... कृषकके वशमें रहता है. ५ कामरूप मद्यका मद (नशा).

भये बावरे वसनहु त्यागे ।
अतिउंन्मत्त घुरन पुनि लागे ॥ ६२ ॥

प्रेतरूप धनि नग्न अमंगल ।
भिरि भिरि फिरत मेषंमनु दंगल ॥
ज्यूं लोटत मंद्यपि मतवारो ।
गिनत मलीन गलीन न नारो ॥ ६३ ॥

त्यूं नर नारि मदनमदअंधे ।
अतिगलीन अंगनमें बंधे ॥
करत मदनमद भ्रम जे मनकूं ।
व्है अचरज मुनि त्यागी जनकूं ॥ ६४ ॥

नशै मदनमदतैं मति नरकी ।
लखत न ऊंच नीच परघरकी ॥
तियहु बावरी मदन बनाई ।
क्रिया दुखद जिहि व्है सुखदाई ॥ ६५ ॥

प्रबलकाममदिरामद जागै ॥
तब द्विंजतिय धानंकतैं लागै ॥
पिये मदनमदिरा नर नारी ।
ऐसे करत अनंत खुवारी ॥ ६६ ॥

कामदोष यूं नरहि विगोवत ।
सोइ प्रगट सुंदरि तिय जोवत ॥

---

१ मतवाले. २ मेंढकी समान. ३ मदिरा पीनेवाला. ४ ब्राह्मणादि उच्च वर्णकी स्त्री. ५ अतिशूद्र (अन्त्यज) पासी कोरी आदि.

यातैं अतिसुरूप तिय दुखदा[1] ।
ताको त्याग कहत मुनि सुखदा[2] ॥ ६७ ॥

जो सुरूपतियमैं अनुरागत ।
विषमदुखद[3] पेखिहु नहिं भावत ॥
उभयलोक[4]की करत सुहानी ।
मुनिजन गन गुन साख बखानी ॥ ६८ ॥

जो नानाविध[5] भोजन खावै ।
रस ताको फल बिंदु उपावै ॥
जीवन बिंदु अधीन सबनको ।
नशत शोक बिंदुहुतें मनको ॥ ६९ ॥

व्है जब जनको मन मलवासी ।
करत शोक अति धरत उदासी ॥
रुधिर निवास धरत मन जबहूँ ।
चंचल अधिक रजोगुण तबहूँ ॥ ७० ॥

जब मन करत बिंदुमैं वासा ।
तबहिं शोक चंचलता नाशा ॥
पुनि आपहि बलवत जन जानै ।
व्है प्रसन्न शुभ कारज ठानै ॥ ७१ ॥

बिंदु अधिक होवै जा जनमैं ।
सुंदरकांतिरूप ता तनमैं ॥

---

१ दुःख देनेवाली है. २ सुख देनेवाला. ३ कठिन दुःख दें[…]
४ दोनों लोकोंकी. ५ अनेक प्रकारके.

बिंदुहिको तनमें उजियारो ।
नशै बिंदु तन मनु हतियारो ॥ ७२ ॥

जाको बिंदु न कबहूँ नाशै ।
वलि न पलितं तिहिं तन परकाशै ॥
योगी करत खेचरीमुद्रा ।
तातें बिंदु राखि व्है भद्रा ॥ ७३ ॥

अष्टसिद्धि जे धारत योगी ।
बिंदु खसे हारत ते भोगी ॥
अस अतिउत्तम बिंदु जु जगमें ।
तिहिं तिय छीनि लेत निजभगमें ॥ ७४ ॥

ज्यूं किसान वेलंनमें ऊषहि ।
पेरत लेत निचोरि पियूषहि ॥
वार वार वेलनमें धारहि । ।
व्है असार दृंथ्या तव जारहि ॥ ७५ ॥

त्यूं तिय भींचि भुजनमें पीकूं ।
भरत योनिघटें खींचि अमीकूं ॥

---

* हलकी बाथ गंडेकी बँधी हुई वेलनमें देवै हैं, ताका नाम दृथ्या पंजाबमें प्रसिद्ध है.

१ वृद्धावस्थामें जो चर्ममें शिकम पड जाती है उसे वलि कहते हैं. २ वाल सफेद हो जानेको पलित कहते हैं. ३ कोल्हूमें. ४ भगरूप घडामें.

पुनि पुनि करत क्रिया नित तौलौं।
शेष बिंदुको बिंदु जौलौं ॥ ७६ ॥

कियो असार नारि नरदेहा।
खींच फुलेल फूल ज्यूं खेहा ॥
भौ अकाम सब ताहि जरावै।
सूके बैन मुरार लगावै ॥ ७७ ॥

व्हैजु सुरूप जोर धन भारी।
ता नरपै नारी बलिहारी ॥
करि सुरूप धन बलको अंता।
कहत ताहि तू काको कंता ॥ ७८ ॥

तिहि पुनि मिलन चहै जु अनारी।
करे[1] धरपै[2] धरतहु दे गारी ॥
नाक चढाय आंखिहू मोरै।
जाय न पतिसेजहुके धोरै ॥ ७९ ॥

कोटिवज्रसंघात[3] जु करिये।
सबको सार खींचि इक धरिये ॥
तियके हियसम सो न कठोरा।
ऋषि मुनिगण यह देत ढँढोरा ॥ ८० ॥

करत गुमान हठत तिय ज्यूं ज्यूं।
चिपटत शठमति जनमन त्यूं त्यूं ॥

१ हाथ. २ शरीरपै. ३ करोडों वज्र इकट्ठा करिये.

कबहुँक ताको वांछित करिकै ।
मरन अंत छोड़त न पकरिकै ॥ ८१ ॥

पढ्यो पुरान वेद स्मृति गीता ।
तर्कनिपुण पुनि किनहुँ न जीता ॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसे ।
बाजीगर बंदरकूं जैसे ॥ ८२ ॥

सब कछु मनभावत करवावत ।
पढ़े पशुहिं भलभांति नचावत ॥
उक्ति युक्ति सब तबहीं बिसरै ।
जब पंडित पढि तियपै ढिसरै ॥ ८३ ॥

जब कबहूं सुमिरत यह वेदा ।
तब तियमें मानत कछु खेदा ॥
तिहिं त्यागनकी इच्छा धारै ।
पुनि तिय नैनसैनशर सारै ॥ ८४ ॥

जहर कटाक्ष नैनशर बोरै ।
तानि कमान भौंह युगं जोरै ।
मारत सारत हिय सब जनको ।
* विज्ञहुं बचत न धन शठ गन को ॥ ८५ ॥

---

* विज्ञ कहिये विद्वानहु न बचत, शठगन को धन कहिये कहा चीज.

१ नेत्रोंकी दृष्टि रूप बाण. २ दोनों.

भयो न तियमें तीव्रविरागा ।
यूं मतिमंद करत पुनि रागा ॥
करत विविध आज्ञा ज्यूं चाकर ।
हुकम करै बैठी मनु ठाकर ॥ ८६ ॥

जे नर नारिनयनशर बींधे ।
तिनके हिये होयँ नहिं सीधे ॥
भलो बुरो सुख दुख सब बिसरत ।
ते कैसे भवदुखते निसरत ॥ ८७ ॥

नारि बुरी वेश्या अरु परकी ।
तीजी नरकनिशानी घरकी ॥
तजत विवेकी तिहुमें नेहा ।
करै नेह तिहिं शठमुख खेहा ॥ ८८ ॥

दोहा ।

अर्थ धर्म अरु मोक्षको, नारि विगारत ऐन ॥
सब अनर्थको मूल लखि, तजे ताहि ह्वै चैन॥८

पुत्र सदा दुख देत यूं, विना प्राप्ति दुख एक ॥
गर्भसमय दुख जन्मदुख, मरै तु दुःख अनेक॥९

गर्भ धरत जौलों नहिं नारी ।
दुख दंपतिमन तौलों भारी ॥
ह्वै जु गर्भ यह चिंतन नाशै ।
पुत्री होय कि पुत्र प्रकाशै ॥ ९१ ॥

१ संसारके दुःखसे. २ स्त्रीपुरुष दोनोंके मनमें.

गर्भ गिरनके हेतु अनंता ।
तिनतें डरत करत अतिचिंता ॥
व्है जु पूत नवमास विहाने ।
जननी जनक अधिक दुखसाने ॥ ९२ ॥

नवग्रहमें इक द्वै नहिं विगरें ।
अस जन को जन्म न जग सगरै ॥
विगरे ग्रहकी निशि दिन चिंता ।
करत मात पितु बैठि इकंता ॥ ९३ ॥

शिशु उदास व्है जब ताजि वोवां ।
तब दोऊ मिलि लागत रोवा ॥
यं चिंतत कछु गये महीने ।
दांत पूतके निकसे झीने ॥ ९४ ॥

मरत बाल बहु निकसत दंता ।
तब यह चिंता दुख तिय कंता ॥
जिये दूबरो दुखते बारो ।
देखि चुहारो धरत उतारो ॥ ९५ ॥

म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी ।
तिनते झरवावत द्विज धोरी ॥
सइयद ख्वाजा पीर फकीरा ।
धोकत जोरत हाथ अधीरा ॥ ९६ ॥

१ बालक. २ स्तन.

जाको हिंदु कबहुँ नहिं मानै ।
पुत्रहेतु तिहि इष्ट[1] पिछानै ॥
भैरव भूत मनावत नाना ।
धरत शिवाबलि[2] भूमि मसाना ॥ ९७ ॥

धानकको डमरू घर बाजै ।
कर जोरत पूजत नहिं लाजै ।
और यंत्र तावीज घनेरे ।
लिखि मढ़वाय पूतगर गेरे ॥ ९८ ॥

निजकुलमें इक अच्युतपूजा[3] ।
किनहु न सुपनेहु सुमर्‍यो दूजा ॥
सो कुलनेम पूतहित त्याग्यो ।
व्यभिचारनज्यूं जहँतहँ लाग्यो ॥ ९९ ॥

होत शीतलाको जब निकसन ।
नशत मातपितु मनको बिकसन ।
स्नानक्रिया तजि रहत मलीना ।
परमदेव गदहाकूं कीना ॥ १०० ॥

मोरि बाग बकसहु शिशु मोरा ।
गदहा मात चराऊं तोरा ॥

१ पूज्य. २ देवीके निमित्त बलि. ३ विष्णुपूजा.

थूं कहि चना गोदमें धारै ।
विनती करि गदहाकूं चारै ॥ १०१ ॥

अस अनंतदुखतें शिशुपारन ।
युवा होतलों और हजारन ॥
उमर पूतकी व्है जो थोरी ।
मरि है करहु उपाय करोरी ॥ १०२ ॥

मरे मातुपितु कूटहिं माथा ।
मानि आपकूं दीन अनाथा ॥
हाय हाय करि निशि दिन रोवें ।
करि धिक धिक निजजन्म विगोवें ॥ १०३ ॥

पूतमरणको व्है दुख जैसो ।
लखत संपूत अपूत न तैसो ॥
जो जीवै तौ होतहि तरुना ।
लगत नारिके पोषण भरना ॥ १०४ ॥

जिन अनेक यत्ननि प्रतिपारो ।
तिनकूं जल प्यावन है भारो ॥
रंजनि सेजपै सिखवै नारी ।
तव पितु मातु देहिं मुहिं गारी ॥ १०५ ॥

---

* सपूत कहिये जाका पूत जीवै है, और अपूत कहिये जाको पूत नहीं हुआ.

१ जवान. २ पालन. ३ रात्रिमें.

व्है सुपूत तौ प्रातहि उठिकै ।
नवै दूरतें माथ न गठिकै ॥
चहै मातु पितु आवें नेरे ।
पूत न सन्मुख आंखिहु हेरे ॥ १०६ ॥

व्है कुपूत तो उठतहि प्राता ।
वचन गारिसम बकि असुहाता ।
जुदो होय ले सब घरको धन ।
दे पितुमातुहि इक तिनको तन ॥ १०७ ॥

फेरि सँभारत कवहुं न तिनकूं ।
पोषत सब दिन तिय निजतनकू ॥
देखि लेत पितु मातु उसासा ।
या विधि पुत्र सदा दुखरासा ॥ १०८ ॥

दोहा ।

करि विचार यूं देखिये, पुत्र सदा दुखरूप ।
सुख चाहत जे पूततें, ते मूंढनके भूप ॥ १०९ ॥
तजि तिय पूत जु धन चहै, ताके मुखमें धूर ।
धन जोरन रक्षा करन, खरच नाश दुखमूर ॥ ११० ॥
चौपाई—जो चाहै माया बहु जोरी ।

१ मूर्खोंके. २ राजा हैं.

करै अनर्थ सु लाख करोरी ॥
जातिधर्म कुलधर्म सु त्यागै ।
जो धनकूं जोरन जन लागै ॥ १११ ॥

विना भाग तदपि न धन जुरि हैं ।
जुरै तु रक्षा करि करि मरि हैं ॥
खरचत धन घटि है यह चिंता ।
नाशै निशिदिन ताप अनंता ॥ ११२ ॥

सदा करत यूं दुख धन मनकूं ।
चहै ताहि धिक धिक तिहिं जनकूं ॥
युवति[1] पूत धन लखि दुखदाता[2] ।
तज्यो भर्छु ममताको नाता ॥ ११३ ॥

कुंडलियाछंद ।

भर्छ्रं वन एकांतमें, गयो किसो चित शांत ॥
भयो नयो दीवान तिन, सुन्यो सकल वृत्तांत ॥
सुन्यो सकल वृत्तांत, चिंता यह उपजी ताके ॥
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके ॥
तौ झूठे हम होहिं, भूप दे सबकूं दंडा ॥
यातें अब मिलि कहौ, भर्छु भौ प्रेत प्रचंडा ॥ ११४ ॥

दोहा ।

करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी बीच ॥
सबहीं कहि यह भूपतें, भर्छु प्रेत भौ नीच ॥ ११५ ॥

---

१ स्त्री. २ दुख देनेवाले.

राख लगाये देहमें, मिलै जाहि वतरात ॥
तिहिं मारत सो नर बचत, जो तिहिं देखि परात॥
सुनि भूपहु निश्चय कियो, भर्छू मरि भौ प्रेत॥
साँच झूंठ भूपन लखत, व्है जु प्रमाद अचेत॥
कछु दिन बीते भूप तब, मारन गयो सिकार॥
पैठ्यो गिरि वन सघनमें, जहँ मृगराज हजार॥
तपत तहाँ इक तरुतरे, भर्छू निज दीवान।
पेखि ताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेत दुखदान॥

इंदव छंद.

भर्छु मर्‍यो रु परेत भयो यह।
वाक्य असत्यहु सत्य पिछाना ॥
देखि लियो निजआँखिन जीवत ॥
तोहुँ परेत हु मानि भगाना ॥
वंचकतें सुनि द्वैत तथा मतिमैं।
विश्वास करै जु अजाना ॥
ब्रह्म अद्वैत लखै परतक्षहु ।
तौहुं न ताहि हिये ठहराना ॥ १२० ॥

दोहा.

भेदवचन विश्वास करि, सुनत जु कोउ अजान॥
सो जन दुख भुगतै सदा, व्है न ब्रह्मको ज्ञान॥

❀ परात कहिये भाग जावै.
१ अज्ञानसे बेहोश. २ सिंह.

याते सुनै जु भेदके, वचन लखै सु असत्य ॥
तबहीं ताकूं ज्ञान व्है, महावाक्यते सत्य ॥ १२२ ॥

चौपाई—शिष तैं सुनी जु भेदकहानी ।
जानि झूठ ते नरकनिशानी ॥
तिनके कहनहार सब झूठे ।
पुरुषारथ सुखते शठ रूठे ॥ १२३ ॥

तिनको संग न कबहूं कीजै ।
व्है जो संग न वचन सुनीजै ॥
जो कहुँ सुनै तु सुनतहि त्यागहु ।
म्लेच्छजैनवचसम लखि भागहु ॥ १२४ ॥

जो मिथ्या व्है दैशिक वेदा ।
कैसे करही भवदुख छेदा ।
याको अब उत्तर सुनि लीजै ।
मिथ्यादुख मिथ्याते छीजै ॥ १२५ ॥

वेद रु गुरू सत्य जो होवै ।
तौ मिथ्या भवदुख नहिं खोवै ॥
यामें इक दृष्टान्त सुनाऊं ।
जाते तव संदेह नशाऊं ॥ १२६ ॥

सुरपति[1] इंद्र स्वर्गमें जैसो ।
प्रबलप्रताप भूप इक ऐसो ॥

---

१ देवताओंका स्वामी.

भीमसमान शूर बहु तेरे ।
तिनके चहुँधा डेरे गेरे ॥ १२७ ॥

योधा ले निज निज हथियारन ।
खड़े रहे तिहि द्वार हजारन ॥
अंदिर मंदिर ड्योढी ठाढे ।
लिये खड्ग *कोषनतैं काढे ॥ १२८ ॥

ऊँचो महल अटारी जामें ।
फूलसेज सोवै नृप तामें ॥
पंछी हू पहुँचन नहिं पावे ।
तहां और कैसे चलि जावै ॥ १२९ ॥

तहां भूप देख्यो अस सुपना ।
पकऱ्यो पैर गीदरी अपना ॥
भूप छुडायो चाहत निज पग ।
तजत न गीदरि पकरि जु पगरग ॥ १३०

तब राजा यूं खरो पुकारै ।
है को अस जो गीदरि मारै ॥
योधा जो ठाढे निजद्वारा ।
तिन रंचकहु न दियो सहारा ॥ १३१ ॥

तब नृप दंड लियो निजकरमें ।
आपुहि माऱ्यो स्यारनि शिरमें ॥

* कोष कहिये म्यान.

१ तलवार. २ राजासे. ३ स्यारिनीने. ४ अपने हाथमें.

लगत दंड भौ ताको अंता ।
तव निसरे पग रगते दंता ॥ १३२ ॥

दाँत लगे गाढे नृपपगमें ।
यूं लँगरात सु चालत मगमें ॥
तब चाल्यो ले लाठी करमें ।
पहुँच्यो घावरियाके घरमैं ॥ १३३ ॥

ताहि कह्यो फोहा अस दीजै ।
घाव पांवको तुरत भरीजै ॥
घावरिया नृपतें यह भाष्यो ।
फोहा नहिं तयार धर राख्यो ॥ १३४ ॥

जो तूं दे पैसा इक मोकूं ।
तौ तयार करि देहूं तोकूं ॥
तब उलट्यो नृप लाठी टेका ।
नहिं देनेकूं कौड़िहु एका ॥ १३५ ॥

लाग्यो शोच करन टरि घरतें ।
बूझै वात कौन विन जरतें ॥
जो मैं होत धनी बडभागा ।
आवतु घर घावरिया भागा ॥ १३६ ॥

मोहिं निकम्मा जानि कँगाला ।
घरते तुरत रोग ज्यूं ज्युं टाला ॥

---

१ जरांह (घावपर मरहम पट्टी चढानेवाला.) २ धनसे.

याहीको कछु दोष न दीजै ।
विनस्वारथको किहि न पतीजै ॥ १३७॥

मात पिता बांधव सुत नारी।
करत प्यार स्वारथतैं भारी ॥
जो नहिं स्वारथसिद्धी पावै ।
तौ इनकूं देख्योहु न भावै ॥ १३८ ॥

जाविन घरी एक नहिं रहते ।
दुख अपार विछुरे सव लहते ॥
जव देखै आयो घर पौरी ।
घरके मिलत भाजि भरि कौरी ॥ १३९ ॥

विधिअधीन कोढी सो होवै ।
सव अंगनिमें पानी चोवै ॥
अरु जरि परी आँगुरी जाके ।
भिनभिनात मुख माखी ताके ॥ १४० ॥

कहत ताहितें घरके प्यारे ।
मर पापी अव तौ हतियारे ॥
जिहि देखत अँखिया न अघानी ।
तिहिं लखि ग्लानि वंमन ज्यूं आनी ॥१४१॥

जो तियहिय लागत पति प्यारो ।
किय न चहत पल उरते न्यारो ॥

---

१ उलटीके समान.

ताकी पवन वचायो लोरै ।
भिरै जु वसन तु नाक सिकोरै ॥ १४२ ॥

जिहिं पितु मात गोदमें लेते ।
सकुचत तिहिं करते[2] कछु देते ॥
मिलत भ्रात जो भरि भुज कोरी ।
सो वतरात वीच दै डोरी ॥ १४३ ॥

ऐसे जग स्वारथको सारो ।
विन स्वारथको काको प्यारो ॥
मुहिं स्वारथ योग्य न विधि कीनो ।
याते इन फोहा नहिं दीनो ॥ १४४ ॥

यूं चिंतत इक मुनि तिहिं भेट्यो ।
तिन दै जरीघावदुख मेट्यो ॥
निद्राते जाग्यो नृप जवहीं ।
घावदरद मुनि नाशै तवहीं ॥ १४५ ॥

शिष यह तुहिं दृष्टांत प्रकाश्यो ।
लिखि मिथ्या तें मिथ्या नाश्यो ॥
मिथ्यादुख देख्यो जव राजा ।
साँचसमाज न किय कछु काजा ॥ १४६ ॥

टीकाः—सर्व प्रकरणका अर्थ स्पष्ट है. भाव यह है किः— संसाररूप दुःख मिथ्या है, यातें तिसके दूर करनेके साधन वेद गुरु मिथ्याही चाहिये हैं; मिथ्याके नाशमें सत्यसाधनकी

---

१ वस्त्र. २ हाथसे.

अपेक्षा नहीं. और सत्यसाधन होवै, तौ तिनतैं मिथ्या
नाश होवै नहीं; जैसे राजाके समीप मिथ्या गीदरी
पहुँची, किसी सत्ययोद्धासैं रुकी नहीं; और राजा पुकार्यो
काहूसैंभी मरी नहीं; और राजाके पास अनेक साचे शस्त्र
रहे, तौभी मिथ्यादंडसैं मरी. और राजाके मिथ्या घाव
तब कोई वैद्य जर्राह साँचा पाया नहीं. मिथ्या जर्राहके
गया; ताने पैसा माँग्या, तौ अनंत खजाने साँचे घरेहीं
एक पैसाभी राजाकूं मिल्या नहीं. कोईभी सत्यसाधन रा
दुःखके नाश करनेमें समर्थ हुआ नहीं; किंतु मिथ्या
मिथ्या जरी देके मिथ्यादुःखका नाश किया. इस रीतिके
सर्वकूं अनुभवसिद्ध हैं. जागृतपदार्थका स्वप्नमें काहूकूं
भी उपयोग होवै नहीं. तैसे मिथ्या जो संसारदुःख,
नाश मिथ्या वेदगुरुसे होवै है, साँचे वेदगुरु अपेक्षित न

जैसे मरुस्थलके मिथ्याजलते तृषाका नाश होवै न
तैसे मिथ्यावेदगुरुते संसारदुःखका नाश होवै नहीं;
मिथ्यावेदगुरु मानके संसारदुःखका तिनते नाश अंगी
करोगे, तौ मरुभूमिके जलसेभी तृष्णाका नाश हो
चाहिये. यह शंका शिष्यने करी थी ॥ १४६ ॥

ताका समाधान.

चौपाई—यद्यपि मिथ्या मरुथलपानी ।
ताते किनहु न प्यास बुझानी ॥
तदपि विषमदृष्टांत सु तेरो ।
सत्ताभेद दुहुँनमें हेरो ॥ १४७ ॥

टीका:—यद्यपि मिथ्या जो मरुभूमिका पानी, ताते किसीने प्यास नहीं बुझाई, और मिथ्या गुरुदेवतैं दुखके नाशकी नाईं मिथ्याजलसे प्यासका नाश हुवा चाहिये; और प्यास-नाश होवै नहीं, तैसे मिथ्या गुरुदेवतैं संसारका नाश बने नहीं; तदपि कहिये तौभी तेरा दृष्टांत विषम है. काहेतैं? दुहुँनमैं कहिये मरुथलका जल और प्यास इन दोनोंमैं सत्ताका भेद है. ताकूं हेरो कहिये देखो ॥ १४७ ॥

चोपाई—समसत्ता भवदुख गुरुवेदा ।
यूं गुरुवेद करत भव छेदा ॥
आपसमैं समसत्ता जिनकी ।
लखि साधकबाधकता तिनकी ॥ १४८ ॥

टीका:—भवदुःख और गुरुवेदकी समसत्ता कहिये एक सत्ता है याते गुरुवेदतैं भवदुःखका छेद होवै है. जिनकी आपसमैं समसत्ता होवै, तिनकी आपसमैं साधकता और बाधकता होवै है; जैसे मृत्तिका और घटकी समसत्ता है, यातैं मृत्तिका घटका साधक है; अग्नि और काष्टकी समसत्ता है. तहां अग्नि काष्ठका बाधक है. साधक कहिये कारण और बाधक कहिये नाशक. मरुस्थलके जलकी और प्यासकी समसत्ता नहीं, यातैं मरुस्थलका जल प्यासका बाधक नहीं. या स्थानमैं यह रहस्य है:—चेतनमैं परमार्थसत्ता है. और चेतनसैं भिन्न जो मिथ्या पदार्थ, तिनमैं दो प्रकारकी सत्ता है—एक तौ व्यवहारसत्ता है और दूसरी प्रतिभाससत्ता है.

जा पदार्थका ब्रह्मज्ञानविना बाध होवै नहीं, किंतु ब्रह्मज्ञानसैंही बाध होवै, ता पदार्थमैं व्यवहारसत्ता कहिये है .सो

व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टिमैं है. काहेतैं ? देहइंद्रियादिक प्रपं जो ईश्वरसृष्टि, ताका ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं; ब्र ज्ञानसैंही बाध होवै है. यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थनका ब्र ज्ञानसैंविना नाश तौ होवैभी है, परंतु ब्रह्मज्ञानसैं विना ब होवै नहीं. अपरोक्षमिथ्यानिश्चयका नाम बाध है. सो अप क्षमिथ्यानिश्चय ईश्वरसृष्टिके पदार्थनमैं ब्रह्मज्ञानसैं प्र किसीकूं होवै नहीं; ब्रह्मज्ञानसैं अनंतरही होवै है. यातैं इ अविद्याके कार्य जो जागृतके पदार्थ, ईश्वरसृष्टि तामैं व्य हारसत्ता है. जन्ममरण बंधमोक्षआदिक व्यवहारके सिद्ध नेवाली जो सत्ता कहिये होना, सो व्यवहारसत्ता कहिये।

और ब्रह्मज्ञानसैं विनाही जिनका बाध होवै, तिन पदा नमैं प्रतिभाससत्ता कहिये है. जैसैं ब्रह्मज्ञानसैं बिनाही शुक्ति जेवरी, मरुस्थल, आदिकनके ज्ञानतैं रूपा, सर्प, जल, आ कनका बाध होवै है. तिनमैं प्रतिभाससत्ता है. प्रति कहिये प्रतीतिमात्र जो सत्ता कहिये होना, सो प्रतिभासस कहिये है. मूलअविद्याके कार्य रूपादिक पदार्थनका प्र तिमात्रही होना है; यातैं तिनकी प्रतिभाससत्ता है.

जाका तीन कालमैं बाध होवै नहीं, ताकी परमार्थस कहिये है. चेतनका बाध कभी होवै नहीं यातैं परमा सत्ता चेतनकी है.

इस रीतिसैं वेदगुरु और संसारदुःख इनकी एक व्यवह सत्ता होनेतैं आपसमैं समसत्ता है. यातैं मिथ्या वेदगु मिथ्या भवदुःखका नाश बनै है. और क्षुधा पिपासा प्रा धर्म हैं. प्राण और ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसैं विना ब होवै नहीं, यातैं पिपासाकी व्यवहारसत्ता है. मरुस्थ

जलका ब्रह्मज्ञानसैं विनाही मरुस्थलके ज्ञानतैं बाध होनेतैं मरुस्थलके जलकी प्रतिभाससत्ता है. यातैं प्यास और मरु-स्थलके जलकी समसत्ता नहीं होनेतैं ता जलतैं प्यासका नाश होवै नहीं. या प्रकारतैं दार्ष्टांतविषे बाधक वेदगुरु और बाध्य संसारदुःख, तिनकी सत्ता एक है और दृष्टांतविषे जल और प्यासकी सत्ताका भेद है, यातैं दृष्टांत विषम कहिये दार्ष्टांतके सम नहीं ॥ १४८ ॥

शंका.

चौपाई—ब्रह्मभिन्न मिथ्या सब भाखौ ।
तिनको भेद होत किहि राखौ ॥
उपज्यो यह मोकूं संदेहा ।
प्रभु ताको अब कीजे छेहा ॥ १४९ ॥

टीकाः—हे प्रभु ! ब्रह्मसैं भिन्न आप सर्वकू मिथ्या कहौ हो, तिन मिथ्या पदार्थोंमें शुक्ति रूपा, रज्जुसर्प, मरु-स्थलजल आदिकनका ब्रह्मज्ञानसैं बिनाही बाध और संसार-दुःखका ब्रह्मज्ञानसैं अनंतर बाध यह भेद कौन हेतुसैं राखौ हौ ? ॥ १४९ ॥

उत्तर.

चौपाई--सकल अविद्याकारज मिथ्या ।
शिप तामें रंचकहु न तथ्या ॥
जा अज्ञानसें इपजत जोई ।
ताके ज्ञान बाध तिहिं होई ॥ १५० ॥

टीकाः—हे शिष्य ! यद्यपि ब्रह्मसैं भिन्न सकल अवि-द्याका कार्य है यातैं मिथ्या है; तामैं रंचकभी तथ्या कहिये

सत्य नहीं. परंतु जाके अज्ञानसैं जो उपजै है, ताके ज्ञा
तिसका बाध होवै है. शुक्ति-रज्जु, मरुस्थल-जल आं
कनके अज्ञानतैं रूपा, सर्प, जल आदि उपजै हैं. तिन
बाध शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके ज्ञानतैं होवै है,
ब्रह्मके अज्ञानसैं जो जन्ममरणादिक संसारदुःख उपजै
ताका बाध ब्रह्मज्ञानतैं होवै है ॥ १५० ॥

शिष्य उवाच।

दोहा।

भगवन् ब्रह्म अज्ञानतैं, जो उपजै संसार ॥
सो किहि क्रमतैं होत है, कहौ मोहिं निर्धार ॥१५
अर्थ स्पष्ट ॥ १५१ ॥

श्रीगुरुरुवाच।

चौपाई--जैसे स्वप्न होत विन क्रमते।
त्यूं मिथ्या जग भासत भ्रमते ॥
जो ताको क्रम जान्यो लोरै।
सो मरुथलजल वसन निचोरै ॥१५२॥
अर्थ स्पष्ट ॥ १५२ ॥

दोहा।

उपनिषदनमैं वहुतविधि, जगउत्पत्तिप्रकार ॥
अभिप्राय तिनको यही, चेतनभिन्न असार ॥१५३

टीकाः--यद्यपि उपनिषद्नमें जगत्की उत्पत्ति अने
प्रकारसैं कहिये है, छांदोग्यमैं तौ सत्‌रूप परमात्मातैं अ
जल, पृथ्वी क्रमतैं उपजै है, यह कह्या है औ तैत्तिरी

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, क्रमतैं होवै हैं. इस रीतिसैं पांच भूतनकी उत्पत्ति कही है. और कहूं सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करै है; इस रीतिसैं क्रमसैं बिनाही उत्पत्ति कही है. ऐसे जगत्की उत्पत्ति वेदमैं अनेक प्रकारसैं कही है. तहां वेदका यह अभिप्राय हैः—जगत् मिथ्या है. जो जगत् कछु पदार्थ होता तो ताकी उत्पत्ति, अनेक प्रकारसैं वेद नहीं कहता. अनेक प्रकारसैं जगत्की उत्पत्ति कही है, यातैं जगत्की उत्पत्ति-प्रतिपादनमैं वेदका अभिप्राय नहीं; किंतु अद्वैतब्रह्म लखावनेकूं जगत्के निषेध करनेके वास्ते मिथ्या जगत्का किसी रीतिसैं आरोप किया है. दृष्टांतः— जैसे विनोद्के निमित्त दारूका हस्ती उडावनेकूं बनावै है, ताके कान पूँछ टेढ़े होवैं, तो सूधे करनेके वास्ते यत्न नहीं करते. तैसे अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप किया है. यातैं वेदने प्रपंचकी उत्पत्तिका क्रम एकरूप कहनेमैं यत्न नहीं किया. प्रपंचकी उत्पत्ति एकरूपसैं वेदने नहीं कही, यातैं यह जानै हैः—वेदका अभिप्राय प्रपंचनिषेधमैं है, ताकी उत्पत्तिमैं अभिप्राय नहीं. और,

सूत्रकार भाष्यकारने द्वितीय अध्यायमैं उत्पत्ति कहनेवाले श्रुतिवचनका विरोध दूर करके जो एकरूपसैं तैत्तिरीयश्रुतिके अनुसार, उत्पत्तिमें सर्व उपनिषदनका अभिप्राय कह्या है, सो मंदजिज्ञासुके निमित्त कह्या है. जो उत्पत्तिवाक्यनके पूर्व कहे अभिप्रायकूं नहीं जानै, ता मंदजिज्ञासुकूं उपनिषदनमैं नानाप्रकारसैं जगत्की उत्पत्ति देखके आपसमें उपनिषदनका विरोध है, यह भ्रांति होय जावैगी. ताके दूर करनेकूं सर्व उपनिषदनमैं एकरूपसै जगत्के उत्पत्तिप्रति-

पादनका प्रकार कह्या है. औ जाकूं ब्रह्मविचारसैं यथ ज्ञान नहीं होवै, ताकूं लयचिंतनके निमित्तभी उत्पत्ति कह्या है. जा क्रमतैं उत्पत्ति कही है, तासैं विपरीतक्र लयचिंतन करै. ता लयचिन्तनसैं अद्वैतमैं बुद्धि स्थित है. सो लयचिंतनका प्रकार पंचीकरणमैं वार्तिककार सुरेश्व चार्यने कह्या है. यह ग्रंथ उत्तम जिज्ञासुके निमित्त है, जगत्की उत्पत्ति औ लयका प्रकार नहीं लिख्या औ सा रूप हैं यातैं संक्षेपतैं दिखावै हैं. शुद्धब्रह्मसैं जगत्की उत्प होवै नहीं. काहेतैं? शुद्ध ब्रह्म असंग है, और अक्रिय है; मायाविशिष्ट जो ईश्वर, तासैं जगत्की उत्पत्ति होवै है. माया औ ईश्वरका स्वरूप प्रतिपादन करै हैं ॥ १५३

कवित्त ।

जीवईशभेदहीन चेतनस्वरूपमाहिं ।
माया सो अनादि एक सांत ताहि मानिये
सत औ असततैं विलक्षण स्वरूप ताके ।
ताहिकूं अविद्या औ अज्ञानहू बखानिये ॥
चेतनसामान्य न विरोधी ताको साधक है
वृत्तिमें आरूढ वा विरोधी वृत्ति जानिये ॥
मायामें आभास अधिष्ठान अरु माया मिल
ईश सरवज्ञ जगहेतु पहिचानिये ॥ १५४ ॥

टीकाः—जीव-ईश्वरभेदरहित जो शुद्धचेतन ताके आ त माया है. सो माया अनादि कहिये आदिरहित है. अ नाम उत्पत्तिका है. जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करैं,

मायाके कार्यप्रपंचसैं तौ पुत्रसैं पिताकी नाईं मायाकी उत्पत्ति बनै नहीं. चेतनसैंही मायाकी उत्पत्ति माननी होवेगी तहां जीवभाव और ईश्वरभाव तौ मायाके कार्य हैं, मायाकी सिद्धि हुएबिना जीवईश्वरका स्वरूप असिद्ध है; यातैं जीव-चेतन वा ईश्वरचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है. और शुद्धचेतन असंग है, अक्रिय है, निर्विकार है, तातैं मायाकी उत्पत्ति मानें विकारी होवैगा. और शुद्धचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति होवै तो मोक्षदशाविषे माया फिर उपजैगी. यातैं मोक्षनिमित्त साधन निष्फल होवेगा. इस रीतिसैं माया उत्पत्तिरहित है. यातैं अनादि है; और एक है; सांत कहिये अंतवाली है; ज्ञानतैं मायाका अंत होवै है. और सत्असत्सैं विलक्षण है. जाका तीन कालमैं बाध होवै नहीं सो सत् कहिये है. ऐसा चेतन है. मायाका ज्ञानतैं बाध होवै है, यातैं सत्सैं विलक्षण है. जाकी तीन कालमैं प्रतीति होवै नहीं, सो शशशृंग, वंध्यापुत्र, आकाशफूल, आदिक असत् कहिये हैं. ज्ञानसैं पूर्व माया औ ताका कार्य प्रतीत होवै है. जागृतविषे "मैं अज्ञानी हूं, ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" इस रीतिसैं माया प्रतीत होवै है, और स्वप्नके विषे जो नानापदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनका उपादानकारण माया है.

औ सुषुप्तिसैं अनंतर अज्ञानकी इस रीतिसैं स्मृति होवै है:—"मैं सुखसैं सोया, कछुभी न जानता भया" सो स्मृति अज्ञात वस्तुकी होवै नहीं, यातैं सुषुप्तिमैं अज्ञानका भान होवै है, सो अज्ञान और माया एकही है; तिनका भेद नहीं. या प्रकारतैं तीनों अवस्थाविषे मायाकी प्रतीति होवै है; यातैं असत्सैं विलक्षण है. इस रीतिसैं सत् असत्सैं विलक्षण

जो माया, ताका कार्यभी सत् असत्सैं विलक्षण है. सत्
असत्सैं विलक्षणकूंही अद्वैतमतमैं मिथ्या कहै है औ
अनिर्वचनीय कहै है. यातैं माया और ताके कार्यतैं द्वैत
सिद्धि होवै नहीं. काहेतैं? जैसैं चेतन सत्रूप है, तैसैं
माया औ ताका कार्य सत्रूप होवै तौ द्वैत होवैं, सो माया
और ताका कार्य सत् असत्सैं विलक्षण होनेतैं मिथ्या है.
मिथ्या पदार्थसैं द्वैत होवै नहीं. जैसे स्वप्नके पदार्थ मिथ्या
हैं; तिनतैं द्वैत होवै नहीं.

जीवईश्वरविभागरहित शुद्ध ब्रह्मके आश्रित माया है,
और शुद्धब्रह्मकूंभी आच्छादन करै है. जैसे गेहके आश्रित
अंधकार गेहकूं आच्छादन करै है. या पक्षकूं स्वाश्रय स्व
विषय पक्ष कहै हैं. स्व कहिये शुद्धब्रह्मही आश्रय; और स्व
कहिये शुद्धब्रह्मही विषय कहिये मायातैं आच्छादित है.
अर्थ यह ढक्या है. संक्षेपशारीरक, विवरण, वेदांतमुक्ता
वलि, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतदीपिका आदिक ग्रंथकारोंने
स्वाश्रयस्वविषयही अज्ञान अंगीकार किया है.

और वाचस्पतिका यह मत है कि:—अज्ञान जीवके आ
श्रित है, और ब्रह्मकूं विषय करै है. "मैं अज्ञानी ब्रह्मकूं
नहीं जानूं हूं" या प्रतीतिसैं "मैं" शब्दका अर्थ जीव
"अज्ञानी" कहनेतैं अज्ञानका आश्रय भान होवै है. औ
"ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यातैं अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीत
होवै है. इस रीतिसैं अज्ञान जीवके आश्रित औ ब्रह्मकूं विषय
कहिये आच्छादन करै है. सो अज्ञान एक नहीं, किंतु अनंत
हैं. काहेतैं? जो एक अज्ञान माने, तो एकअज्ञानकी एकके
ज्ञानतैं निवृत्ति हुयेतैं औरनकूं अज्ञान और ताका कार्य संसार

प्रतीत नहीं हुवा चाहिये. जो ऐसे कहैं आजतोड़ी किसीकूं ज्ञान हुवा नहीं, तो आगेभी किसीकूं ज्ञान नहीं होवेगा. यातैं श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे. यातैं अनंतजीवनके आश्रित अज्ञान अनंत हैं, अनंतजीवनके अनंतअज्ञानकल्पित, ईश्वर अनंत और ब्रह्मांड अनंत हैं. जा जीवकूं ज्ञान होवै ताका अज्ञान ईश्वरब्रह्मांडकी निवृत्ति होवै है. जाकूं ज्ञान नहीं होवै, ताकूं बंध रहै है. यह वाचस्पतिका मत है, सो समीचीन नहीं. काहेतैं ?

" ईश्वर जीवके अज्ञानसैं कल्पित हैं. " यह कहना श्रुतिस्मृतिपुराणतैं विरुद्ध है. ईश्वर अनंत, और जीव जीवमैं सृष्टिका भेद, यहभी विरुद्ध है. यातैं नाना अज्ञान मानने असंगत हैं. और नाना अज्ञान मानके ईश्वर और सृष्टि एक मानै, तो बनै नहीं. काहेतैं ? जीव-ईश्वरप्रपंच अज्ञानकल्पित है. अनंत अज्ञान मानेतैं, एक एक अज्ञान-कल्पित जीवकी नाईं ईश्वर और प्रपंचभी अनंतही होवैंगे. याहीतैं वाचस्पतिने अनंत ईश्वर और अनंत सृष्टि कही है. यातैं अज्ञान एक है. यह मत समीचीन है.

सो एकअज्ञानभी जीवके आश्रित नहीं; किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित है. काहेतैं ? जीवभाव अज्ञानका कार्य है. सो अज्ञान स्वतंत्र कभीभी रहै नहीं. यातैं निराश्रय अज्ञानसैं तौ जीवभाव बनै नहीं. प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवै, तब अज्ञानका कार्य जीवभाव होवै. जीवपनेकी नाईं ईश्वरताभी अज्ञानका कार्य है ताके आश्रितभी अज्ञान नहीं, किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित अनादि अज्ञान है. अनादि जो चेतन और अज्ञान, तिनका संबंधभी अनादिचेतन अज्ञानके अनादि-

संबंधमैं जीवभाव ईश्वरभावही अनादि है, परंतु जीवभा
ईश्वर भाव अज्ञानके अधीन है, यातैं अज्ञानका कार्य कहि
है. यद्यपि "मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसैं जीवके आश्रि
अज्ञान प्रतीत होवै है, तथापि शुद्धब्रह्मके आश्रित जो अ
ज्ञान, ताका जीवकूं "मैं अज्ञानी हूं" यह अभिमान हो
है, और जीव अज्ञानका कार्य है. यातैं अज्ञानका अधिष्ठा
नरूप आश्रय जीव बनै नहीं. किंतु शुद्धब्रह्मही अज्ञानका
अधिष्ठानरूप आश्रय है. शुद्धब्रह्मअधिष्ठानके आश्रित जो
अज्ञान सो ता ब्रह्मकूंही आच्छादन करे है. तिसतैं अनंत
"मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसैं अज्ञानका अभिमानीरूप आ
श्रय जीव होवै है या प्रकारतैं स्वाश्रयस्वविषय अज्ञान है.

सो अज्ञान यद्यपि एक है, और ज्ञानतैं निवृत्त होवै है, परंतु
जा अंतःकरणमें अज्ञान होवै,ता अंतःकरण अवच्छिन्न चेत
नमैं स्थित जो अज्ञानका अंश ताकी निवृत्ति ज्ञानसैं होवैहै.
सोई मुक्त होवै. जा अंतःकरणमैं ज्ञान नहीं होवे, तहां अज्ञा
नका अंश रहै है; और बंध रहै है. या रीतिसैं एक अज्ञानप
क्षमें बंधमोक्षव्यवहार बनै है और किसीकूं वाचस्पतिकी रीति
से नाना अज्ञानवादही बुद्धिमैं प्रवेश होवे, तौ वहभी अद्वैत
ज्ञानका उपाय है; ताके खंडनमैं कछु आग्रह नहीं. जिस
रीतिसैं जिज्ञासुकूं अद्वैतबोध होवै तैसे बुद्धिकी स्थिति करै.
शुद्धब्रह्मके आश्रित जो माया ताकूं अविद्या और अज्ञान
कहै हैं; अचिंत्य शक्ति और युक्तिकूं नहीं. सहारे यातैं माया
कहै है. विद्यातैं नाश होवैहै यातैं अविद्या कहै हैं. स्वरूपका
आच्छादन करै है यातैं अज्ञान कहै हैं. जा चेतनके आश्रित
है सो सामान्यचेतनका विरोधी नहीं, किंतु सामान्यचेतन

मायाका साधक है, सत्ता स्फुरण देवै है. औ वृत्तिमैं आरूढ कहिये स्थित, सो चेतन अथवा चेतनसहित वृत्ति ताकी विरोधी जानिये कवित्वके तीन पादनतैं मायाका स्वरूप कह्या.

"मायामैं आभास" इत्यादि चतुर्थ पादसैं ईश्वरका स्वरूप कहे हैं. शुद्धसत्वगुणसहित माया औ मायाका अधिष्ठान चेतन, मायामैं आभास, तीनो मिले ईश्वर कहिये है. सो ईश्वर सर्वज्ञ है. सोई जगत्का हेतु कहिये कारण है. कारण दो प्रकारका होवै है:—एक तो उपादानकारण होवै है. एक निमित्तकारण होवे है. जाका कार्यके स्वरूपमैं प्रवेश होवै, औ जाबिना कार्यकी स्थिति होवै नहीं सो उपादानकारण कहिये है. जैसे मृत्तिका घटका उपादानकारण है. घटके स्वरूपमैं ताका प्रवेश है, और मृत्तिका बिना घटकी स्थिति नहीं. जाका स्वरूपमैं प्रवेश नहीं, किंतु कार्यकूं भिन्न स्थित होयके करै; औ जाके नाशतैं कार्य बिगारै नहीं, सो निमित्तकारण कहिये है. जैसे घटके कुलाल, दंड, चक्र आदिक निमित्त कारण हैं, घटके स्वरूपमैं तिनका प्रवेश नहीं, घटसैं भिन्न कहिये किनारे स्थित होयके घटकी उत्पत्ति करै है, औ उत्पत्ति हुये पाछे कुलाल, दंड चक्र आदिकनके नाशतैं घट बिगरै नहीं. इस रीतिसैं उपादान औ निमित्त दो प्रकारका कारण होवै है.

औ जगत्का उपादान औ निमित्त दोनों प्रकारतैं ईश्वरही कारण है. जैसे एकही मकरी जालेका उपादान कारण औ निमित्तकारण है. औ जो ऐसे कहै:—मकरीका जडशरीर जालेकाउपादानकारण और मकरीके शरीरमैं जो चेतनभाग

सो निमित्तकारण है; यातैं एक ईश्वरकूं निमित्तकारण, औ उपादानकारण माननेमैं कोई दृष्टांत नहीं तौ मकरीकी न्याईं ईश्वरका शरीर जड माया जगत्का उपादानकारण, औ चेतनभाग निमित्तकारण. इस रीतिसैं एकही ईश्वर जगत्का उपादान औ निमित्तकारण है. तामैं मकरीका दृष्टांत औ मुख्यदृष्टांत स्वप्न है. जा समय जीवनके कर्म फल देनेकूं सन्मुख नहीं होवैं, तब प्रलय होवै है. औ जीवके कर्म फल देनेकूं सन्मुख होवैं तब सृष्टि होवै है. इस रीतिसैं जीवकर्मके आधीन सृष्टि है. यातैं ॥ १५४ ॥

जीवका स्वरूप कहै हैः—

दोहा ।

मलिनसत्त्व अज्ञानमैं, जो चेतन आभास ॥
अधिष्ठानयुतजीव सो, करत कर्मफल आस ॥ १५५ ॥

टीकाः--रजोगुण तमोगुणकूं दाब लेवै, सो शुद्धसत्त्व कहिये है. औ रजोगुण तमोगुणसैं आप दबै सो मलिनसत्त्व गुण कहिये है. ता मलिनसत्त्वगुणसहित अज्ञानके अंश जो चेतनका आभास औ अज्ञान औ ताका अधिष्ठान कूटस्थ, तीनों मिले जीव कहिये है. सो जीव कर्म करै है; फलकी आश करै है.

ता जीवके कर्मनके अनुसार ऊंच नीच भोगके निमित्त ईश्वर सृष्टि रचे है. यातैं ईश्वरमें विषमदृष्टि औ क्रूरता नहीं. औ जो ऐसे कहैः--सर्वसैं प्रथम सृष्टिसैं पूर्व कर्म नहीं. प्रथमसृष्टिमैं ऊंच नीच शरीर औ भोग ईश्वरने रचे हैं, यातैं ईश्वर विषमदृष्टि है; सो बनै नहीं. काहेतैं ? संसार अनादि

है. उत्तरउत्तरसृष्टिमैं पूर्वपूर्वसृष्टिके कर्म हेतु हैं. सर्वसैं प्रथम कोई सृष्टि नहीं. यातैं ईश्वरमैं दोष नहीं ॥ १५५ ॥

कवित्त.

जीवनके पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश ।
इच्छा होय जीवभोग जग उपजाइये ॥
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचै तहां ।
शव्द स्पर्श रूप रस गंध गुण गाइये ॥
सत्त्व अंश पंचनको मेलि उपजत सत्त्व ।
रजोगुणअंश मिलि प्राण त्यूं उपाइये ॥
एक एक भूत सत्त्व अंश ज्ञान इंद्री रचै ।
कर्मइंद्रि रजोगुण अंशत लगाइये ॥ १५६ ॥

टीकाः--जब जीवनके कर्म भोग देनेसे उदासीन होवैं तब प्रलय होवै है. प्रलयमैं सर्व पदार्थनके संस्कार मायामैं रहै हैं. यातैं जीवनके कर्मभी जो बाकी रहे थे सो सूक्ष्म होयके माया-मैं रहै हैं. जब कर्म भोग देनेकूं सन्मुख होवैं तब ईश्वरकूं यह इच्छा होवै है:-"जीवनके भोगनिमित्त जगत् उपजाइये."

ऐसी ईश्वरकी इच्छातैं माया तमोगुणप्रधान होवै है. ता तमोगुणप्रधान मायातैं नभ, वायु, तेज, जल, भूमि ये पंचभूत रचे जावै हैं. तिन भूतनमैं क्रमतैं शव्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच गुण होवै हैं. मायातैं शव्दसहित आका-शकी उत्पत्ति औ आकाशतैं वायुकी उत्पत्ति, वायु आका-शका कार्य है; यातैं आकाशका शव्दगुण वायुमैं होवै है; अपना गुण स्पर्श होवै है. वायुतैं तेजकी उत्पत्ति औ तेजमैं आकाशका शव्द, वायुका स्पर्श होवै है, अपना रूप होवै

है. तेजतैं जलकी उत्पत्ति, आकाशका शब्द, वायुका
तेजका रूप, जलमैं होवै है; अपना रस होवै है. जलसैं पृथ्वी
उत्पत्ति औ आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श, तेजका
जलका रस पृथ्वीमैं होवै है, पृथ्वीका गंध होवै है. आ
शमैं प्रतिध्वनिरूप शब्द है. वायुमैं सीसीशब्द, औ
शीतकाठिनतैं विलक्षण स्पर्श है. अग्निरूप तेजमैं भुकभुक
औ उष्णस्पर्श औ प्रकाशरूप है. जलमैं चुलचुलशब्द, शी
स्पर्श, शुक्लरूप, मधुररस हैं. औ क्षार तथा कटु पृथ्वीके
धसैं जल प्रतीत होवै है, जलका रस मधुरही है सो मधु
हरीतकीआदिक भक्षण करके जलपान किये प्रगट होवै
पृथिवीमैं कटकटशब्द, उष्णशीतसैं विलक्षण कठिन
है. श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरित आदि रूप हैं. म
अम्ल, क्षार, कटु, कषाय, तिक्त रस हैं. सुगंध औ दु
दो प्रकारका गंध है. इस रीतिसैं आकाशमें एक, वा
दोय, तेजमैं तीनि, जलमैं चार, पृथ्वीमैं पांच गुण हैं. ति
एक एक अपना है, अधिक कारणके हैं. औ सर्वका
कारण ईश्वर है. तामैं माया औ चेतन दो भाग हैं.
व्यापना मायाका, औ सत्तास्फूर्ति चेतनका सर्वभूतनमैं
कवित्वके दो पादका यह अर्थ है.

पंचभूतनका सत्त्वगुणअंश मिलके सत्त्व कहिये अं
करणकूं उपजावै है. अंतःकरण ज्ञानका हेतु है.
ज्ञानकी उत्पत्ति सत्त्वगुणतैं अंगीकार करी है. यातैं अं
करण भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है. औ पंचभूतनके
पंचज्ञानइंद्रिय; तिन सबका सहायक है. यातैं पंचभूतन
मिले सत्त्वगुणतैं अंतःकरणकी उत्पत्ति कही है. देहके अं

कहिये भीतर है. औ कारण कहिये ज्ञानका साधन है; यातैं अंतःकरण कहिये है. औ भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है; यातैं अंतःकरणका सत्त्वभी नाम है.

अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहै हैं. सो अंतःकरणकी वृत्ति चारि है. पदार्थके भले बुरे स्वरूपकूं निश्चय करनेवाली वृत्ति बुद्धि कहिये है. संकल्पविकल्प-वृत्ति मन कहिये है. चिंतावृत्ति चित्त कहिये है. "अहं" ऐसी अभिमानवृत्ति अहंकार कहिये है.

पंचभूतनके मिले रजोगुणअंशतैं प्राणकी उत्पत्ति होवै है. सो प्राण, क्रियाभेदतैं औ स्थानभेदतैं पांच प्रकारका है. जाका हृदयस्थान, औ क्षुधा पिपासा क्रिया सो प्राण कहिये है.और जाका गुदस्थान,मूत्रमल अधोनयनक्रिया सो अपान. जाका नाभिस्थान और भुक्तपीत अन्नजलकूं पाचनयोग-सम करैं सो समान. जाका कंठस्थान, औ श्वासक्रिया, सो उदान. जाका सर्वशरीरस्थान, रसमेलनक्रिया, सो व्यान. औ कहूं, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, पंचप्राण अधिक कहे हैं. तिनकी उद्गार, निमेष, छींक, जंभाई, मृतशरीर, फु-लावन; ये क्रमतैं क्रिया कही हैं. पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, पंचनके रजोगुणअंशतैं एकएककी क्रमतैं उत्पत्ति कही है. औ अपान, समान, प्राण, उदान, व्यान, इनकी भी पृथिवीआदिक एकएकके रजोगुणअंशतैं उत्पत्ति कही है. सर्वके मिले रजोगुणअंशतैं नहीं. परंतु अद्वैतसिद्धांतमैं यह प्रक्रिया नहीं. काहेतैं ? विद्यारण्यस्वामीने तथा पंचीकरणमैं वार्तिककारने सूक्ष्मशरीरमैं औ पंचकोशनमैं नागकूर्मआदि-कनका ग्रहण किया नहीं औ तिनने अपानआदिक पंचप्रा-

णकी उत्पत्तिभी भूतनके मिले रजोगुणअंशतैं कही है.
एक एकके रजोगुणअंशतैं अपानआदिकनकी उत्पत्ति
असंगत औ सूक्ष्मशरीरमैं नागकूर्मआदिकनका ग्रहण अ
पंचप्राणकाही सूक्ष्मशरीरमैं ग्रहण है. प्राण विक्षेपरूप है,
विक्षेपस्वभाव रजोगुणका है; यातैं भूतनके रजोगुणअं
प्राणकी उत्पत्ति कही है. यह तृतीयपादका अर्थ है.

एक एक भूतका सत्त्वगुण अंश पंच ज्ञानेन्द्रिय
औ एक एकका रजोगुण अंश एक एक कर्मइन्द्रिय
हैं. आकाशके सत्त्वगुणतैं श्रोत्र, वायुके सत्त्वगुणअं
त्वक्, तेजके सत्त्वगुण अंशतैं नेत्र, जलके सत्त्वगुणअं
रसना, पृथिवीके सत्त्वगुणअंशतैं घ्राण होवै है. ये पंचेंद्रि
ज्ञानके साधन हैं. यातैं ज्ञानेंद्रिय कहिये हैं. औ
सत्त्वगुणतैं होवै है, यातैं भूतनके सत्त्वगुणतैं उत्पत्ति
है. श्रोत्रेंद्रिय आकाशके गुणकूं ग्रहण करै है; यातैं श्रो
द्रियकी आकाशतैं उत्पति कही. तैसे जा भूतके गुणकूं
इंद्रिय ग्रहण करै, ता भूतसैं ता इंद्रियकी उत्पत्ति कही

आकाशके रजोगुणअंशतैं वाक्इंद्रियकी उत्पत्ति, वा
रजोगुणअंशतैं पाणिकी; तेजके रजोगुण अंशतैं पाद
जलके रजोगुणअंशतैं उपस्थकी उत्पत्ति होवै है. स्त्रीकी यो
और पुरुषके मेढ्रमैं जो विषयानंदका साधन इंद्रिय
उपस्थ कहिये है. कर्म नाम क्रियाका है. ये पांच इं
क्रियाके साधन हैं, यातैं कर्मेंद्रिय कहिये हैं. क्रिया र
गुणतैं होवै है यातैं भूतनके रजोगुणअंशतैं इनकी उत्प
कही है.

समानसवैयाछंद.

भूत अपंचीकृत औ कारज।
इतनी सूक्षमसृष्टि पिछान ॥
पंचीकृतभूतनतैं उपज्यो।
स्थूल पसारो सारो मान ॥
कारण सूक्षम स्थूलदेह अरु।
पंचकोश इनहीमैं जान।
करि विवेक लखि आतम न्यारो।
मंजइषीकातैं ज्यूं भान ॥ १५७ ॥

टीका:--अपंचीकृत भूत औ तिनका कार्य अंतःकरण, प्राण, कर्मइंद्रिय, ज्ञानइंद्रिय, इतनी सूक्ष्मसृष्टि कहिये है. सूक्ष्मसृष्टिका ज्ञान इंद्रियतैं होवै नहीं. नेत्रनासिकादिक गोलक तौ इंद्रियनके विषय हैं; परंतु तिन गोलकनमैं स्थित जो इंद्रिय, सो काहूके इंद्रियनका विषय नहीं. सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्तिसैं अनंतर ईश्वरकी इच्छातैं स्थूलसृष्टिके निमित्त भूतनका पंचीकरण होता भया.

पंचीकरण दो भांतिसे कह्या हैः—एक एक भूतके दो दो भाग सम होयके एक एक भागके चार चार भाग भये. पांच भूतनका आधा आधा भाग, प्रथम ज्यूंका त्यूं रह्या है; आधे आधे भागके जो चार चार भाग सो पृथक् रहे. चडे अर्धभागनमैं अपने अपने भागकूं छोडके मिलेतैं अर्धभाग सब भूतनमैं अपना औ अर्धभाग अपनेसैं इतर चार भूतनका मिलके पंचीकरण कहावै है.

औ दूसरा यह प्रकार है:—एक एक भूतके दो दो भाग भये, सो सम नहीं; किंतु एक भाग चार अंशका, औ पंचम अंशका एक भाग. इस रीतिसैं न्यून अधिक दो दो भाग भये. तिनमैं सबके अधिक भाग ज्यूंके त्यूं पृथक् स्थित रहे. औ पंचभूतनके न्यून जो पंच भाग, तिनके एक एक भागके पंच पंच भाग करके पृथक् स्थित, अधिक पंचभागनमें एक एक भाग मिलके पंचीकरण होवै है. प्रथम पक्षमें एक भागके चार भाग पृथक् रहे, आधे आधे भागनमैं आपने भागकूं छोडके मिले. और दूसरे पक्षमैं न्यूनभागके पंचभाग पृथक् रहे, अधिकपंचभागनमैं अपने भागसहितमैं मिले. प्रथम पक्षमैं पंचीकृतभूतनमैं अपना अंश अर्ध, और अर्ध अंश औरनका. दूसरे पक्षमैं पंचीकरण कियेतैं अपने अंश इक्कीस औरनके अंश चार. औ दूसरे पक्षकी सुगम रीति यह है:—एक एक भूतके पचीस पचीस भाग होय इक्कीस इक्कीस भाग, और चार चार भाग पृथक् भये, चार चार भागनमैं एक एक भाग इक्कीस इक्कीस भागनमैं मिले, आपने इक्कीस भागनकूं छोडके इस रीतिसे दोप्रकारका पंचीकरण कह्या है. एक एक भूतमैं पांच पांच भूत मिलायके करनेका नाम पंचीकरण है. जिन भूतका पंचीकरण किया है तिनकूं पंचीकृत कहै हैं.

तिन पंचीकृत भूतनतैं इंद्रियनका विषय स्थूलब्रह्मांड होता भया. ता ब्रह्मांडके अंतर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक; ये सात भुवन ऊपरके होते भये. और अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल, महातल ये सात लोक नीचेके होते

भए तिन चतुर्दश लोकनमैं जीवनके भोगयोग्य अन्नादिक औ भोगका स्थान देव मनुष्य पशुआदिक स्थूलशरीर होते भए. यह संक्षेपतैं सृष्टिका निरूपण किया. औ मायाके कार्यका विस्तारसैं निरूपण कियेतैं कोटिब्रह्माकी उमरतैंभी मायाकृत पदार्थनिरूपणका अंत होवै नहीं; यह वाल्मीकीने अनेक इतिहासनतैं वासिष्ठमैं[1] निरूपण किया है. यह सवैयाके दो पादनका अर्थ है.

तृतीय पादका अर्थ यह है:—इनहीमैं कहिये, माया औ ताके कार्यमैं तीन शरीर औ पंच कोश हैं. शुद्धसत्त्वगुणसहित माया ईश्वरका कारणशरीर औ मलिनसत्वगुणसहित अविद्याअंश जीवका कारणशरीर है. उत्तरशरीरके आरंभक पंचसूक्ष्मभूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंचप्राण, पंचकर्मइंद्रिय, पंच ज्ञानइंद्रिय जीवका सूक्ष्मशरीर है. औ सर्व जीवनके सूक्ष्मशरीरही मिलके ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है. संपूर्ण स्थूल ब्रह्मांड ईश्वरका स्थूल शरीर है. औ जीवनके व्यष्टि स्थूल शरीर प्रसिद्ध हैं. इन तीन शरीरनमैंभी पंचकोश हैं. कारणशरीरकूं आनंदमयकोश कहै हैं. विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, तीन कोश सूक्ष्मशरीरमैं हैं. पंचज्ञानेंद्रिय औ निश्चयरूप अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धि विज्ञानमयकोश कहिये है. पंचज्ञानेंद्रिय औ संकल्प विकल्प अंतःकरणकी वृत्ति मन, मनोमयकोश कहिये है. पंचप्राण औ पंचकर्मेंद्रिय प्राणमयकोश है, स्थूलशरीरकूं अन्नमयकोश कहै हैं. इस रीतिसैं तीन शरीरनमैंही पंचकोश हैं. ईश्वरके शरीरसैं ईश्वरके कोश; और जीवके शरीरनमैं जीवके कोश

१ योगवासिष्ठमैं।

हैं. कोश नाम म्यानका है. म्यानकी नाईं पंचकोश आत्माके स्वरूपकूं आच्छादन करै है, यातैं अन्नमयादिक कोश कहिये हैं. अनेक मंदमति पुरुष पंचकोशनमैं जो अनात्मदार्थ हैं तिनमैं किसी एककूं आत्मा मानके मुख्य साक्षी आत्मस्वरूपतैं विमुखही रहै हैं. यातैं अन्नमयादिक आत्मरूपकूं आच्छादन करै हैं. तहां.

कितनेक पामर **विरोचनमतके** अनुसारी, स्थूलशरीररूप अन्नमयकोशकूंही आत्मा कहै हैं. औ यह युक्ति कहै हैं: जामैं अहंबुद्धि होवै सो आत्मा है, सो अहंबुद्धि स्थूल शरीरमैं होवै है. "मैं मनुष्य हूं, मैं ब्राह्मण हूं" ऐसी प्रतीति सर्वकूं होवै है. और मनुष्यपना, ब्राह्मणपना, स्थूलशरीरमैंही है. यातैं स्थूलशरीरही अहंबुद्धिका विषय होनेतैं आत्मा है. किंवा जामैं मुख्यप्रीति होवै सो आत्मा है. स्त्री, पुत्र, धन, पशु, आदिक स्थूलशरीरके उपकारक होवै तौ तिनमैं प्रीति होवै है औ स्थूलशरीरके उपकारक नहीं होवै, तौ प्रीति होवै नहीं. जाके निमित्त अन्यपदार्थमें प्रीति होवै ता स्थूलशरीरमैंही मुख्यप्रीति है. यातैं स्थूलशरीरही आत्मा है. ताकूं वस्त्र, भूषणं, अंजन, मंजन, नानाविध भोजनसैं शृंगार औ पोषणही परमपुरुषार्थ है; यह असुरस्वामी विरोचनका सिद्धांत है.

और कोउ ऐसे कहै हैं:-स्थूलशरीरही आत्मा नहीं किंतु स्थूलशरीरमैं जाके होनेतैं जीवनव्यवहार होवै है, औरजाके नहीं होनेतैं मरणव्यवहार होवै है, सो आत्मा स्थूलशरीरतैं भिन्न है. जीवनमरण इंद्रियनके आधीन है, जितने काल शरीरमैं इंद्रिय होवैं उतने काल जीवन है. औ कोऊ इंद्रिय न

होवै तब मरण कहिये है. औ "मैं देखूं हूं," "मैं सुनूं हूं," "मैं बोलूं हूं" इस रीतिसैं अहंबुद्धिभी इंद्रियनमैं होवै है. यातैं इंद्रियही आत्मा है.

औ हिरण्यगर्भके उपासक प्राणकूं आत्मा कहै हैं, तामैं यह युक्ति कहै हैः—जब मरणसमय मूर्छा होवै है, तब ताके संबंधी पुत्रादिक प्राण शेष होवैं तौ जीवन जानै हैं, औ प्राण शेष न होवै तौ मरण जानै हैं. किंवा शरीरमें नेत्रइंद्रिय नहीं होवै, तौ अंधा शरीर रहे है. श्रोत्रसैं बिना बधिर रहै है. वाक्‌विना मूक रहै है. ऐसे जो इंद्रिय नहीं होवै ताके व्यापारसैं बिनाभी शरीर स्थितही रहै. औ प्राणसैं बिना तिसी क्षणमैं श्मशानके समान अमंगल भयंकर होयके गिरै है. औ "मैं देखूं हूं," "सुनूं हूं" या प्रतीतिसैंभी इंद्रियनतैं भिन्नहीआत्मा सिद्ध होवै है. काहेतैं ? "नेत्रस्वरूप मैं देखूं हूं, श्रवणस्वरूप मैं सुनूं हूं," जो ऐसी प्रतीति होवै तौ इंद्रियरूप आत्मा सिद्ध होवै किंतु "मैं नेत्रवाला देखूं हूं, श्रोत्रवाला मैं सुनूं हूं," ऐसी प्रतीति होवै है. यातैं इंद्रियनतैं भिन्नही आत्मा है. औ सुषुप्तिमैं सर्व इंद्रियनका अभाव है; तौ भी प्राणके होनेतैं जीवनव्यवहार होवै है. यातैं जीवनमरणभी इंद्रियनके अधीन नहीं किंतु स्थूलशरीर औ प्राणके वियोगकूं मरण कहै हैं. यातैं जीवन मरण प्राणकेही अधीन है. सोई आत्मा है.

और कोई ऐसे कहै हैंः—प्राण जड है, यातैं घटकी नाईं अनात्मा है. औ बंधमोक्ष मनके अधीन है. विषयमैं आसक्त जो मन, सो बंधनका हेतु है. विषयवासनारहित मन मोक्षका हेतु है. औ मनके संबंधतैंही इंद्रिय ज्ञानके हेतु हैं. मनके संबंधविना इंद्रियतैं ज्ञान होवै नहीं; यातैं सर्व व्यवहारका हेतु मन है, सोई आत्मा है.

औ क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध यह कहै हैं:-मनका व्य-
पार बुद्धिके अधीन है. काहेतैं ? बुद्धिकाही आकार म-
होवै है. यातैं क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है, म-
नहीं. यह तिनका अभिप्राय है:-संपूर्ण पदार्थ विज्ञान-
केही आकार हैं, सो विज्ञान प्रकाशरूप है. औ क्षणक्षण-
विज्ञानके उत्पत्ति नाश होवै हैं. पूर्वविज्ञानके समान अन्य
विज्ञानकी उत्पत्ति हुयेतैं, पूर्वविज्ञानका नाश होवै है. तैसे
तृतीयविज्ञानकी उत्पत्ति औ द्वितीयविज्ञानका नाश, च-
तुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नाश होवै है. या रीतिसैं नदीके प्र-
वाहकी नाईं विज्ञानकी धारा बनी रहै है. सो विज्ञानकी धारा
दो प्रकारकी है. एक तौ आलयविज्ञानधारा है,औ दूसरी प्रवृ-
त्तिविज्ञानधारा है. "अहं, अहं" ऐसी विज्ञानधाराकूं आलय-
विज्ञानधारा कहै हैं, ताहीकूं बुद्धि कहै हैं. "यह घट है, य-
शरीर है" ऐसी विज्ञानधाराकूं प्रवृत्तिविज्ञानधारा कहै हैं.
आलयविज्ञानधारासैं प्रवृत्तिविज्ञानधाराकी उत्पत्ति होवै है.
मनका स्वरूपभी प्रवृत्तिविज्ञानधारामैं है. यातैं आलयवि-
ज्ञानधारारूप बुद्धिका कार्य है, सो बुद्धिही आत्मा है.
आलस्यविज्ञानधाराविषे प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाध चिंतन-
निर्विशेष क्षणिकविज्ञानधाराकी स्थितिही तिनके मतमें
मोक्ष है. इस रीतिसैं विज्ञानवादी बुद्धिकूंही क्षणिकरू-
औ स्वयंप्रकाशरूप कल्पना करके आत्मा कहै हैं.

औ पूर्वमीमांसाका वार्त्तिककार भट्ट यह कहै है:-विज्ञा-
नकी नाईं क्षणिकरूप आत्मा नहीं, किंतु स्थिरस्वरूप
आत्मा जडस्वरूप औ चेतनरूप है, यह ताका अभिप्राय
है, सुषुप्तिसैं जागके पुरुष यह कहै है:-"मैं जड होयकेसो-

वता भया" यातैं आत्मा जडरूप है. औ जागेकूं स्मृति होवै है, अज्ञातकी स्मृति होवै नहीं. आत्मास्वरूपसैं भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमैं औ साधन नहीं. यातैं स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमैं ज्ञान है, सो आत्माका स्वरूपही है. इस रीतिसैं खद्योतकी नाईं आत्मा प्रकाश औ अप्रकाशरूप है. ज्ञानरूप है, यातैं प्रकाशरूप; औ जड है, यातैं अप्रकाशरूप है. सो प्रकाशरूप औ अप्रकाशरूप आनंदमयकोश है. काहेतैं? सुषुप्तितैं चेतनके आभाससहित जो अज्ञान, ताकूं आनंदमयकोश कहै हैं. तहां आभास तौ प्रकाशरूप औ अज्ञान अप्रकाशरूप है. यातैं भट्टके मतमैं आनंदमयकोशही आत्मा है.

औ शून्यवादी बौद्ध यह कहै हैं:—आत्मा निरंश है, यातैं एक आत्माकूं प्रकाशरूप औ अप्रकाशरूप कहना बनै नहीं. औ खद्योतका तो एक अंश प्रकाशरूप है. औ दूसरा अंश अप्रकाशरूप है. ताकी नाईं अंशरहित आत्माविषे उभयरूप कहना असंगत है. यातैं उभयरूपकी सिद्धिके वास्ते आत्मा अंशसाहितही मानना होवैगा. जो अंशवाले पदार्थ घटादिक हैं, सो उत्पत्ति औ नाशवाले होवै हैं. तैसैं आत्माभी अंशसहित होनैतैं उत्पत्तिनाशवालाही मानना होवैगा. जो उत्पत्तिनाशवाला पदार्थ होवै, सो उत्पत्तिसैं पूर्व औ नाशतैं अनंतर असत् होवै है. जो आदिअंतमैं असत् होवै, सो मध्यमेंभी सत् होवै नहीं, किंतु मध्यमेंभी असत्ही होवै है. यातैं आत्मा असत्रूप है. तैसैं आत्मासैं भिन्नभी संपूर्ण पदार्थ उत्पत्तिनाशवाले हैं, यातैं असत्रूप हैं. इसरीतिसैं आत्मा औ अनात्मा समग्र वस्तु असत्रूप

होनैतैं शून्यही परमतत्त्व है, यह शून्यवादी माध्यमिक बौद्धका मत है.

सोभी अज्ञानरूप आनंदमयकोशकूं प्रतिपादन करै है. काहेतैं ? अज्ञान तीनरूपसैं प्रतीत होवै है. अद्वैतशास्त्रके संस्काररहित जो मूढ, तिनकूं तौ जगत्‌रूप परिणामकूं प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवै. औ अद्वैतशास्त्रके अनुसार युक्तिमें निपुण पंडितनकूं सत्‌असत्‌सैं विलक्षण अनिर्वचनीय रूप अज्ञान औ ताका कार्य जगत् प्रतीत होवै है. ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त जो जीवन्मुक्त विद्वान्, तिनकूं कार्यसहित अज्ञान तुच्छरूप प्रतीत होवै है. तुच्छ, असत्, शून्य, ये तीन शब्द एकही अर्थकूं कहै हैं. इस रीतिसैं जीवन्मुक्तनकूं तुच्छरूप जो प्रतीत होवै अज्ञान, ताके विषे मोहित शून्यवादी परमपुरुषार्थकूं नहीं जानै हैं; किंतु तुच्छरूप आनंदमयकोशकूंही आत्मा कहै हैं.

औ पूर्वमीमांसाका एकदेशी प्रभाकर औ नैयायिक यह कहै हैं:—आत्मा शून्यरूप नहीं. काहेतैं ? जो शून्यरूप आत्मा मानै, ताकूं यह पूछै हैं:—शून्यरूपका तैंने अनुभव किया है, अथवा नहीं ? जो ऐसे कहै:—शून्यरूपका अनुभव नहीं किया; तो शून्य नहीं है, यह सिद्ध हुआ. औ जो कहै शून्यका अनुभव किया है, तौ जानै शून्यका अनुभव किया है, सो आत्मा शून्यसैं विलक्षण सिद्ध होवै है. इस रीतिसैं शून्यतैं विलक्षण आत्मा है. ताके विषे मनके संयोगतैं ज्ञान होवै है. ता ज्ञानगुणतैं आत्मा चेतन कहिये है. औ स्वरूपसैं आत्मा जड है. तैसैं सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, आदिक गुण आत्माविषे हैं, तिनके मतमैंभी आनंदमय

कोशही आत्मा है. औ विज्ञानमयकोशमैं जो बुद्धि है, सो आत्माका ज्ञानगुण कहै हैं. काहेतैं ? आनंदमयकोशमैं चेतन गूढ है, विवेकहीनकूं प्रतीत होवै नहीं. औ प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूं सुषुप्तिमैं ज्ञानहीन मानके स्वरूपसैं जड कहै हैं. यातैं गूढचेतन आनंदमयकोशमैंही तिनकूं आत्मभ्रांति है, औ आत्मस्वरूप नित्यज्ञानकूं तौ जीवमैं मानै नहीं; किंतु अनित्य ज्ञान मानै हैं. सो अनित्य ज्ञान सिद्धांतमैं अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धिरूप है. या रीतिसैं प्रभाकरनैयायिकमतमैं आनंदमयकोश आत्मा है; औ बुद्धि ताका गुण है. तिनका मतभी समीचीन नहीं. काहेतैं ?

ज्ञानसैं भिन्न जो जडवस्तु घटादिक हैं, सो अनित्य हैं. तैसैं आत्माभी ज्ञानस्वरूप नहीं होवै, तौ घटादिकनकी नाईं जड होनेतैं अनित्य होवैगा. जो आत्मा अनित्य होवै तौ मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवैगा. इस रीतिसैं वेदांतवाक्यनमैं विश्वासहीन अनेक बहिर्मुख पंचकोशनमैंही किसी पदार्थकूं आत्मा मानैं हैं. औ मुख्य आत्मस्वरूप साक्षीकूं नहीं जानै हैं. यातैं अन्नमयादिक आत्माके आच्छादक होनैतैं कोश कहिये हैं.

जैसे जीवके पंचकोश जीवके यथार्थस्वरूप साक्षीकूं आच्छादन करै हैं, तैसे ईश्वरके समष्टिपंचकोश ईश्वरके यथार्थस्वरूपकूं आच्छादन करै हैं. काहेतैं ? ईश्वरका यथार्थस्वरूप तौ तत्पदका लक्ष्य है. ताकूं त्यागके कोई तौ मायारूप आनंदमयकोशविशिष्ट जो अंतर्यामी तत्पदका वाच्य, ताकूंही परमतत्त्व कहै हैं. तैसैं हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, देवी, सूर्यसैं, आदि लेके असि,

कूदाल, पीपल, अर्क, वंशपर्यंत पदार्थनमैं परमा
भ्रांति करै है. यद्यपि सर्व पदार्थनमैं लक्ष्यभाग प
त्मासैं भिन्न नहीं, तथापि तिस तिस उपाधिसहितकूं
परमात्मा मानै हैं सो तिनकूं भ्रांति है. या री
पंचकोशनतैं आवृत जो जीवईश्वरका परमार्थस्व
तासैं विमुख होयके देहादिकनमैं आत्मभ्रांति
पुण्यपापकर्म करै है. औ अंतर्यामीसैं आदि लेके वं
पर्यंतकूं ईश्वररूप मानके आराधना करके सुख चाहै
जैसी उपाधिका आराधन करै हैं, ताके अनुसारही ति
फल होवै है. काहेतैं? कारण सूक्ष्म स्थूल प्रपंच सारा ईश्व
तीन शरीरनके अंतर्भूत है, तामैं उपासनाके अनुसार फ
सर्वसैंही होवै है, परंतु ब्रह्मज्ञानबिना मोक्ष होवै नहीं.
मोक्षकी इच्छा होवै तौ विवेकतैं जीव ईश्वरके स्वरू
पंचकोशनतैं पृथक् करै.

दृष्टांतः–जैसे मुंज औ इषीका कहिये तूली मिली है
है, तिनकूं तोडके पृथक् करै हैं; तैसैं विवेकतैं जीव ईश्व
स्वरूपकूं पंचकोशनतैं पृथक् जानैं यह सवैयाका अर्थ है।

सो विवेकका प्रकार दिखावे हैं:–

समानसवैया.

स्थूलदेहको भान न होवै ।
स्वप्नमाहिं लखि आतमज्ञान ॥
सूक्ष्मज्ञान सुषुप्तिसमय नहिं ।
सुखस्वरूप व्है आतम भान ॥
भासै भय समाधिअवस्था ।

निरावरण आतम न अज्ञान ॥
ऐसे तीन देह व्यभिचारी ।
आतम अनुगत न्यारो जान ॥ १५८ ॥

टीकाः—स्वप्नअवस्थामाहीं स्थूलदेहका भान होवै नहीं औ आत्माका भान होवै है. तैसैं सुषुप्तिअवस्थामैं सूक्ष्मशरीरका ज्ञान होवै नहीं, औ सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूप भान कहिये प्रतीत होवै है. सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैं नहीं होवै, तौ "मैं सुखसैं सोवता भया" ऐसी स्मृति जागके नहीं हुई चाहिये; यातैं सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैं होवै है. सो सुख विषयजन्य तौ सुषुप्तिमैं है नहीं; किंतु आत्मस्वरूपही है. सो आत्मा स्वयंप्रकाश है. यातैं सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपतैं सुषुप्तिमैं भासै है. औ निदिध्यासनका फल निर्विकल्पसमाधिअवस्थामैं निरावरण कहिये अज्ञानकृत आवरणरहित आत्मा भासै है, औ न अज्ञान कहिये कारणशरीर अज्ञान नहीं भासै है, ऐसे तीन देह व्यभिचारी हैं. एक अवस्थाकूं छोड़के दूसरी अवस्थामैं भासै नहीं. आत्मा अनुगत है, सर्व अवस्थामैं भासै है, यातैं व्यापक है. या विवेकतैं तीन शरीरनतैं आत्माकूं न्यारो जान. स्थूलशरीर तौ अन्नमयकोश है, औ कारणशरीर आनंदमयकोश है. औ सूक्ष्मशरीरमैं प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, तीन कोश हैं, यातैं तीन शरीरनके विवेकतैं पंचकोशकाही विवेक होवै है. जैसैं जीवका स्वरूप पंचकोशनतैं पृथक् है, तैसैं ईश्वरका स्वरूपभी समष्टिपंचकोशनतैं पृथक् है. औ चतुर्थतरंगमैं चतुर्विध आकाशके दृष्टांतसैं जीव ईश्वरके लक्ष्यस्वरूपका विवेक विस्तारसैं कर आये हैं. औ उत्तरतरंगमें अस्तिभातिप्रियरूपके निरूपणमैं, तथा

महावाक्यनके अर्थनिरूपणमैं आत्माका परमार्थस्वरूप
पादन करैंगे. यातैं इहां संक्षेपतैंही आत्मविवेक कह्या
इस रीतिसैं,

पंचकोशनतैं आत्माकूं न्यारा जाननेसैंभी कृतकृ
होवै नहीं, किंतु जीवब्रह्मके अभेदनिश्चयके वास्ते फि
विचार कर्तव्य रहै है ॥ १५८ ॥

यातैं कर्तव्यका अभावरूप कृतकृत्यताकी सिद्धि
महावाक्यका अर्थ उपदेश करै हैं:—

समान सवैया।

पंचकोशतैं आतम न्यारो।
जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप ॥
तातैं भिन्न जु दीखै सुनिये।
सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप ॥
मिथ्याअधिष्ठान न विगारै।
स्वप्नभीख न दरिद्री भूख ॥
सब कछु कर्त्ता तऊ अकर्त्ता ॥
तव अस अद्भुतरूप अनूप ॥ १५९ ॥

टीका:—हे शिष्य! पंचकोशतैं, आत्माकूं न्यारा जानके
कहिये सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, यह जानौ. याके वि

ऐसी शंका होवै है:—

आत्मा पुण्यपाप करै है, तातैं स्वर्ग-नरक औ मृत्यु
लोकमैं नानाप्रकारके सुखदुःख भोगै है, ताकी ब्रह्म
एकता बनै नहीं.

ताका समाधानः-

"तातैं भिन्न जु दीखै" इत्यादि तीनि पादनतैं कहै हैः—ता ब्रह्मरूप आत्मासैं भिन्न जो दीखै है, औ सुनिये है शास्त्रसैं स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, सो संपूर्ण मिथ्या भ्रम है; ऐसे मानो. औ मिथ्या वस्तु अधिष्ठानकूं बिगारै नहीं. जैसे स्वप्नकी मिथ्या भीख कहिये भिक्षा मांगनेतैं भूप दरिद्री नहीं होवै है. औ मरुस्थलके मिथ्याजलतैं भूमि गीली होवै नहीं. मिथ्यासर्पतैं रज्जु विषसहित होवै नहीं. यातैं सब कछु कर्त्ता कहिये संपूर्ण मिथ्या शुभ अशुभ क्रियाका कर्त्ता है, तऊ कहिये तौभी अकर्त्ता कहिये परमार्थसैं कर्त्ता नहीं. ऐसा तव कहिये तेरा अद्भुत आश्चर्यरूप, अनूप कहिये उपमारहित है. याका भाव यह हैः--ब्रह्मसैं अभिन्न तेरे स्वरूपविषे स्थूलसूक्ष्मशरीर, औ तिनकी शुभ अशुभ क्रिया औ ताका फल जन्म-मरण, स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख, संपूर्ण अविद्यासैं कल्पित है. ता कल्पितसामग्रीसैं तेरा ब्रह्मभाव बिगरै नहीं. यातैं ज्ञानतैं प्रथमभी आत्मा ब्रह्मस्वरूपही है. ताके विषे तीन कालमैं शरीर औ ताके धर्मनका संबंध नहीं. किंतु आत्मा सदाही नित्य मुक्त है. ताका ब्रह्मसैं कभीभी भेद नहीं ॥ १५९ ॥

जो ऐसे कहैः--आत्मा सदाही नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप होवै, तौ श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवैंगे.

ताका समाधान.

इंदव छंद ।

नाहिं खपुष्पसमान प्रपंच तु ।
ईश कहां करता जु कहावे ॥

साक्ष्य नहीं इमि साक्षिस्वरूप न ।
दृश्य नहीं दृक काहि जनावै ॥
बंधहु होइ तु मोक्ष बनै अरु ।
होय अज्ञान तु ज्ञान नशावै ॥
जानि यही करतव्य तजै सब ।
निश्चल होतहि निश्चल पावै ॥१६०॥

टीकाः—जीवन्मुक्त विद्वान्की दृष्टिमैं अज्ञान औ ताका कार्य तुच्छ है. सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावै हैं:— हे शिष्य ! यह प्रपंच खपुष्पसमान कहिये आकाशके फूल ... नाईं है, यातैं ताका कर्त्ता ईश्वरभी नहीं है. साक्षीका विषय अज्ञानादिक साक्ष्य कहिये है, सो साक्ष्य नहीं; यातैं साक्षीभी नहीं. तैसैं दृश्यका प्रकाशक दृक् कहिये है औ प्रकाशनेयोग्य देहादिक दृश्य कहिये है. सो देहादिक दृश्य है नहीं; यातैं दृक्भी नहीं. यद्यपि केवल कूटस्थ चेतन साक्षी और दृक् कहै हैं, ताका निषेध बनै नहीं, तथापि साक्ष्यकी अपेक्षातैं साक्षी नाम, औ दृश्यकी अपेक्षा दृक् नाम है. साक्ष्य औ दृश्यका अभाव है. यातैं साक्षी औ दृक्, नामका निषेध करै हैं; स्वरूपका नहीं. ... बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै, बंध नहीं, यातैं मोक्षभी नहीं. औ अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसैं नाश होवै; अज्ञान है नहीं, यातैं ताका नाशक ज्ञानभी नहीं. ... जानके कर्तव्य तजै, कहिये "मेरेकूं यह करनेयोग्य है" ... बुद्धिकूं त्यागै. काहेतैं ? यह लोक तथा परलोक तौ तुच्छ है, तिनके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं. आत्मामैं बंध नहीं, ...

मोक्षके निमित्तभी कर्तव्य नहीं. या रीतिसैं आत्माकूं नित्यमुक्त ब्रह्मरूप जानके जब निश्चल होवै, सब कर्त्तव्य त्यागै; तब निश्चल कहिये अक्रियब्रह्मस्वरूप विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवै. याका अभिप्राय यह है:-

यद्यपि आत्मा, ज्ञानसैं प्रथमभी नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूपही है, परंतु ज्ञानसैं पूर्व आत्माकूं कर्ता भोक्ता मिथ्या मानके सुखप्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिके वास्ते अनेक साधन करै हैं तासैं क्लेशकूंही प्राप्त होवै हैं. जब उत्तम आचार्य मिलै तौ वेदांतवाक्यनका उपदेश करै है, तिन वेदांतवाक्यनके श्रवणतैं ऐसा ज्ञान होवै है:--"मैं कर्ता भोक्ता नहीं, किंतु मैं ब्रह्मस्वरूप हूं, यातैं मेरेकूं किंचित्भी कर्तव्य नहीं" ऐसा जाननाही श्रवणादिकनका फल है. औ ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांतश्रवणका फल नहीं. काहेतैं, ब्रह्म अपना स्वरूप है; यातैं नित्यप्राप्त है ॥ १६० ॥

दोहा ।

येहि चिह्न अज्ञानको, जो मानै कर्त्तव्य ॥
सोई ज्ञानी सुघर नर, नहिं जाकूं भवितव्य ॥१६१॥

टीकाः--जो कर्त्तव्य मानै सो अज्ञानका चिह्न है, औ जाकूं भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहै है, सो नर ज्ञानी कहिये है ॥ १६१ ॥

इंद्रवज्रछंद.

एक अखंडित ब्रह्म असंग ।
अजन्म अदृश्य अरूप अनामैं ॥

मूल अज्ञान न सूक्षम थूल ।
समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामें ॥
ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ न ।
तैजस विश्वस्वरूप न जामें ॥
भोग न योग न बंध न मोक्ष ।
नहीं कछु वामें रु है सब वामें ॥ १६२ ॥

जागृतमें जु प्रपंच प्रभासत ।
सो सब बुद्धिविलास बन्यो है ॥
ज्यूं सुपनेमहिं भोग्य न भोग ।
तऊ इक चित्र विचित्र जन्यो है ॥
लीन सुषूपतिमें मति होतहि ।
भेद भगै इकरूप सुन्यो है ॥
बुद्धि रच्यो जु मनोरथ मात्र सु ।
निश्चल बुद्धिप्रकाश भन्यो है ॥ १६३ ॥

समानसवैया छंद.

जाके हियं ज्ञानउजियारो ।
तम अंधियारो खरो विनाश ॥
सदा असंग एकरस आतम ।
ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकाश ॥
ना कछु भयो न है नहिं व्है है ।
जगतमनोरथमात्र विलास ॥

ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत ।
ज्यूं ज्ञानीके कोउ न आस ॥ १६४ ॥

देखै सुनै न सुनै न देखै ।
सब रस ग्रहै रु लेत न स्वाद ॥
सूंघि परसि परसै न न सूंघै ।
बैन न बोलै करै विवाद ॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै ।
चलै नहीं अरु धावत पाद ॥
भोगै युवति सदा संन्यासी ।
शिष लखि यह अद्भुतसंवाद ॥१६५॥

याका अभिप्राय कहै हैं:--

समानसवैया छंद.

निजविषयनमैं इंद्रिय वर्तें ।
तिनतें मेरो नाहीं संग ॥
मैं इंद्रिय नहिं मम इंद्रिय नहिं ।
मैं साक्षी कूटस्थ असंग ॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इंद्रिय ।
मोकूं लगै न रंचक रंग ॥
यह निश्चय ज्ञानीको जातें ।
कर्त्ता दीखै करै न अंग ॥१६६॥

---

१ मेरी

हे अंग प्रिय, अन्य अर्थ स्पष्ट ॥ १६६ ॥

इस रीतिसैं आचार्यनें शिष्यकूं गोप्यतत्त्वका उपदे किया. तौभी शिष्यका मुख अत्यंत प्रसन्न नहीं देखके ग जान्याः किः--शिष्य कृतार्थ नहीं हुवा. जो कृतार्थ होता याका मुख प्रसन्न होता. यातैं फेर स्थूलरीतिसैं उपदेश करने

लयचिंतन कहै हैंः--

समानसवैया छंद.

माटीको कारज घट जैसैं ।
माटी ताके बाहिरमाहिं ॥
जलतें फेन तरंग बुदबुदा ।
उपजत जलतें जुदे सु नाहिं ॥
ऐसे जो जाको है कारज ।
कारणरूप पिछानहु ताहि ॥
कारण ईश सकलको " सो मैं "
लयचिंतन जानहु विधि याहि ॥१६७॥

टीकाः—जैसे माटीके कारजके बाहिर भीतर माटी है यातैं माटीका सर्व कार्य माटीस्वरूपही है. फेनआदिक जल कार्य जलस्वरूप हैं. ऐसे जो जाका कार्य है, सो ता कार स्वरूपसैं भिन्न नहीं; किंतु कार्यकारणही स्वरूप है. औ कल प्रपंचका मूलकारण ईश्वर है. यातैं सर्वकार्यप्रपंच ईश्व स्वरूपसैं भिन्न नहीं; किंतु सर्वप्रपंचका स्वरूप ईश्वरही है " सो ईश्वर मैं हूं " या रीतिसैं लयचिंतन जानके तूं क

लयचिंतनका संक्षेपतैं यह क्रम हैः—स्थूलब्रह्मांड सारा पंचीकृतभूतनका कार्य है, तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वी स्वरूप, और जलका कार्य जलस्वरूप, या रीतिसैं जा भूतनका जो कार्य सो ताकाही स्वरूप है. इस रीतिसैं सारा स्थूलब्रह्मांड पंचीकृत भूतस्वरूप है. तैसैं पंचीकृत भूतभी अपंचीकृत भूतनके कार्य हैं. यातैं अपंचीकृत स्वरूपही पंचीकृत भूत हैं, भिन्न नहीं. और अंतःकरणआदिक सूक्ष्म सृष्टिभी, अपंचीकृत भूतनका कार्य होनैतैं अपंचीकृत भूत स्वरूप हैं, तामैं अंतःकरण सारे भूतनके सत्त्वगुणके कार्य हैं यातैं सत्वगुणस्वरूप हैं और भूतनके रजोगुणअंशके कार्य प्राण रजोगुणस्वरूप हैं, गुदा इंद्रिय पृथ्वीके रजोगुणअंशका कार्य, सो पृथ्वीका रजोगुणस्वरूप, घ्राणइंद्रिय पृथ्वीके सत्त्व गुणका कार्य,सो सत्त्वगुणस्वरूप.ऐसे रसना औ उपस्थ जलके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप. नेत्र और पाद तेजके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप. त्वक् और पाणि वायुके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप श्रोत्र और वाक् आकाशके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप. या रीतिसैं सारी सूक्ष्मसृष्टि अपंचीकृत भूतस्वरूप है.

यह चिंतन करके अपंचीकृतभूतनकाभी लयचिंतन करै. पृथ्वी जलका कार्य है, यातैं जलस्वरूप है. तेजका कार्य जल, तेजस्वरूप है. तेज वायुका कार्य होनेतैं वायुस्वरूप है. आकाशका कार्य वायु, आकाशरूप है. तमोगुणप्रधान प्रकृतिका कार्य आकाश, प्रकृतिस्वरूप है.

औ मायाकी अवस्थाविषेही प्रकृति है,यातैं प्रकृति मायास्वरूप है. एकवस्तुके प्रधान, प्रकृति, माया, अविद्या, अज्ञान ये नाम हैं. सर्वकार्यकूं अपनेमैं लीन करके प्रलयमें स्थित

उदासीनस्वरूपकूं प्रधान कहै हैं. औ सृष्टिके उपादान योग्य तमोगुणप्रधानस्वरूपकूं प्रकृति कहै हैं. जैसे देशका लादिक सामग्रीविना दुर्घट पदार्थकी इंद्रजालसैं उत्पत्ति होवै है, तहां इन्द्रजालकूं माया कहै हैं, तैसैं असंग अद्वितीय ब्रह्ममैं इच्छादिक दुर्घट हैं. तिनकूं करै है यातैं माया कहै है. स्वरूपकूं आच्छादन करै हैं, यातैं अज्ञान कहै ब्रह्मविद्यातैं नाश होवै है, यातैं अविद्या कहै हैं और स्वतंत्र कभीभी रहै नहीं, किंतु चेतनके आश्रितही है, यातैं शक्ति भी कहै हैं. इस रीतिसैं प्रकृतिआदिक प्रधानकेही भेद हैं यातैं प्रधानरूप हैं, सो प्रधान ब्रह्मचेतनकी शक्ति है. जैसे पुरुषमैं सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुषसैं भिन्न नहीं तैसैं चेतनमैं प्रधानरूप शक्ति ब्रह्मचेतनसैं भिन्न नहीं. याप्रकारतैं सर्व अनात्मपदार्थनका ब्रह्मविषे लयचिंतन करके "सो अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं" यह चिंतन करै.

जाकूं महावाक्यविचार कियेतैंभी बुद्धिकी मंदतादिक किसी प्रतिबंधतैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं; ताकूं यह लय चिंतनरूप ध्यान कह्या है. ध्यान और ज्ञानका इतना भेद है:—ज्ञान तौ प्रमाण और प्रमेयके अधीन है, विधि औ पुरुषकी इच्छाके अधीन नहीं; औ ध्यान, विधिके और पुरुषकी इच्छा और विश्वास तथा हठके अधीन है. जैसे प्रत्यक्षज्ञानमैं प्रमाण नेत्र और प्रमेय घटादिक, तहां नेत्रका औ घटका संबंध हुयेतैं पुरुषकी इच्छाविनाभी घटका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है. भाद्रपद शुद्ध चतुर्थीके दिन चंद्र दर्शनका निषेध है, विधि नहीं, औ पुरुषकूं यह इच्छा होवै है:-"मेरेकूं आज चंद्रदर्शन नहीं होवै," तौभी किसी रीतिसैं नेत्रप्रमाणका

प्रमेयचंद्रसैं संबंध होय जावै, चंद्रका प्रत्यक्षज्ञान अवश्यही होवै है. इस रीतिसैं प्रमाणप्रमेयके अधीन ज्ञान है, विधि औ इच्छाके अधीन नहीं. औ शालिग्राम विष्णुरूप है, यह ध्यान करै, ताकूं उत्तम फल प्राप्त होवै है. तहां शास्त्रप्रमाणसैं विष्णुकूं तौ चतुर्भुजमूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी-सहित जानै हैं, और नेत्रप्रमाणतैं शालिग्रामकूं शिला जानै हैं. तथापि विधिविश्वासइच्छातैं "शालिग्राम विष्णु है;" यह ध्यान होवै है, परंतु सो ध्यान नानाप्रकारका है. कहूं तौ अन्यवस्तुका अन्यरूपसैं ध्यान, जैसे शालिग्रामका विष्णुरू-पसैं ध्यान; याकूं प्रतीकध्यान कहै हैं. और वैकुंठलोकवासी विष्णुका शंखचक्रादिकसंहित चतुर्भुजमूर्तिरूपसैं ध्यान है, तहां अन्यका अन्यरूपसैं ध्यान नहीं; किंतु ध्येयरूपके अनु-सार यह ध्यान है. वैकुंठवासी विष्णुका स्वरूप प्रत्यक्ष तौ है नहीं; केवलशास्त्रसैं जानिये है. औ शास्त्रनैं शंखचक्रादि-कसहितही विष्णुका स्वरूप कह्या है. यातैं ध्येयस्वरूपके अनुसारही यह ध्यान है. विधिविश्वासइच्छाविना ध्यान होवै नहीं. "यह उपासना करै" ऐसा पुरुषका प्रेरक वचन विधि कहिये है. ता वचनमैं श्रद्धाकूं विश्वास कहै है, औ अंतःकरणकी कामनारूप रजोगुणकी वृत्ति इच्छा कहिये है. ध्यानके हेतु यह तीन हैं, ज्ञानके नहीं. औ ध्यान हठसैं होवैहै. ज्ञानमैं हठकी अपेक्षा नहीं. काहेतैं? निरंतर ध्येया-कार चित्तकी वृत्तिकूं ध्यान कहै हैं. तहां वृत्तिमैं विक्षेप होवै तौ हठसैं वृत्तिकी स्थिति करै. औ ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्तिसैं तत्काल आवरणभंग हुयेतैं वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नहीं, यातैं हठकी अपेक्षा नहीं. वैकुंठवासी चतुर्भुज विष्णुके ध्यानकी

नाईं "मैं ब्रह्म हूं" यह ध्यानभी ध्येयके अनुसार है; नहीं. परंतु यह अहंग्रहध्यान है. ध्येयस्वरूपका अपनेसैं दकरके चिंतन, अहंग्रहध्यान कहिये है. जा पुरुषकूं क्षज्ञान नहीं होवै, औ वेदकी आज्ञारूप विधिमैं विश्वास के हठतैं निरंतर "मैं ब्रह्म हूं" या वृत्तिकी स्थितिरूप ध्यान करै, ताकूंभी ज्ञान प्राप्त होयके मोक्षकीप्राप्ति होवैहै।

और रीतिसैं अहंग्रहउपासना कहै हैं:—

सवैया छंद।

ध्यान अहंग्रह प्रणवरूपको।
कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार ॥
अक्षर प्रणव ब्रह्म मम रूपसु
यूं अनुलव निजमति गति धार ॥
ध्यानसमान आन नहिं याके।
पंचीकरणप्रकार विचार ॥
जो यह करत उपासन सो मुनि।
तुरित नशै संसार अपार ॥१६८॥

टीकाः—हे शिष्य! प्रणवरूप कहिये ओंकारस्वरूप अहंग्रहध्यान मांडूक्य प्रश्न आदिकश्रुतिके अनुसार सुरे राचार्यने कह्या है; सो तूं कर. ताका संक्षेपतैं प्रकार हैः—प्रणवअक्षर ब्रह्मस्वरूप है. "सो प्रणवरूप ब्रह्म हूं" या रीतिसैं अनुलव कहिये क्षणमात्र अंतराय निजमतिकी गति कहिये वृत्ति धार, स्थित कर. याके मान आन ध्यान नहीं है. औ या ध्यानका प्रकार

विशेष रीति सुरेश्वरकृत पंचीकरण नाम ग्रंथसैं विचार-चतुर्थ पाद स्पष्ट. यद्यपि प्रणवउपासना बहुत उपनिषद्नमैं हैं, तथापि मांडूक्यउपनिषद्मैं विशेष है. ताके व्याख्यानमैं भाष्यकार औ आनंदगिरिने ताकी रीति स्पष्ट लिखी है. सोई रीति वार्तिककारने पंचीकरणमैं लिखी है; तथापि तिन ग्रंथनके विचारनमैं जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, तिनके अर्थ प्रणवउपासनाकी रीति हम लिखै हैं--दो प्रकारसैं प्रणवका चिंतन उपनिषद्नसैं कह्या है. एक तौ परब्रह्मरूपतैं कह्या है. निर्गुण ब्रह्मकूं परब्रह्म कहै हैं. सगुण ब्रह्मकूं अपरब्रह्म कहै हैं. परब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन करै, सो मोक्षकूं प्राप्त होवै है. और अपरब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन करै सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै है. ऐसे निर्गुण सगुणभेदतैं प्रणवउपासना दो प्रकारकी है. तामैं,

निर्गुण उपासनाकी रीति लिखै हैं; सगुणकी नहीं. काहेतैं ? जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवै ताकूं निर्गुणउ-पासनातैंभी कामनारूप प्रतिबंधकतैं ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष होवै नहीं. किंतु ब्रह्मलोककीही प्राप्ति होवै है. तहां हिरण्यगर्भके समान भोगनकूं भोगके ज्ञान होवै, तब मोक्ष होवै. और जाकूं ब्रह्मलोककी कामना नहीं होवै, ताकूं इस लोकमैंही ज्ञान होयके मोक्ष होवै है. इस रीतिसैं सगुणउपासनाका फलभी निर्गुणउपासनाके अंतर्भूत है. यातैं निर्गुणउपासनाका प्रकार कहै हैं:--जो कछु कारणका-र्यवस्तु है, सो ओंकारस्वरूप है. यातैं सर्वरूप ओंकार है. सर्व पदार्थनमैं नाम और रूप दो भाग हैं. तहां रूपभाग अ-

पनेरूनामभागसैं न्यारा नहीं. किंतु नामस्वरूपही रूप
है. काहेतैं ? पदार्थका रूप कहिये आकार.
नामसैं निरूपण करके ग्रहण वा त्याग होवै है, नाम
नेबिना केवल आकारतैं व्यवहार सिद्ध होवै नहीं.
नामही सार है. औ आकारके नाश हुयेतैंभी नाम
रहै हैं. जैसे घटका नाश हुयेतैं मृत्तिका शेष रहे है.
घट मृत्तिकासैं पृथक् वस्तु नहीं, मृत्तिकास्वरूप है.
आकारका नाश हुयेतैं मृत्तिकाकी नाईं शेष रहे जो
तासैं आकार पृथक् नहीं; नामस्वरूपही आकार है.
जैसैं घटशरावादिकनमैं मृत्तिका अनुगत हैं और घट
वादिक परस्पर व्यभिचारी हैं यातैं घटशरावादिक मि
हैं तिनमैं अनुगत मृत्तिका सत्य है, तैसैं घट आका
नेक हैं. तिन सबका "घट" यह दो अक्षर नाम ए
सो आकार परस्पर व्यभिचारी, औ सर्वघटका आका
नाम एक अनुगत है. यातैं मिथ्या आकार सत्य
पृथक् नहीं. इस रीतिसैं सर्व पदार्थनके आकार
अपने नामसैं भिन्न नहीं, किंतु नामस्वरूपही आका
सो सारे नाम ओंकारसैं भिन्न नहीं. किंतु ओंकार
पंही नाम हैं. काहेतैं ? वाचक शब्दकूं नाम कहै हैं.
लोकवेदके सारे शब्द ओंकारसैं उत्पन्न हुये हैं, यह
प्रसिद्ध है. संपूर्ण कार्य कारणस्वरूप होवै हैं, यातैं ओं
कार्य जो वाचक शब्दरूप नाम, सो ओंकारस्वरूप है.
रीतिसैं रूपभाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नामस्व
औ सर्व नाम ओंकारस्वरूप हैं. यातैं सर्वस्वरूप ओंका

जैसे सर्वस्वरूप ओंकार है, तैसें सर्वस्वरूप ब्रह्म है; यातैं ओंकार ब्रह्मरूप है. किंवा ओंकार ब्रह्मका वाचक है, ब्रह्म वाच्य है. वाच्यका औ वाचकका अभेद होवै है यातैंभी ओंकार ब्रह्मरूप है. औ विचारदृष्टितैं जो अक्षर ब्रह्मविषे अध्यस्त है, ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है. अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानतैं न्यारा होवै नहीं. यातैंभी ओंकार ब्रह्मस्वरूप है. यातैं ओंकारकूं ब्रह्मरूपकरके चिंतन करै.

ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासैंभी अभेद चिंतन करै. काहेतैं ? आत्माका ब्रह्मसैं मुख्य अभेद है. औ ब्रह्मके चार पाद हैं; तैसे आत्माकेभी चार पाद हैं. पाद नाम भागका हैं, ताहीकूं अंशभी कहै हैं. विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर औ तत्पदका लक्ष्य ईश्वरसाक्षी ये चार पाद ब्रह्मके हैं. विश्व, तैजस, प्राज्ञ औ त्वंपदका लक्ष्य जीवसाक्षी; ये चार पाद आत्माके हैं. जीवसाक्षीकूंही तुरीय कहै हैं.

समष्टिस्थूलप्रपंचसहित चेतन विराट् कहिये है. व्यष्टिस्थूलअभिमानी विश्व कहिये है. विराट्की औ विश्वकी उपाधि स्थूल है; यातैं विराट्रूपही विश्व है. विराट्तैं न्यारा नहीं. विराटरूप विश्वके सात अंग हैं. स्वर्गलोग मूर्ध है; सूर्य नेत्र हैं; वायु प्राण है; आकाश धड़ है; समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान है; पृथिवी पाद है; जा अग्निमैं होम करिये सो अग्नि मुख है. ये सात अंग विश्वके कहै हैं. मांडूक्यमैं यद्यपि स्वर्गलोकादिक विश्वके अंग बनै नहीं, तथापि विराट्के अंग हैं. ता विराट्सैं विश्वका अभेद है. यातैं विश्वके अंग कहै हैं.

तैसे विराट् विश्वके उन्नीस मुख हैं:—पंच प्राण, पं कर्मइंद्रिय, पंच ज्ञानइंद्रिय, चार अंतःकरण; ये उ मुखकी नाईं भोगके साधन हैं; यातैं मुख कहिये हैं. इ उन्नीसतैं स्थूलशब्ददिकनकूं बाह्यवृत्तिकरके जागृत अव विषे भोगै है, यातैं विराटरूप विश्व, स्थूलका भोक्ता बाह्यवृत्ति कहिये है; औ जागृत अवस्थावाला कहिये है

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं,तिनविषे श्रो दिक इंद्रिय, औ अंतःकरण चार ये चतुर्दश अपने अ विषय, औ अपने अपने देवताकी सहाय चाहै हैं. देव विषयकी सहायबिना केवल इनतैं भोग होवै नहीं. पंच प्राण औ चतुर्दश त्रिपुटी विराट्रूप विश्वके मुख कहि हैं. तिनके समुदायका नाम त्रिपुटी है.

सो त्रिपुटी इस रीतिसैं कही है:—श्रोत्रइंद्रिय अध्या है औ ताका विषय शब्द अधिभूत है; दिशाका अभिमा देवता अधिदैव है. या प्रकरणमैं क्रियाशक्तिवाले औ ज्ञा शक्तिवाले इंद्रिय औ अंतःकरण अध्यात्म कहिये हैं, तिन विषय अधिभूत कहिये हैं, औ तिनके सहायक देव अधिदैव कहिये हैं. त्वचा इंद्रिय अध्यात्म है, ताका वि स्पर्श अधिभूत है, वायु तत्त्वका अभिमानी देवता अधिदै है. नेत्रइंद्रिय अध्यात्म है, रूप अधिभूत है, सूर्य अधिदै है, रसनाइंद्रिय अध्यात्म है, रस अधिभूत है, वरुण अधिदै है, घ्राण इंद्रिय अध्यात्म है, गंध अधिभूत है, अश्विनी कुमार अधिदैव हैं.औ वार्त्तिककार सुरेश्वराचार्यनै पृथि का अभिमानी देवता घ्राणका अधिदैव कह्या है, सोभी है. काहेतैं ? पृथिवीसैं घ्राणकी उत्पत्ति है, यातैं पृथि

अधिदैव कह्या है. औ सूर्यकी वडवाकी नासिकातैं अश्वि-
नीकुमारकी उत्पत्ति कही है. यातैं नासिकाका अधिदैव कहूं
अश्विनीकुमारही कहै हैं. वाकइंद्रिय अध्यात्म है, वक्तव्य
अधिभूत है, अग्निदेवता अधिदैव है. हस्तइंद्रिय अध्यात्म
है, पदार्थका ग्रहण अधिभूत है; इंद्र अधिदैव है. पादइंद्रिय
अध्यात्म, गगन अधिभूत,विष्णु अधिदैव है, गुदाइंद्रिय अ-
ध्यात्म, मलका त्याग अधिभूत; यम अधिदैव है.उपस्थइंद्रिय
अध्यात्म, ग्राम्यधर्मके सुखकी उत्पत्ति अधिभूत है; प्रजा-
पति अधिदैव है.मन अध्यात्म है,मननका विषय अधिभूत है;
चंद्रमा अधिदैव है. बुद्धि अध्यात्म है, बोद्धव्य अधिभूत है;
बृहस्पति अधिदैव है. ज्ञानका विषय बोद्धव्य कहिये है.
अहंकार अध्यात्म है, अहंकारका विषय अधिभूत है; रुद्र
अधिदैव है. चित्त अध्यात्म है, चिंतनका विषय अधिभूत
है; क्षेत्रज्ञ जो साक्षी सो अधिदैव है. ये चतुर्दश त्रिपुटी औ
पंच प्राण ये उन्नीस विराट्रूप विश्वके मुख हैं.जैसे विराट्तैं
विश्वका अभेद है, तैसै ओंकारकी प्रथम मात्रा जो अकार
ताकाभी विराट्रूप विश्वतैं अभेद है. काहेतैं ? ब्रह्मके चार
पादनमैं प्रथम पाद विराट् है, औ आत्माके चार पादनमैं
प्रथम विश्व है. तैसे ओंकारकी चार मात्रारूप पादनमैं प्रथम
पाद अकारहै. यातैं प्रथमतः तीनोंमैं समानधर्म होनैतैं विश्व-
विराट्अकारका अभेद चिंतन करै. जो सात अंग उन्नीस मुख
विश्वके कहे, सोई सात अंग औ उन्नीस मुख तैजसेंभी जानने-
कूं योग्य हैं. परंतु इतना भेद हैः-विश्वके जो अंग औ मुख हैं
सो तो ईश्वररचित हैं, औ तैजसके जो इंद्रिय देवता विषयरूप
त्रिपुटी औ मूर्धादिक अंग सो मनोमय हैं. तैजसका भोग

सूक्ष्म है. यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञान है, ताके विषे स्थूलता औ सूक्ष्मता कहना बने नहीं तथापि बाह्य जो शब्दादिक विषय हैं, तिनके संबंधतैं सुख अथवा दुःखका साक्षात्कार, सो स्थूल कहिये है मानस जो शब्दादिक तिनके संबंधतैं जो भोग होवै सूक्ष्म कहै है. इसी कारणतैं विश्व तौ स्थूलका भोक्ता श्रु विषे कह्या है. औ तैजस सूक्ष्मका भोक्ता कह्या है. काहे तैजसके भोग्य जो शब्दादिक हैं सो तौ मानस हैं, यातैं सू हैं. औ तिनकी अपेक्षाकरके विश्वके भोग्य बाह्यशब्दादिक सो स्थूल हैं,औ विश्व बहिष्प्रज्ञ है.तैजस अंतःप्रज्ञ है.काहे जो विश्वकी अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है, सो बाहिर है औ तैजसकी नहीं जावै है.

जैसे विश्वका औ विराट्का अभेद है तैसे तैजस हिरण्यगर्भरूप जानैं. काहेतैं ? सूक्ष्मउपाधि तैजसकी औ सूक्ष्मही हिरण्यगर्भकी है, यातैं दोनोंकी एकता जा तैजस हिरण्यगर्भकी एकता जानके ओंकारकी द्वि मात्रा उकारसैं तिनका अभेद चिंतन करै. काहेतैं ? त्माके चार पादनमैं द्वितीय पाद तैजस है. ब्रह्मके नमैं हिरण्यगर्भ दूसरा पाद है. ओंकारकी मात्रामैं तीय मात्रा उकार है. द्वितीयता तीनोंमैं समानधर्म यातैं तीनोंकी एकताका चिंतन करै.

औ प्राज्ञकूं ईश्वररूप जानै. काहेतैं ? प्राज्ञकी का उपाधि है, औ ईश्वरकीभी कारणउपाधि है. ईश्वर प्राज्ञ, पादनमैं तृतीय हैं, ओंकारकी तृतीय मात्रा

है, तीसरापना तीनोंमैं समानधर्म है. यातैं तीनोंकी एकता जानै औ यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है. काहेतैं? जाग्रत औ स्वप्नके जितने ज्ञान हैं, सो सुषुप्तिविषे घन कहिये एक अविद्यारूप होय जावै हैं. यातैं प्रज्ञानघन कहिये हैं. औ आनंदभुक्भी यह प्राज्ञ श्रुतिने कह्या है. काहेतैं ? अविद्यासैं आवृत जो आनंद है, ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है. यातैं आनंदभुक् कहिये है.

जैसे तैजस और विश्वका भोग त्रिपुटीसै होवै, तैसै प्राज्ञके भोगकीभी त्रिपुटी कहिये है;—चैतनके प्रतिबिंबसहित जो अविद्याकी वृत्ति है, सो अध्यात्म है; अज्ञानसैं आवृत जो स्वरूप आनंद, सो अधिभूत है; औ ईश्वर अधिदैव है. इस रीतिसैं विश्व तौ बहिष्प्रज्ञ है, औ तैजस अंतःप्रज्ञ है; औ प्राज्ञ प्रज्ञानघन है.

ऐसा जो तीनोंका भेद है, सो उपाधिकरके है. विश्वकी स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीन उपाधि हैं, औ तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान दो उपाधि हैं. और प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है. इस रीतिसैं उपाधिकी न्यूनता--अधिकतासैं तीनोंका भेद है. परमार्थकरके स्वरूपसैं भेद नहीं.

विश्व, तैजस, प्राज्ञ, इन तीनोंविषे अनुगत जो चेतन है, सो परमार्थसैं तीनों उपाधिके संबंधसैं रहित है. तीनों उपाधिका अधिष्ठान तुरीय है, सो बहिष्प्रज्ञ नहीं, औ अंतःप्रज्ञ नहीं औ प्रज्ञानघनभी नहीं. कर्मइंद्रियका औ ज्ञानइंद्रियका विषय नहीं, औ बुद्धिका विषय नहीं, किसी शब्दका विषय नहीं. ऐसा जो तुरीय है, ताकूं परमात्माका चतुर्थ पाद ईश्वरसाक्षी शुद्धब्रह्मरूप जानै.

इस रीतिसैं दो प्रकारका आत्माका स्वरूप कह्या. ए
तौ परमार्थरूप है, और एक अपरमार्थरूप है. तीन पाद
अपरमार्थरूप हैं, और एक पाद तुरीय परमार्थरूप है.
आत्माके दो स्वरूप हैं, तैसे ओंकारकेभी दो स्वरूप हैं
अकार, उकार, मकार ये तीन मात्रारूप जो वर्ण हैं, सो
अपरमार्थरूप हैं; और तीनों मात्राविषे व्यापक
अस्तिभातिप्रियरूप अधिष्ठानचेतन है, सो परमार्थ
है. जो ओंकारका परमार्थरूप है, ताकूं श्रुतिविषे अमा
शब्द करके कह्या है. काहेतैं ? ता परमार्थस्वरूप
मात्राविभाग है नहीं, यातैं अमात्र कहिये है. इस रीति
दो स्वरूपवाला जो ओंकार है, ताका दो स्वरूपवाले आत्मा
सैं अभेद जानै.

व्यष्टि औ समष्टि जो स्थूलप्रपंच तासहित विश्व
विराट्का अकारसैं अभेद जानै. आत्माके जो पाद हैं ति
विषे विश्व आदि है, औ ओंकारकी मात्राविषे अकार आ
हैं; यातैं दोनों एक जानै. सूक्ष्मप्रपंचसहित जो हिरण्यगर्भ
तैजस है, ताकूं उकाररूप जानै; तैजसभी दूसरा है, औ उका
रभी दूसरा है. यातै दोनों एक जानै. कारण उपाधिमा
जो ईश्वररूप प्राज्ञ है, ताकूं मकाररूप जानै. जैसैं ईश्वर
प्राज्ञ तीसरा है, तैसैं मकारभी तीसरा है, औ उकार ईश
रूप प्राज्ञ और मकारकूं एक जानै. तीनोंविषे अनुगत जो
मार्थरूप तुरीय है, ताकूं ओंकारवर्णकी तीन मात्राविषे अनु
जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, तासैं अभिन्न
जैसैं विश्वादिकविषे तुरीय अनुगत है, तैसैं अकारादि
मात्राविषे अमात्र अनुगत है. यातैं ओंकारके अमात्ररूपकूं

तुरीयकूं एक जानै. इस रीतिसैं आत्माके पाद औ ओंकारकी जो मात्रा है, तिनकी एकता जानेके लयचिंतन करै.

सो लयचिंतन कहिये हैः—विश्वरूप जो आकार है, सो तैजसरूप उकारसैं न्यारा नहीं; किंतु उकाररूप है. ऐसा जो चिंतन करना सो या स्थानमैं लय कहिये है. ऐसाही और मात्राविषेभी जान लेना. औ जो उकारविषे आकारका लय किया है, ता तैजसरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है ताके विषे लय करै. औ प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताके विषे लीन करै. काहेतैं ? स्थूलकी उत्पत्ति औ लय सूक्ष्मविषे होवै है. यातैं विश्वरूप जो आकार है, ताका तैजसस्वरूप उकारमैं लय बनै है. औ सूक्ष्मकी उत्पत्ति औ लय कारणमैं होवै है. यातैं तैजसस्वरूप जो उकार है, ताका कारण प्राज्ञरूप जो मकार है, ताके विषे लय बनै है. या स्थानविषे विश्वआदिकनके ग्रहणतैं समष्टि जो विराट्आदिक है, तिनका; औ अपनी अपनी जो त्रिपुटी हैं तिन सर्वका ग्रहण जानना. जा प्राज्ञरूप मकारविषे उकार लय किया है ता मकारकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताके विषे लीन करै. काहेतैं ? ओंकारके परमार्थस्वरूपका तुरीयसैं अभेद है. सो तुरीय ब्रह्मरूप है. औ शुद्धविषे ईश्वर प्राज्ञ दोनों कल्पित हैं. जो जाके विषे कल्पित होवै है, सो ताका स्वरूप होवै है. यातैं ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनै है. इस रीतिसैं जो ओंकारके परमार्थस्वरूप अमात्रविषे सर्वका लय किया है; "सो मैं हूं" ऐसा एकाग्रचित्त होयके चिंतन करै. स्थावरजंगमरूप, और असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय,

ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थस्वरूप, "सो मैं हूं." ऐ
चिंतन करनेसैं ज्ञान उदय होवै है यातैं ज्ञानद्वारा मुक्ति
फलका देनेवाला यह ओंकारका निर्गुणउपासना है.
सर्वसैं उत्तम है.

जो पूर्वरीतिसैं ओंकारके स्वरूपकूं जानै है, सो मुनि
जो नहीं जानै है, सो मुनि नहीं. काहेतैं ? मुनि नाम म
करनेवालेका है. यह ओंकारका चिंतन मननरूप है.
ओंकारका चिंतन मनन नहीं, सो मुनि नहीं. यह मांडूक्य
उपनिषदकी रीतिसैं संक्षेपतैं ओंकारका चिंतन कह्या
औरभी नृसिंहतापिनी आदिक उपनिषदनमैं याका प्र
है. यह ओंकारका चिंतन परमहंसोंका गोप्य धन है.
मुखपुरुषका याविषे अधिकार नहीं; अत्यंत अंतर्मुख
अधिकार है. गृहस्थका यामैं अधिकार नहीं, धनपुत्रा
गादिकरहित परमहंसका अधिकार है.

पूर्वप्रकारतैं ओंकारका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कियेतैं
द्वारा मोक्ष होवै है. परंतु जा पुरुषकी इस लोकके भो
नमैं अथवा ब्रह्मलोकके भोगनमैं कामना होवै, तीव्र वैरा
नहीं होवै, औ हठसैं कामनाकूं रोकके, धनपुत्रादिक
त्यागके, परमहंसगुरुके उपदेशतैं ओंकाररूप ब्रह्मका ध्या
करै; ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमैं प्रतिबंधक है. यातैं
नहीं होवै है. किंतु ध्यान करतेही शरीरत्यागतैं अ
अन्यशरीरकी प्राप्ति होवै. जो इस लोकके भोगनकी काम
रोकके ध्यानमैं लगा होवै, तौ इस लोकमैं अत्यंत
भूतिवाले पवित्र सत्संगी कुलमैं जन्म होवै है.
पूर्वकामनाके विषे सारे भोग प्राप्त होवै हैं. और पू

जन्मके ध्यानके संस्कारनतैं फेर विचारमैं अथवा ध्यानमें प्रवृत्ति होवै है. तातैं ज्ञान होयके मोक्ष होव है.

और ब्रह्मलोकके भोगनकी कामना रोककै ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमें लग्या होवै, तौ शरीर त्यागके ब्रह्मलोकक्कूं जावै है. तहां मनुष्यनकूं, पितरनकूं, देवनकूं, दुर्लभ जो स्वतंत्रता है, ताके आनंदको भोगै है. जितनी हिरण्यगर्भकी विभूति हैं, सो सारी सत्यसंकल्पादिक विभूति इसकूं प्राप्त होवै हैं.

जा मार्गतैं ब्रह्मलोकक्कूं जावै है, सो मार्गका क्रम यह है:—जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामैं तत्पर है, ताके मरणसमय इंद्रिय अंतःकरण यद्यपि सारे मूर्छित हैं, कहीं जाननेमैं समर्थ नहीं; औ यमके दूत ताके समीप आवै नहीं, जो ताके लिंगशरीरकूं ले जावै, परंतु अग्निका अभिमानी देवता ताकूं मरणसमय शरीरसैं निकासके अपने लोकक्कूं ले जावै है. ता अग्निलोकतैं दिनका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं शुक्लपक्षका अभिमानी देवता अपने लोकक्कूं ले जावैहै. तिसतैं आगे उत्तरायण जो षट्मास हैं,तिनका अभिमानी देवता ले जावै हैं. तिसतैं आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावैहै. तिसतैं आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं आगे वायुका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं आगे सूर्यदेवता ले जावै है. तिसतैं आगे चंद्र देवता ले जावै है. तिसतैं आगे बिजलीका अभिमानी देवता अपने लोकमैं ले जावै है. तहां बिजलीके लोकमैं तिस उपासकके सामने हिरण्यगर्भकी आज्ञातैं दिव्यपुरुष हिरण्यगर्भलोकवासी हिरण्यगर्भसमानरूप ताके लेनेक्कूं आवै है; सो

पुरुष बिजलीके लोकतैं वरुणलोककूं ले जावै है. बिजली अभिमानी देवता साथ आवै है. वरुणलोकतैं इंद्रलोककूं जावै है. औ वरुणदेवताभी इंद्रलोकतोडी हिरण्यगर्भलोकवासी पुरुष औ उपासकके साथ रहै है, तिसतैं आगे इंद्रदेवता प्रजापतिके लोकतोडी दोनोंके साथ रहै हैं. तिसतैं आगे प्रजापति तिन दोनोंके साथ ब्रह्मलोक ले जाने विषे समर्थ नहीं. यातैं ब्रह्मलोकमैं ता दिव्यपुरुषके साथ सो उपासक प्राप्त होवै है. ब्रह्मलोकका अधिपति हिरण्यगर्भ है. सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी चेतन, हिरण्यगर्भ कहिये है; ताहीकूं कार्यब्रह्म कहै है. कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं ब्रह्मलोक कहैं हैं.

'यद्यपि पूर्वरीतिसैं ओंकारकी उपासना शुद्धब्रह्मरूप करके कही है. शुद्धब्रह्मके उपासककूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति चाहिये; तथापि शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति ज्ञानतैंही होवै है. औ कामनारूप प्रतिबंधतैं जाकूं ज्ञान हुआ नहीं, ताकूं कार्यब्रह्मकी सायुज्यरूप मोक्ष होवै है. ब्रह्मलोकमैं प्राप्त जो उपासक है, ताकूं हिरण्यगर्भके समान विभूति प्राप्त होवै है. सत्यसंकल्प होवै है. जैसे शरीरकी इच्छा करै तैसा उसका शरीर होवै है. जिन भोगनकी वांच्छा करै, सो भोग संकल्पतैंही प्राप्त होवै हैं. जो एकसमय हजार शरीरनसैं जुदे जुदे भोगनकी इच्छा करै, तौ ताही समय हजार शरीर और उनके भोगनकी जुदी जुदी सामग्री उपजै है. और बहुत क्या कहैं? जो कछु संकल्प करै, सोई सिद्ध होवै है. परंतु जगत्की उत्पत्ति पालन संहार छोडके और सारी विभूति ईश्वरके समान होवै हैं. याहीकूं सायुज्य मोक्ष कहै हैं. ऐसे हिरण्यगर्भके समान हुवा बहुत काल

संकल्पसिद्ध दिव्यपदार्थनकूं भोगके प्रलयकालमें जब हिरण्यगर्भके लोकका नाश होवै, तब ज्ञान होयके उपासककूं विदेहमोक्षकी प्राप्ति होवै है.

जैसे ओंकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनेवाला ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवै है; तैसैं औरभी उपनिषद्नमें ब्रह्मकी उपासना कही है, तिनतैं यही फल होवै है. परंतु अहंग्रहउपासनाविना और उपासनातैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं. यह वार्त्ता सूत्रकारने और भाष्यकारने चतुर्थ अध्यायमें प्रतिपादन करी है. जैसे नर्मदेश्वरका शिवरूपतैं औ शालिग्रामका विष्णुरूपतैं ध्यान कह्या है, सो प्रतीकध्यान है, अहंग्रह नहीं. औ मनका ब्रह्मरूपतैं आदित्यका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कह्या है, सोभी प्रतीकध्यान है; अहंग्रह नहीं. तिनतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं. सगुण अथवा निर्गुण ब्रह्मकूं अपनेतैं अभेदकरके चिंतन करें, ताकूं अहंग्रहध्यान कहै हैं. ताहीतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है.

पूर्वकह्या जो मार्ग है ताकूं उत्तरायणमार्ग कहै हैं; और देवमार्गभी कहै हैं. ता देवमार्गतैं ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावैं हैं, तिनकूं फेर संसार नहीं होता; किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवै हैं. तहां ज्ञानके साधन जो गुरुउपदेशादिक हैं, तिनकीभी अपेक्षा नहीं. किंतु ब्रह्मलोकमैं गुरुउपदेशादिक साधनविनाही ज्ञान होवै है. काहेतैं ? ब्रह्मलोकमैं तमोगुण रजोगुणका तौ लेशभी नहीं. केवल सत्वगुणप्रधान वह लोक है. तमोगुण नहीं, यातैं जडता आलस्यादिक नहीं. रजोगुण नहीं, यातैं कामक्रोधादिरूप रजोगुणका कार्यविक्षेप नहीं. केवल सत्वगुण है सत्वगुणका कार्य ज्ञानरूप प्रकाश ता लोकमैं प्रधान है.

ओंकारकी ब्रह्मरूपतैं जो पूर्व उपासना करी है, तब
कारकी मात्राका अर्थ इस रीतिसैं चिंतन किया है:-
उपाधिसहित विराट् विश्वचेतन अकारका वाच्य है.
उपाधिसहित चेतन हिरण्यगर्भतैजस उकारका वाच्य
कारणउपाधिसहित चेतन ईश्वरप्राज्ञ मकारका वाच्य है.
अर्थ जो पूर्व चिंतन किया है, ताकी ब्रह्मलोकमैं
होवै है. औ सत्त्वगुणप्रभावतैं ऐसा विवेचन होवै है:-
उपाधिकरके चेतनमैं विराट्पणा और विश्वपणा प्रतीत
है. स्थूलसमष्टिकी दृष्टितैं विराट्पणा और स्थूलव्यष्टि
दृष्टितैं विश्वपणा है. और समष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टि
विराट्भाव और विश्वभाव प्रतीत होवै नहीं, किंतु चेतन
त्रही प्रतीत होवै है. तैसे सूक्ष्मउपाधिसहित हिर
गर्भतैजसचेतन उकारका वाच्य है. तहां समष्टिसूक्ष्मउपा
दृष्टितैं चेतनमैं हिरण्यगर्भता, औ व्यष्टिसूक्ष्मउपाधिकी दृ
तैजसता प्रतीत होवै है. सूक्ष्मउपाधिकी दृष्टिविना हि
गर्भता औ तैजसता प्रतीत होवै नहीं. तैसै मकारका
ईश्वरप्राज्ञ है. तहां समष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितैं चे
ईश्वरता, औ व्यष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितैं चेतनमैं प्राज्ञ
तीत होवै है. अज्ञानउपाधिकी दृष्टिविना ईश्वरता औ प्रा
प्रतीत होवै नहीं. जो वस्तु जाके विषे अन्यकी दृष्टितैं
होवै, सो ताके विषे परमार्थसैं होवै नहीं.. जो जाका
अन्यकी दृष्टिविना प्रतीत होवै, सो ताका परमार्थरू
है. जैसे एक पुरुषमैं पिताकी दृष्टितैं पुत्रता, औ दादाकी
पौत्रतादिकरूप भान होवै है, सो परमार्थसैं नहीं.
पिंडही परमार्थ है. तैसै स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिकी दृ

विराट्विश्वादिकरूप भान होवै है सो मिथ्या हैं; चेतनमात्रही सत्य है. सो चेतन सर्वभेदरहित है. काहेतैं? विराट् औ विश्वका जो भेद है, सो उपाधि तौ दोनोंकी यद्यपि स्थूल है, तथापि समष्टि उपाधि विराट्की, औ व्यष्टिउपाधि विश्वकी. सो समष्टिव्यष्टिउपाधितैं तिनका भेद है; यातैं स्वरूपतैं भेद नहीं. तैसैं तैजसका हिरण्यगर्भतैं भेदभी समष्टिव्यष्टिउपाधितैं है; स्वरूपतैं नहीं. तैसैं ईश्वरतैं प्राज्ञका भेदभी समष्टिव्यष्टिउपाधिके भेदतैं है; स्वरूपतैं नहीं. ऐसे प्राज्ञका ईश्वरतैं अभेद औ तैजसका हिरण्यगर्भतैं अभेद, तथा विश्वका विराट्तैं अभेद है. या प्रकारतैं स्थूलउपाधिवालेका सूक्ष्मउपाधिवालेतैं, वा कारणउपाधिवालेतैं भेद नहीं. काहेतैं? स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टि त्यागेतैं चेतनस्वरूपमैं किसी प्रकारका भेद प्रतीत होवै नहीं. औ अनात्मासैंभी चेतनका भेद नहीं. काहेतैं? अनात्मदेहादिक अविद्याकालमैं होवै हैं. परमार्थसैं नहीं. तिनकाभी चेतनसै भेद बनै नहीं. ऐसे सर्वभेदरहित, असंग, निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा ओंकारको लक्ष्य स्वयंप्रकाशरूप तिस उपासककूं भान होवै है. तातैं हिरण्यगर्भलोकवासीकूं संसार होवै नहीं.

यद्यपि महावाक्यके विवेकबिना ज्ञान होवै नहीं, तथापि ओंकारका विवेकही महावाक्यका विवेक है. स्थूलउपाधिसहित चेतन अकारका वाच्य, स्थूलउपाधिकूं त्यागके चेतनमात्र अकारका, लक्ष्य, तैसैं सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन उकारका वाच्य; सूक्ष्मउपाधिकूं त्यागके चेतनमात्र लक्ष्य कारणउपाधिसहित चेतन मकारका वाच्य,

कारणउपाधिकूं त्यागके चेतनमात्र लक्ष्य. इस रीतिसैं उ
धिसहित विश्वादिक अकारादिमात्राके वाच्य, औ उ
धिरहित चेतन सर्वमात्राको लक्ष्य है. तैसे नामरूप स
उपाधिसहित चेतन ओंकारवर्णका वाच्य है. औ नाम
सकलउपाधिरहित चेतन ओंकारवर्णका लक्ष्य है.
ओंकारका औ महावाक्यनका अर्थ एकही है, यातैं ओंका
विवेकतैं अद्वैतज्ञान होवै है. ऐसे आचार्यके मुखतैं श्र
करके अदृष्ट नाम जो मध्यमशिष्य, सो उपासनामैं प्र
होयके ज्ञानद्वारा परमपुरुषार्थमोक्षकूं प्राप्त हुआ ॥१६
निर्गुणउपासनामैं जाका अधिकार नहीं, ताकूं कर्तव्य कहे

समानसवैया–छंद.

जो यह निर्गुणध्यान न व्है तौ ।
सगुणईश करि मनको धाम ॥
सगुणउपासन हू नहिं व्है तौ ।
करि निष्कामकर्म भजि राम ॥
जो निष्कामकर्म हू नहिं व्है ।
तौ करिये शुभकर्म सकाम ॥
जो सकामकर्महु नहिं होवै ।
तौ शठ वार वार मरि जाम ॥१६९॥

दोहा ।

ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्टि ।
जु याहि तरंग तिहिं, दादू करहु सुदृष्टि ॥१७

इति श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादनमध्यमाधिका
साधनवर्णनं नाम पंचमस्तरंगः ॥ ५ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्रीविचारसागरे

षष्ठस्तरंगः ६.

अथ गुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनम् ।

दोहा ।

चेतनभिन्न अनात्म सब, मिथ्या स्वप्नसमान ॥
यूं सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मतिमान ॥ १ ॥

टीकाः—चतुर्थतरंगमें उत्तमअधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कह्या. पंचमतरंगमें मध्यमकूं कह्या. या तरंगमैं कनिष्ठअधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कहे हैंः—जाकूं शंका बहुत उपजै, ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवै है, तथापि वह कनिष्ठ अधिकारी है. यह तरंग युक्तिप्रधान है; यातैं सुने अर्थमैं जाकूं कुतर्क उपजै, ताकूं इस तरंगका उपयोग है. कुतर्कदूषितबुद्धि कनिष्ठ अधिकारी होवै है. ताकूं उपदेशका प्रकार या तरंगमैं है. पहले तरंगमैं प्रणवउपासना औ जगत्की उत्पत्तिनिरूपणसैं पूर्व यह कह्याः—जो चेतनसैं भिन्न अज्ञान औ ताका कार्य अनात्म कहिये है. सो अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी नाईं मिथ्या हैं, इस वार्ताकूं सुनके दोनूं भाइयोंकूं प्रश्नतैं उपराम देखके,

तर्कदृष्टि प्रश्न करै हैः—

दोहा ।

पहिले जानी वस्तुकी, स्मृती स्वप्नमैं होय ॥
जागृतमें अज्ञात अति, ताहि लखै नहिं कोय ॥ ३ ॥

टीकाः—पूर्व जो अत्यंत अज्ञान पदार्थ है, ताका स्वप्नमैं ज्ञान होवै नहीं, किंतु जाग्रत्‌मैं जाका अनुभव ज्ञान होवै ताका स्वप्नमैं स्मृति होवै है. यातैं स्मृतिज्ञानके विषय जाग्रत्‌के पदार्थ सत्य होनेतैं तिनका स्वप्नमैं स्मृतिरूप ज्ञानभी सत्य है; यातैं स्वप्नके दृष्टांतसैं जागृतके पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवै नहीं ॥ २ ॥

अन्य प्रकारतैं स्वप्नज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करै हैं.

दोहा ।

अथवा स्थूलहि लिंग तजि, बाहर देखत जाय ॥
गिरि समुद्र वन बाजिगज, सो मिथ्या किहिं भाय ॥ ३ ॥

टीकाः—अथवा कहिये और प्रकारतैं स्वप्नका ज्ञान औ ताके विषय पदार्थ सत्य हैं; मिथ्या नहीं. काहेतैं स्वप्न अवस्थामें स्थूलशरीरकूं त्यागके लिंगशरीर बाहर निकसके सांचे गिरि समुद्रादिनकूं देखै है; यातैं स्वप्न मिथ्या नहीं ॥ ३ ॥

उत्तर दोहा.

यह हस्ती आगे खरो, ऐसे होवै ज्ञान ।
स्वप्नमाहिं स्मृतिरूप सो, कैसे होय सुजान ॥ ४ ॥

टीकाः—पूर्वकालसंबंधी पदार्थका ज्ञानस्मृति होवै है। जैसे पूर्व देखे हस्तीकी "सो हस्ती" ऐसी स्मृति होवै है।

औ "यह हस्ती सन्मुख स्थित है" ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं; किंतु प्रत्यक्ष कहिये है. औ स्वप्नमें तौ "यह हस्ती आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है." ऐसा ज्ञान होवै है. यातैं जाग्रत्मैं देखे पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं; किंतु हस्ती आदिकनका प्रत्यक्षज्ञान होवै है.

और जो ऐसे कहैं:—"जाग्रत्मैं जाने पदार्थनकाही स्वप्नमैं ज्ञान होवै है, अज्ञात पदार्थका ज्ञान नहीं होवै; यातैं जाग्रत्पदार्थनके ज्ञानके संस्कारतैं स्वप्नके ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है. संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहिये है. यातैं स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है" सो शंका बनै नहीं. काहेतैं? प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारका होवै है. एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है. दूसरा प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है. केवल इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै, सो अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसे नेत्रके संबंधतैं हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है. औ पूर्वज्ञानके संस्कारनतैं औ इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसे पूर्वदेखे हस्तीका "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवै, सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार औ हस्तीसैं नेत्रका संबंध, प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका हेतु है. यातैं "संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूपही होवै है," यह नियम नहीं. किंतु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षभी संस्कारजन्य होवै है, परंतु इंद्रियसंबंधविना केवल संस्कारजन्य ज्ञान होवै, सो स्मृतिज्ञान कहिये है. स्वप्नमैं हस्तीआदिकनका ज्ञान केवलसंस्कारजन्य नहीं, किंतु निद्रारूप दोषजन्य है. औ हस्तीआदिकनकी नाईं स्वप्नमैं कल्पित इंद्रियभी हैं. यातैं इंद्रियजन्य हैं. यद्यपि स्वप्नके—

पदार्थ साक्षीभास्य हैं,इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय नहीं,तथा
अविवेकीकी दृष्टितैं स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य कहिये है
इस रीतिसैं स्वप्नका ज्ञान जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति नहीं
औ निद्रासैं जागके पुरुष ऐसे कहै हैः-"मैं स्वप्नमैं हस्ती
आदिकनकूं देखता भया" जो हस्तीआदिकनकी स्वप्न
स्मृति होवै, तौ जागके ऐसा कह्या चाहिये "मैं स्वप्नमैं हस्ती
आदिकनकूं स्मरण करता भया" ऐसे कोई नहीं कहता
यातैं जाग्रत्के पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं. औ "जाग्रत्
जो देखे सुने पदार्थ हैं, तिनकाही स्वप्नमैं ज्ञान होवै" यह
नियम नहीं. किंतु जाग्रत्मैं अज्ञातपदार्थनकाभी स्वप्नमैं
ज्ञान होवै है. कदाचित् स्वप्नमैं ऐसे विलक्षण पदार्थ प्रतीत
होवै हैं, जो सारे जन्मविषे कभी देखे सुने होवै नहीं, यातैं
तिनका ज्ञान स्मृति नहीं.

यद्यपि "इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कारही स्मृ-
तिके हेतु हैं, "यह नियम नहीं. किंतु अन्यजन्मके ज्ञानके
संस्कारनतैंभी स्मृति होवै.काहेतैं?अनुकूलज्ञानतैं प्रवृत्ति होवै
है, अनुकूलज्ञानविना प्रवृत्ति होवै नहीं. यातैं बालककी
स्तनपानमैं जो प्रथमप्रवृत्ति होवै है, ताका हेतु बालककूं
"स्तनपान मेरे अनुकूल है" ऐसा ज्ञान होवै है. तहां अन्य
जन्म विषे स्तनपानमैं जो अनुकूलता अनुभव करी है, ताके
संस्कारनतैं बालककूं अनुकूलताकी स्मृति होवै है. यातैं
जन्मांतरके ज्ञानसंस्कारनतैंभी स्मृति होवै है. तैसैं इस जन्म
विषे अज्ञात पदार्थनकीभी अन्यजन्मके ज्ञानके संस्कारनतैं
स्वप्नविषे स्मृति संभवै है. तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमैं ऐसे
प्रतीत होवै हैं; जिनका जाग्रत्मैं किसी जन्मविषे ज्ञान

संभवै नहीं. जैसे अपने मस्तकछेदनकूं आप नेत्रनसैं स्वप्नमैं देखे है, तहां अपना मस्तकछेदन नेत्रनसैं जाग्रत्सें देखै नहीं यातैं जाग्रत्पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नमैं स्मृति नहीं. ऐसे स्वप्नकूं स्मृतिरूप खंडनमैं अनेक युक्ति ग्रंथकारोंने कही हैं, परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननेमैं पूर्वउक्त दूषण अतिप्रबल हैं. जो स्मृतिज्ञानका विषय सन्मुख प्रतीत होवै नहीं औ स्वप्नके हस्तीआदिक सन्मुख प्रतीत स्वप्नकालमैं होवै हैं; यातैं हस्तीआदिकनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं ॥ ४ ॥

"लिंगशरीर बाहर निकसके साँचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै है." याका—

उत्तर

दोहा ।

बाहर लिंग जु नीकसै, देह अमंगल होय ॥
प्राणसहित सुंदर लसै, यातें लिंगहि जोय ॥५॥

टीकाः—जो स्थूलशरीरतैं निकसके लिंगशरीर बाहर साँचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै, तौ लिंगशरीरके निकसनेतैं जैसे मरणअवस्थामैं शरीर भयंकररूप प्रतीत होवै है, तैसे स्वप्नअवस्थाविषेभी लिंगके अभावतैं स्थूलशरीर अमंगल कहिये भयंकर हुआ चाहिये. तैसे प्राणरहित मृतकसमान हुआ चाहिये. औ स्वप्नअवस्थामैं ऐसा होवै नहीं, किंतु स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीर प्राणसहित होवै है, औ जाग्रत्की नाईं सुंदर कहिये मंगलरूप होवै है. यातैं स्थूलशरीरके बाहर लिंगशरीर स्वप्नावस्थामैं निकसै नहीं औ जो ऐसे कहैं "—स्वप्नअवस्थामैं प्राण तौ जावै नहीं, किंतु

अंतःकरण औ इंद्रिय बाहर पर्वतादिकनमैं जायके तिन
देखै है. प्राण बाहर नहीं जावै है यातैं स्थूलशरीर मरण
स्थाके समान भयंकर होवै नहीं. औ प्राणका बाहर जाने
कछु प्रयोजनभी नहीं.काहेतैं ? प्राणमैं ज्ञानशक्ति नहीं;
क्रियाशक्ति है; यातैं बाहरके पदार्थनके ज्ञानकी जि
सामर्थ्य है सोई जावै है, ज्ञानशक्ति अंतःकरण औ
इंद्रियनमैं है.प्राणकी नाईं कर्मइंद्रियनमैंभी ज्ञानशक्ति
क्रियाशक्ति है. यातैं प्राण औ कर्मइंद्रिय शरीरमैं रहै
यातैं मरणनिमित्ततैं दाहादिकनकी इच्छा होवै है. औ
अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय जावै है, सांचे पर्वतादिकनकूं दे
प्राण औ कर्मइंद्रियनके समीप आवै है; सोभी बनै न
काहेतैं ? स्थूलसूक्ष्मसमाजमैं सर्वका स्वामी प्राण है. प्रा
बिना शरीरकूं देखके क्षणमात्रभी रहने नहीं देते.
ले जावै हैं दाह करै हैं; स्पर्शतैं स्नान करै हैं. यातैं स्
शरीरका सार प्राण हैं; तैसे सूक्ष्मशरीरमैंभी प्रधान प्रा

प्राणइंद्रियादिक परस्पर श्रेष्ठता विवादकरके प्रजाप
समीप जायके कह्या–हे भगवन्! हमारेविषे कौन श्रेष्ठ
तब प्रजापतिने कह्या–तुम सारे स्थूलशरीरमैं प्रवेश
एक एक निकसते जावो, जिसके निकसेतैं शरीर अम
रूप होइके गिर पड़ै, सो तुह्मारेमैं श्रेष्ठ है, प्रजापतिके व
तैं नेत्रादिक इंद्रियनतैं एकएकके अभावतैं अंधादिरूप
रकी स्थिति देखी, औ प्राणके निकसनेका उद्योग कर
शरीर गिरने लगा, तब सर्वने यह निश्चय किया, कि
सर्वका स्वामी प्राण है. इस कारणतैं जितने शरीरमैं
रहैं, उतने रहै हैं. शरीरतैं प्राणके निकसनेतैंही सारे नि

जावै हैं. यातैं सूक्ष्मसमाजका राजाकी नाईं प्राणही प्रधान है. ताके निकसेबिना अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय बाहर निकसै नहीं. किंवा,

अंतःकरण औ ज्ञानइंद्रिय भूतनके सत्त्वगुणके कार्य हैं. तिनमैं ज्ञानशक्ति है, क्रियाशक्ति नहीं; प्राणमैं क्रियाशक्ति है. ताके बलतैं मरणसमय लिंगशरीर इस स्थूलकूं त्यागके लोकांतरकूं जावै है, औ प्राणकेही बलतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाहर घटादिकनके समीप जावै है. औ प्राणके सहारेबिना अंतःकरणादिकनका बाहर गमन संभवै नहीं. इसी कारणतैं योगशास्त्रमैं कह्या है—" प्राणनिरोधबिना मनका निरोध होवै नहीं. प्राणके संचारतैं मनका संचार होवै है. प्राणनिरोधतैं मनका निरोध होवै है," यातैं मनका निरोधरूप जो राजयोग; ताकी जिसकूं इच्छा होवै, सो प्राणनिरोधरूप हठयोगका अनुष्ठान करे; यातैंभी प्राणके अधीन अंतःकरणका गमन है. ताके निकसेबिना अंतःकरण ज्ञान इंद्रिय बाहर निकसैं नहीं. औ स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीर प्राणसमेत प्रतीत होवै है. यातें " बाहर जायके सांचे पदार्थनकूं स्वप्नमैं देखै है; यह संभवै नहीं " किंवा,

कोई पुरुष अपने संबंधीसैं स्वप्नमैं मिलके जो व्यवहार करै, तौ जागके वह संबंधी मिलै, तब ऐसे नहीं कहता कि रात्रिकूं हम मिले थे, औ अमुक व्यवहार किया था. औ पूर्वपक्षकी रीतिसैं तौ बाहर निकसके ता संबंधीसैं मिलके व्यवहार सांचा किया है, ता मिलनेका औ व्यवहारका ज्ञान संबंधीकूं चाहिये, औ मिले जब संबंधीने कह्या चाहिये; औ सिद्धांतमैं तौ संबंधी औ ताका मिलाप सब अंतरही कल्पित है. किंवा,

जो बाहर जायके सांचे पदार्थकूं देखै, तौ रा
सोया पुरुष हरिद्वारमैं मध्याह्नका सूर्यतैं तपे महल गं
पूर्व, औ नीलपर्वत गंगातैं पश्चिम देखै हैं. तहां रात्रिमैं
ध्याह्नका सूर्य नहीं, गंगातैं पूर्वदिशामें हरिद्वारपुरी न
गंगातैं पश्चिम नीलपर्वत नहीं. यातैंभी सांचे पदार्थन
देखना स्वप्नमैं असंभव है. औ जाग्रत्‌की स्मृति, अ
ईश्वरकृत पर्वतादिकनका बाहर निकसके स्वप्नमैं
होवै है; इन दोनों पक्षनका निराकरण किया ॥ ५ ॥

सिद्धांत कहे हैंः—

दोहा ।

यातैं अंतर ऊपजै, त्रिपुटी सकलसमाज ॥
वेद कहत या अर्थकूं, सब प्रमाण सिरताज ॥ ६

टीकाः—जाग्रत्‌के पदार्थनकी स्मृति, औ बाहर लि
निकसना तौ संभवै नहीं, तथापि जाग्रत्‌की नाई
ज्ञान ज्ञेय, त्रिपुटी स्वप्नमैं प्रतीत होवै हैं; यातैं कं
नाडीके अंतरही सब कुछ उत्पन्न होवै है सब प्रमा
सिरताज कहिये प्रधान जो वेद है, ताने यह
हैः—उपनिषद्‌मैं यह प्रसंग है—“ जाग्रत्‌के पदार्थ स्व
नहीं प्रतीत होवै हैं; किंतु रथ औ घोड़े तथा मार्ग,
रथमैं बैठनेवाले स्वप्नमें नवीन उत्पन्न होवै हैं. यातैं
समुद्र, नदी, वन, ग्राम, पुरी, सूर्य, चंद्र, जो कुछ
दीखै हैं, सो नवीन उपजै हैं. जो स्वप्नमैं पर्वतादिक
होवैं तौ तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमैं होवै है सो नहीं
चाहिये ” काहेतैं? विषयतैं इंद्रियका संबंध, वा अंतःकर

वृत्तिका संबंध, प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है. यातैं पर्वतादिक विषय औ तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय; तथा अंतःकरण सारे अंतर उत्पन्न होवै हैं.

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ शुक्तिरजतादिकनकी नाईं साक्षीभास्य हैं, अंतःकरण इंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमैं उपयोग नहीं, यातैं ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं, तिनकीही उत्पत्ति स्वप्नमैं माननी योग्य है; ज्ञाता, ज्ञान औ इंद्रियनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं. तथापि जैसे स्वप्नमैं पर्वतादिक प्रतीत होवै हैं तैसैं इंद्रिय अंतःकरण प्राणसहित स्थूलशरीरभी स्वप्नमैं प्रतीत होवै है; यातैं तिनकीभी उत्पत्ति माननी चाहिये. किंवा, स्वप्नमैं पदार्थनविषे नेत्रादिकनकी विषयता भान होवै है. सो व्यावहारिक नेत्रादिकनकी विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिक पदार्थनविषे बनै नहीं. काहेतैं ? समसत्तावाले पदार्थही आपसमैं साधकबाधक होवै हैं. यह पंचमतरंगमैं प्रतिपादन करा है. यातैं व्यावहारिक नेत्रादिक शरीरमें हैंभी तिनतैं स्वप्नके पदार्थनकी विषमसत्ता होनेतैं तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वतादिनकूं बनै नहीं. किंवा व्यावहारिक जो इंद्रिय हैं, सो अपने अपने गोलकोंकूं त्यागके कार्य करनेमैं समर्थ होवैं नहीं. औ स्वप्नअवस्थामें हस्त पाद वाक्के गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीखै हैं; औ हस्तमैं द्रव्य ग्रहण करके पुकारता धावन करै है. यातैं स्वप्नमैं इंद्रियनकी उत्पत्ति अवश्य माननी चाहिये. तैसे सुखदुःख औ तिनका ज्ञान, तथा सुखदुःखज्ञानका आश्रय प्रमाता स्वप्नमैं प्रतीत होवै है. औ विना हुये पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं, यातैं सारा त्रिपुटीसमाज स्वप्नमैं उत्पन्न होवै है.

अनिर्वचनीय ख्यातिकी यह रीति है:—जितने भ्रमज्ञा हैं, तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं; विष बिना कोई ज्ञान होवै नहीं, यह सिद्धांत है. औ शास्त्र मतमैं तौ अन्य पदार्थका अन्यरूपतैं भान होवै, सो भ्र कहिये है. सिद्धांतमैं तौ जैसा पदार्थ होवै तैसाही ज्ञान हो है. यातैं भ्रमस्थलमैंभी विषयकी उत्पत्ति अवश्य होवै है विषयविना ज्ञान होवै नहीं. इस रीतिसैं स्वप्नमैं त्रिपुटी प्रतीति होनेतैं सारा समाज उत्पन्न होवै है ॥ ६ ॥

याके विषे ऐसी शंका होवै है कि:—स्वप्नके जो पदा प्रतीत होवै हैं, तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवै, तौ स्वप्नदृष्टांतसैं जाग्रत्के पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमैं कहे तैसे जाग्रत्के पदार्थनकी नाईं उत्पत्तिवाले होनेतैं स्वप्न पदार्थही सत्य हुये चाहिये. औ स्वप्नके प्रतीत पदा नकी उत्पत्ति नहीं मानैं तब यह दोष नहीं. काहे जाग्रत्के पदार्थ तौ उत्पन्न हुये प्रतीत होवै हैं, स्वप्नमैं पदार्थ बिना हुये प्रतीत होवै हैं. यातैं स्व बिना हुये पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवै है. ति उत्पत्ति माननी योग्य नहीं; ता—

शंकाका समाधान.

दोहा ।

साधनसामग्री विना, उपजै झूंठ सु होय ।
विन सामग्री ऊपजै, यूं तिहि मिथ्या जोय ।

टीका:—जिस वस्तुकी उत्पत्तिमैं जितना देशका सामग्री, साधन कहिये कारण है, उतनी सामग्री बिना

सो मिथ्या कहिये हैं. औ स्वप्नके हस्तीआदिकनकी उत्पत्तिके योग्य देश काल है नहीं. बहुत कालमें औ बहुत देशमें उपजनेयोग्य हस्तीआदिक क्षणमात्र कालमें सूक्ष्मकंठदेशमें उपजै हैं; यातैं मिथ्या हैं. यद्यपि स्वप्नअवस्थामें काल देशभी अधिक प्रतीत होवै है, तथापि अन्यपदार्थनकी नाईं स्वप्नमें अधिककाल औ अधिकदेशभी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. काहेतैं? विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं औ स्वप्नमें अधिकदेशकालका ज्ञान होवै है. व्यावहारिकदेशकाल न्यून है, यातैं प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. परंतु स्वप्नअवस्थामें उपजे जो प्रातिभासिक देशकाल, सो स्वप्नअवस्थाके हस्तीआदिकनके कारण नहीं. काहेतैं? कारण होवै सो पहले उपजै है, औ कार्य पीछे उपजै है. स्वप्नके देशकाल औ हस्ती आदिक एकही समयमें होवै हैं. यातैं तिनका कार्यकारणभाव बनै नहीं. औ व्यावहारिकदेशकाल न्यून हैं, हस्तीआदिकनके योग्यनहीं , यातैं देशकालरूप सामग्रीविना उपजै हैं. यातैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. औरभी मातासैं आदि लेके हस्तीआदिकनकी सामग्री स्वप्नमें नहीं है. यद्यपि स्वप्नमैं प्राणी पदार्थनके माता पिताभी प्रतीत होवै है; तथापि स्वप्नके माता पिता, पुत्रकी उत्पत्तिके कारण नहीं. काहेतैं ? माता, पिता औ पुत्र, एक क्षणमें साथ उपजै हैं, यातैं तिनका कार्यकारणभाव नहीं. जा निद्रासहित अविद्यासैं स्वप्नके पदार्थ उपजै हैं, सोई अविद्या तीन पदार्थनविषे मातापना पितापना औ पुत्रपना उपजावै है. इस रीतिसैं स्वप्नके पदार्थनकी उत्पत्तिमैं और कोई सामग्री नहीं; किंतु अविद्याही निद्रारूप दोषसहित कारण है. जो

दोषसहित अविद्यासैं जन्य होवै, सो शुक्तिरजतकी नाईं मिथ्या होवै है. यातैं स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं, मिथ्या हैं. तिनका उपादानकारण अंतःकरण है; अथवा साक्षात् अविद्याही तिनका उपदानकारण है. पहले पक्षमें साक्षीचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, औ दूसरे पक्षमें ब्रह्मचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है. इस रीतिसैं अंतःकरणका अथवा अविद्याका परिणाम और चेतनका विवर्त स्वप्न है ।

याके विषे ऐसी शंका होवै हैः—दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान कह्या, औ अविद्या उपाद्दानकरण कही. तहां अधिष्ठानज्ञानसैं कल्पितकी निवृत्ति होवै है. औ स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म है, यातैं ब्रह्मज्ञानबिनां अज्ञानीकूं जागरणमें स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये.

अन्य शंकाः—जैसे स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म, औ उपादानकारण अविद्या है; तैसे वेदांतसिद्धांतमें जाग्रत्के व्यावहारिकपदार्थनकाभी अधिष्ठान ब्रह्म है, औ उपादानकारण अविद्या है; यातैं जाग्रत्के पदार्थनकूं व्यावहारिक कहै हैं औ स्वप्नकूं प्रातिभासिक कहै हैं; ऐसा भेद नहीं हुआ चाहिये. काहेतैं? दोनोंका अधिष्ठान ब्रह्म है; औ उपादानकारण अविद्या है. यातैं जाग्रत् स्वप्न दोनों व्यावहारिक हुये चाहिये.

सो दोनों शंका बनै नहीं. काहेतैं ? प्रथम शंकाका यह समाधान हैः—निवृत्ति दो प्रकारकी होवै है, यह पूर्व ख्यातिनिरूपणमैं कही है. कारणसहित कार्यका विनाशरूप अत्यंत निवृत्ति तौ स्वप्नकी जाग्रत्में ब्रह्मज्ञानविना बनै नहीं. परंतु दंडके प्रहारतैं जैसे घटका मृत्तिकामें लय होवै है; तैसैं स्वप्नकी हेतु जो निद्रादोष ताके नाशतैं, वा स्वप्नकी विरोधी

जाग्रत्की उत्पत्तितैं अविद्यामें लयरूप निवृत्ति स्वप्नकी ब्रह्मज्ञान बिना संभवै है.

औ जो शंका करीः—"जाग्रत् स्वप्न दोनों समान हुये चाहियें" सो बनै नहीं. काहेतैं? जाग्रत्के देहादिक पदार्थोंकी उत्पत्तिमें तौ अन्य दोषरहित केवल अनादिअविद्याही उपादानकारण है, औ स्वप्नके पदार्थनमें तौ सादिनिद्रादोषभी अविद्याका सहायक है. यातैं अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्य व्यावहारिक कहिये है. और सादिदोषसहित अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहिये है. स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्याजन्य होनेतैं प्रातिभासिक हैं. औ जाग्रत्के पदार्थ अन्यदोषरहित अविद्याजन्य होनेतैं व्यावहारिक कहिये हैं. इस रीतिसैं स्वप्नके पदार्थनमैं जाग्रतपदार्थनतैं विलक्षणता है, परंतु यह संपूर्ण तीन प्रकारकी सत्ता मानके स्थूल दृष्टिसैं कही है, विचारदृष्टिसैं तौ तीन प्रकारकी सत्ता बनै नहीं, औ जाग्रत् स्वप्नकी परस्पर विलक्षणताभी बनै नहीं.

यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं पूर्व प्रकारतैं व्यावहारिक औ प्रातिभासिक पदार्थनका भेद कह्या है, यातैं तीन सत्ता मानी हैं, तैसैं विद्यारण्यस्वामीनेभी तीन सत्ता मानी हैं. काहेतैं? यह प्रसंग तिन्होंने लिख्या है किः—दो प्रकारके देहादिक पदार्थ हैं. एक तौ ईश्वररचित है सो बाह्य है. औ दूसरे जीवके संकल्परहित हैं, सो मनोमय कहिये हैं, औ अंतर हैं, तिन दोनोंमैं जीवसंकल्पतैं रचित, अंतर मनोमय साक्षीभास्य हैं. औ ईश्वररचित बाह्य है, सो प्रमाताप्रमाणके विषय हैं. औ अंतर मनोमयदेहादिकही जीवकूं सुखदुःखके

हेतु हैं, औ बाह्य जो ईश्वररचित है, सो सुखदुःखके हेतु नहीं यातैं मनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है. औ बाह्यप्रपंच, सुखदुःखका हेतु नहीं; यातैं ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं. जैसैं दो पुत्र विदेशमैं गये होवैं, तिनमैं एकका पुत्र मर जावै, एकका जीवता होवै, सो जीवता पुत्र बडी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसी पुरुषद्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूतिप्राप्तिका, औ द्वितीयके मरणका समाचार भेजै; तहां समाचार सुनावनेवाला दुष्ट होवै, यातैं जीवते पुत्रके पिताकूं कहै, तेरा पुत्र मर गया; औ मरे पुत्रके पिताकूं कहै, तेरा पुत्र शरीरतैं निरोग है, बडी विभूतिकूं प्राप्त हुआ है; थोडे कालमैं हस्ती आरूढ बडे समाजतैं आवैगा ता वंचक-वचनकूं सुनके जीवते पुत्रका पिता रोवै है, बडे दुःखको अनुभव करै है; औ मरे पुत्रका पिता बड़े हर्षकूं प्राप्त होवै है. इस रीतिसैं देशांतरविषे ईश्वररचित पुत्र जीवै है, तौभी मनोमय पुत्र मर गया, यातैं दुःख होवै है. ईश्वररचित जीवतेका सुख होवै नहीं. तैसैं दूसरेका ईश्वररचित पुत्र मरगया है, ताका दुःख होवै नहीं. मनोमय जीवै है, ताका सुख होवै है, यातैं जीवसृष्टिही सुखदुःखकी हेतु है, ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं. इस रीतिसैं **विद्यारण्यस्वामीने** जीवसृष्टि दो प्रकारकी कही है, तहां जीवसृष्टि प्रातिभासिक है, औ ईश्वरसृष्टि व्यावहारिक है, ऐसे और ग्रंथकारोंनेभी सत्ता तीन प्रकारकी कही है. चेतनकी परमार्थसत्ता है औ चेतनसैं भिन्न जड पदार्थनकी दो प्रकारकी सत्ता है. एक व्यावहारिक सत्ता, औ दूसरी प्रातिभासिक सत्ता है. सृष्टिके आदिकालमैं ईश्वर संकल्पतैं उपजे जो केवल अविद्याके कार्य, पंचभूत औ

तिनके कार्यकी व्यावहारिकसत्ता है. दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्न शुक्तिरजतादिकनकी प्रातिभासिक सत्ता है. इस रीतिसैं जाग्रत्पदार्थनकी व्यावहारिकसत्ता, औ स्वप्नकी प्रातिभासिकसत्ता कही है.

तथापि अनात्मपदार्थनकी सर्वकी प्रातिभासिकही सत्ता है, यातैं दो प्रकारकीही सत्ता है. चेतनकी परमार्थसत्ता और चेतनसैं भिन्न सकलअनात्माकी प्रातिभासिकही सत्ता है. जाग्रत्स्वप्नके पदार्थनकी किंचिन्मात्रभी विलक्षणता सिद्ध होवै नहीं. या उत्तम सिद्धांतकूं प्रतिपादन करै हैंः—

चौपाई—विन सामग्री उपजत यातैं ।
स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं ॥
देशकालको लेश न जामैं ।
सर्व जगत उपजत है तामैं ॥
स्वप्नसमान झूंठ जग जानहु ।
लेश सत्य ताकूं मति मानहु ॥
जाग्रतमाहिं स्वप्न नहिं जैसे ।
स्वप्नमाहिं जाग्रत नहिं तैसे ॥

टीकाः--देशकालसामग्रीविना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उपजै हैं यातैं मिथ्या कहिये हैं. तैसे आकाशादि प्रपंचकी सृष्टि ब्रह्मतैं होवै है, ता ब्रह्मविषे देशकालका लेशभी नहीं है. स्वप्नविषे हस्तीपर्वतादिकनके योग्य तौ देशकाल नहीं है, तथापि अल्पदेशकाल है; तैसे आकाशादिकनकी सृष्टिमैं अल्पदेशकालभी नहीं है; काहेतैं? देशकालरहित परमात्मासैं आकाशादिकनकी सृष्टि कही है. इस कारणतैं तैत्तिरीय-

श्रुतिमैं आकाशादिकनकी क्रमतैं सृष्टि कही है, देशका-
लकी सृष्टि नहीं कही. औ सूत्रकार भाष्यकारनेभी देश-
कालकी सृष्टि नहीं कही. सृष्टि नाम उत्पत्तिका है. तहां
तैत्तिरीयश्रुतिका औ सूत्रकार भाष्यकारका यही अभिप्राय
हैः--आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्रीविना
होवै है; यातैं आकाशादिक स्वप्नकी नाईं मिथ्या है.

यद्यपि **मधुसूदनस्वामीने** देशकाल साक्षात् अवि-
द्याके कार्य कहे हैं. यातैं मायाविशिष्ट परमात्मासैं पहलैं
मायाके परिणाम देशकाल होवै हैं. तिसतैं अनंतर आ-
काशादिकनकी उत्पत्ति होवै है यातैं योग्यदेशकालतैं
आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है.

तथापि **मधुसूदनस्वामीका** यह अभिप्राय नहीं:--कि
देशकाल प्रथम होवै हैं; औ आकाशादिक उत्तर होवै हैं.
काहेतैं ? अतीतकालमें होवै सो प्रथम औ पूर्व कहिये है. औ
भविष्यकालमें होवै सो उत्तर कहिये है; जाकूं पीछे कहे हैं.
आकाशादिकनकी उत्पत्तितैं प्रथम देश काल उपजै हैं. ये
कहनेतैं आकाशादिकनकी उत्पत्तिकालतैं पूर्वकाल उपहित
परमात्मा देशकालका अधिष्ठान है; यह सिद्ध होवैगा. यातैं
देशकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकालकी अपेक्षा होवैगी औ कालकी
उत्पत्तिविना पूर्वकाल असिद्ध है. यातैं आकाशादिकनकी
पूर्वकालमैं देशकालादिक होवै हैं; यह कहना बनै नहीं. किंतु

मधुसूदन स्वामीका यह अभिप्राय है किः--जैसैं भूत
भौतिक प्रपंच प्रतीत होवै हैं, तैसैं देशकालभी प्रतीत होवै हैं
औ आत्मासैं भिन्न कोई नित्य है नहीं. यातैं देश काल नित्य
नहीं. औ बिना हुयेकी प्रतीति होवै नहीं. यातैं आकाशादिक

नकी नाईं देशकालकीभी उत्पत्ति होवै है. सो देशकाल मायाके परिणाम हैं; औ चेतनके विवर्त्त हैं. जो विवर्त्त होवै सो किसीका कारण होवै नहीं. यातैं आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमैं देशकालकूं कारणता बनै नहीं. किंवा, कारण प्रथम होवै है, कार्य उत्तर होवै है. आकाशादिक प्रपंचतैं देशकाल प्रथम होवै है, यह कहना बनै नहीं, यह वार्त्ता नेडेही कहि आये हैं. यातैंभी देशकालकूं आकाशादिक प्रपंचकी कारणता बनै नहीं, किंतु स्वप्नके पितापुत्रकी नाईं देशकाल-सहित आकाशादिक प्रपंच मायाविशिष्ट परमात्मातैं उत्पन्न होवै है. औ कोई पदार्थ किसी देशमें किसी कालमैं उपजै है, अन्यदेशमें अन्यकालमें नहीं उपजै है. इस रीतिसैं सारे पदार्थ प्रलयकालमैं नहीं उपजै हैं; सृष्टिकालमैं उपजै हैं. यातैं देशकालकूं कारणता प्रतीतभी होवै है, तौभी जा मायातैं देशकालसहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है, ता माया-तैंही देशकालमें कारणता, अन्य प्रपंचमे कार्यता प्रतीत होवै है; औ आकाशादि प्रपंचके देशकालतैं कारण नहीं. याके विषे,

ऐसी शंका होवै है कि--विना हुये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवै नहीं. औ सिद्धांतमें अंगीकार नहीं. जो बिना हुयेकी प्रतीति मानैं, तौ असत्ख्यातिका अंगीकार होवैगा औ विना हुये वंध्यापुत्र शशशृंगादिनकी प्रतीति हुई चाहिये. यातैं विना हुयेकी प्रतीति होवै नहीं. यातैं देशकालमैं कारणता नहीं होवै, तो देशकालमैं सर्व पदार्थनकी कारणता मायाके बलतैंभी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. औ कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै, यातैं देशकाल सर्वप्रपंचके कारण हैं. औ जो सिद्धांती ऐसे कहै कि:--सर्वप्रपंचका कारण ब्रह्म है.

ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै है. औ देशकालमें
कारणता नहीं, सोभी बनै नहीं. काहेतैं ? जैसे देशकालका
अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसे सर्व प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है. देश-
कालमेंही ब्रह्मकी कारणता प्रतीत होवै, अन्यमैं नहीं; ऐसे
काहनेमें कोई हेतु नहीं. यातैं अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता
देशकालमें प्रतीत होवै तौ ब्रह्म सर्वप्रपंचका अधिष्ठान है
यातैं सर्वप्रपंचमें कारणता प्रतीत हुई चाहिये; किसीमें का-
णता, किसीमें कार्यता, ऐसा भेद नहीं चाहिये. किंवा देश-
कालमें कारणता नहीं औ ब्रह्ममें कारणता है, सो ब्रह्मकी
कारणता देशकालमें प्रतीत होवै है. या कहनेतैं अन्यथा-
ख्यातिका अंगीकार होवैगा. काहेतैं ? अन्यवस्तुकी अन्यरू-
पतैं प्रतीतिकूं **अन्यथाख्याति** कहै हैं. देशकाल कारण नहीं
यातैं कारणतैं अन्य कारण है तिनकी अन्यरूपतैं कहिं
कारणरूपतैं प्रतीति माननेमैं **अन्यथाख्याति**का अंगीकार
होवैगा; और सिद्धांतमैं **अन्यथाख्याति** अंगीकार नहीं.
या स्थानमें **अन्यथाख्याति** मानै तौ शक्तिमें अनिर्वचनी-
यरूपकी उत्पत्ति सिद्धांतमें मानी है, सो निष्फल होवैगा.
काहेतैं ? अन्यथाख्यातिमें दो मत हैं:--एक तो अन्यदेश-
स्थित पदार्थकी अन्यदेशमें प्रतीति अन्यथाख्याति. जैसैं
कांताकरमें स्थित रजतका सन्मुख शुक्तिदेशमें प्रतीति अन्य-
थाख्याति. अथवा अन्यपदार्थकी अन्यरूपतैं प्रतीति
अन्यथाख्याति. जैसैं शुक्तिकीही रजतरूपतैं प्रतीति अन्य-
थाख्याति. ऐसे सारे भ्रमस्थलमें अन्यथाख्यातिसैं निर्वाह
संभवै है. अनिर्वचनीय रजतादिकनकी उत्पत्तिका कथन
असंगत होवैगा. औ,

सिद्धांती ऐसे कहै किः—विषयके समानाकारज्ञान होवै है. अन्यवस्तुका अन्यरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं. यातैं रजताकारज्ञानका विषयभी अनिर्वचनीयरजत उत्पन्न होवै है. या अद्वैतसिद्धांतमें कारणतैं अन्य जो देशकाल तिनविषे ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान संभवै नहीं. यातैं देशकालमैं कारणता जो प्रतीत होवै है, ताकी बिना हुयेका अथवा ब्रह्ममैं स्थितका भान संभवै नहीं, किंतु देशकालमेंही कारणता है; ताका भान होवै है. इस रीतिसैं "आकाशादिक प्रपंचके कारण देशकाल नहीं" यह कथन असंगत है.

सो शंका बनै नहीं. काहेतैं ? ब्रह्मकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवै है. जैसे जपापुष्पसंबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है. अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्नकालमें मिथ्याहस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीत होवै है. तहां स्फटिकमें अनिर्वचनीयरक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नहीं; किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. यातैं श्वेतस्फटिककी रक्तरूपतैं प्रतीति होनेतैं रक्तताके ज्ञानमें अन्यथाख्यातिही मानी है. तैसे स्वप्नमें मिथ्यापदार्थनविषे सत्यता प्रतीत होवै, तहां अनिर्वचनीयसत्यता तिन पदार्थनविषे उत्पन्न होवै है. यह कथन तौ "सत्य, मिथ्या है" इस (व्याघातदोषवाले) वचनकी नाईं संभवै नहीं. औ बिना-हुयेकी प्रतीति होवै नहीं. किंतु स्वप्नके अधिष्ठानचेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थनमैं प्रतीत होवै है. यातैं मिथ्यापदार्थनकी सत्यरूपतैं प्रतीति होनेतैं सत्यताके ज्ञानमैं अन्यथाख्यातिही मानीहै. तैसे अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमैं अन्यथाख्यातिसैं प्रतीत होवै है. और,

जो ऐसे कहैं:--इतने स्थानमें अन्यथाख्याति मानें तौ सारे भ्रममैं अन्यथाख्यातिही माननी चाहिये. सो संभवै बनै नहीं.काहेतैं? शुक्तिरजतादिकनमें अन्यथाख्याति माननेमें यह दोष कह्या है:--विषयतैं विलक्षण ज्ञान बनै नहीं औ जहां स्फटिकमैं रक्तताका ज्ञान होवै, तहां रक्तपुष्पका स्फटिकतैं संबंध है. यातैं स्फटिकसंबंधी पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. काहेतैं अंतःकरणकी वृत्ति जो रक्तपुष्पाकार होवै, ताही वृत्तिका विषय रक्तपुष्पसंबंधी स्फटिक है; यातैं पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है और शुक्तिका तौ रजतरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं. काहेतैं? शुक्तिदेशमें अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिक रजत तौ अन्यमतमें है नहीं, किंतु शुक्ति है ता शुक्तिके संबंधसैं शुक्तिके समानाकारही अंतःकरणकी वृत्ति होवैगी. रजताकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै नहीं. यातैं अविद्याका परिणाम, चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत, औ ताका ज्ञान, दोनों उत्पन्न होवै है औ स्फटिकमें रक्तता प्रतीत होवै, तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक औ रक्तपुष्प दोनोंसैं होवै है, रक्तपुष्पके संबंधतैं रक्ताकारवृत्ति होवै है. तां वृत्तिका स्फटिकतैंभी संबंध है. औ स्फटिकमें रक्तताकी छाया है, यातैं पुष्पका धर्म रक्तता स्फटिकमें ताही वृत्तिका विषय है. इस रीतिसैं जहां दोनों पदार्थनका संबंध है, तहां एकके धर्मकी दूसरेमें प्रतीति संभवै है. तहां अन्यथाख्यातिही संभवै है. जहां दोनों पदार्थनका संबंध नहीं, तहां अन्यथाख्याति नहीं; किंतु अनिर्वचनीयख्याति है. जैसैं पुष्पसंबंधी स्फटिकमैं पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है, तैसैं स्वप्नके हस्तीपर्वतादिकनकाभी अधि-

ष्ठानचेतनतैं संबंध है. यातैं चेतनका धर्म सत्यताभी चेतनसंबंधी हस्ती पर्वतादिकमें प्रतीत होवै है; सो अन्यथाख्याति है. तैसैं अधिष्ठानचेतनका धर्म कारणता अधिष्ठानचेतनसंबंधी देशकालमें प्रतीत होवै है.

और जो पूर्व शंका करीः—"अधिष्ठानचेतनका संबंध सर्व प्रपंचतैं है. जो संबंधीका धर्म अन्यथाख्यातिसैं अन्यमें प्रतीत होवै, तौ चेतनकी कारणता सर्व प्रपंचमें प्रतीत हुई चाहिये." सो शंका बनै नहीं. काहेतैं? जैसैं स्वप्नमें दो शरीर उत्पन्न होवै हैं. एक शरीर पितारूप प्रतीत होवे है, औ दूसरा शरीर पुत्ररूप प्रतीत होवै है. तहां दोनों शरीरनका स्वप्नके अधिष्ठानचेतनतैं संबंधभी है; तथापि पिताशरीरमें अधिष्ठानचेतनकी कारणता प्रतीत होवै है, औ पुत्रशरीरमें कारणता प्रतीत होवै नहीं, किंतु पिताजन्य पुत्र है; इस रीतिसैं पुत्रशरीरमें कार्यता प्रतीत होवै है.इस रीतिसैं अधिष्ठानचेतनसैं संबंध तौ सर्वका है, तथापि देशकालमें चेतनधर्मकारणताकी प्रतीति होवै है; औरनमें कार्यताकी प्रतीति होवै है. अथवा-

अधिष्ठानचेतन असंग है,सो किसीका परमार्थतैं कारण नहीं. मायामें आभास यद्यपि कारण है, तथापि आभासका स्वरूप मिथ्या होवै है. जो आपही मिथ्या होवै सो दूसरेका कारण बनै नहीं. यातैं परमात्माविषे प्रपंचकी कारणता होवै, तौ ताकी देशकालमें भ्रमतैं प्रतीति संभवे, सो परमात्माविषे कारणता है नहीं. परमात्मा, कारणतादिक धर्मरहित असंग है. ताकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवै है; यह कहना संभवै नहीं. किंतु मायाकृत अनिर्वचनीय देशकाल अनिर्वचनीय कारणतावाले होवै हैं. औ परमार्थसैं देशका

कारण नहीं. जैसैं पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमैं पुत्र पौत्र दोनोंकूं देखै; तहां पुत्रपौत्रशरीर अनिर्वचनीय होवै है, औ पुत्र-शरीरमें पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीय कारणता होवै है. तहां परमार्थसैं पुत्रशरीर औ पौत्रशरीरका परस्पर कार्य-कारणभाव नहीं होवै है. तैसैं अनिर्वचनीयकारण देशकाल प्रतीत होवै है, परमार्थसैं देशकाल औ आकाशादिक प्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं. इस रीतिसैं देशकाल साम ग्रीबिना जाग्रत्प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है. यातैं स्वप्नकी नाई जाग्रत्भी मिथ्या है औ जैसैं स्वप्नके स्त्रीपुत्रादिक स्वप्नमें सुखदुःखके हेतु हैं,जागृतमैं तिनका आभाव है,तैसैं जागृतके पदार्थनका स्वप्नमैं अभाव होवै है. दोनों सम हैं. और-

जो ऐसैं कहैं:--जाग्रत्सैं स्वप्न होयके फिर जाग्रत होवै तहां, पहली जाग्रतसैं जो पदार्थ है, सोई स्वप्नव्यवहित दूसरे जाग्रत्में रहे है. औ प्रथम स्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमें नहीं रहै हैं. यातैं स्वप्नमें पदार्थनतैं जाग्रतके पदार्थ विलक्षण हैं.

सो शंकाभी सिद्धांतके अज्ञानी मूढनकी दृष्टितैं होवै है. काहेतैं? ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है. संसारप्रवाह अनादि है, तामैं जीवनकूं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति होवै है. जाग्रत्कालमैं स्वप्नसुषुप्ति नष्ट होवै है, औ स्वप्नकालमैं जाग्रतसुषुप्ति नष्ट होवै हैं. तैसैं सुषुप्तिकालमें जाग्रत्स्वप्न नष्ट होवै हैं. परंतु स्वप्नसुषुप्ति होवै, तब जाग्रत्कालके स्त्रीपुत्रपशुधनादिक दूर होवै नहीं; किंतु बने रहैं, तिनका ज्ञानही दूर होवै है. फिर जागृत होवै तब प्रथम जागृतके विद्यमान पदार्थनका ज्ञान होवै है. यह अज्ञानी मूर्खनकी दृष्टि है. औ,

सिद्धांत यह है:—सारे पदार्थ चेतनका विवर्त हैं. अविद्याका परिणाम है. यातैं शुक्तिरजतकी नाईं जिसकालमैं जो पदार्थ प्रतीत होवै, तिसकालमैं अधिष्ठानचेतन आश्रित अविद्याका द्विविध परिणाम होवै है. अविद्याके तमोगुण अंशका घटादि विषयरूप परिणाम होवै है. औ अविद्याके सत्त्वगुणका ज्ञानरूप परिणाम होवै है. यद्यपि चेतनकूं ज्ञान कहै हैं. यातैं सत्वगुणका परिणाम ज्ञान है, यह कहना बनै नहीं; तथापि सारे व्यापक चेतन ज्ञान नहीं किंतु साभासवृत्तिमैं आरूढ चेतनकूं ज्ञान कहै हैं. यातैं चेतनमैं ज्ञान व्यवहारकी संपादक वृत्ति है. इस रीतिसैं चेतनमैं ज्ञानपनेकी संपादकवृत्ति है. इस रीतिसैं चेतनमैं ज्ञानपनेकी उपाधिवृत्ति है. ताके विषेभी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है. जैसे लोकमैं कहै हैं, "घटका ज्ञान उत्पन्न हुवा, पटका ज्ञान नष्ट हुवा." तहां वृत्तिमैं आरूढ चेतनका तौ उत्पत्ति नाश संभवै नहीं वृत्तिके उत्पत्ति नाश होवै हैं औ ज्ञानके उत्पत्ति नाश कहै हैं. यातैं वृत्तिमैंभी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है. सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुणका परिणाम है; यह कहना संभवै है. ता वृत्तिरूप परिणाममैं चेतनका आभास होवै है, घटादिक विषयरूप परिणाममैं चेतनका आभास होवै नहीं. काहेतैं? विषय औ वृत्ति यद्यपि दोनों अविद्याके परिणाम हैं, तथापि घटादिक विषय तौ अविद्याके तमोगुणके परिणाम हैं, यातैं मलिन हैं, तिनमैं आभास होवै नहीं. औ वृत्ति, सत्त्वगुणका परिणाम स्वच्छ है, तामैं आभास होवै है. इस रीतिसैं वृत्तिकूं चेतनके आभास ग्रहणकी योग्यता होनेतैं, वृत्तिअवच्छिन्न चेतनकूं ज्ञान कहै हैं; औ साक्षी कहै हैं. घटादिक विषयकूं

आभासग्रहणकी योग्यता नहीं इस कारणतैं विषय अवच्छिन्न चेतन ज्ञान नहीं; औ साक्षीभी नहीं. इस रीतिसैं जाग्रत्के पदार्थ औ तिनका ज्ञान दोनों साथही उत्पन्न होवै हैं, औ साथही नष्ट होवै हैं. यह वेदका गूढ सिद्धांत है. यातैं जाग्रत्के पदार्थ दूसरी जाग्रतमैं रहै हैं; यह कहना संभवै नहीं.

यद्यपि स्वप्नतैं जागे पुरुषकूं ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवै है "जो पूर्वपदार्थ थे, सोई यह पदार्थ हैं." यातैं जाग्रत्के पदार्थनका ज्ञानके समकाल उत्पत्तिनाश नहीं होवै है, किंतु ज्ञानसैं प्रथम विद्यमान होवै है, औ ज्ञाननाशतैं, अनंतरभी रहै है.

तथापि जैसे स्वप्नके पदार्थ तिस क्षणमैं उत्पन्न होवै हैं; औ ऐसे प्रतीत होवै हैं:—"मेरे जन्मसे प्रथम उपजे ये पर्वतसमुद्रादिक हैं." तहां तत्काल उपजे पदार्थनमैं बहुकाल स्थिरताकी भ्रांति होवै है. यातैं जा अविद्याने मिथ्यापर्वत समुद्रादिक उपजाये हैं, तिसी अविद्यासैं बहुकाल स्थिरता औ स्थिरताकी प्रतीति अनिर्वचनीय उपजै है. तैसे जाग्रत्के पदार्थनविषेभी अनेकदिन स्थिरता है नहीं; किंतु अविद्याबलसैं मिथ्यास्थिरताभी तिन पदार्थनके साथ उपजके प्रतीत होवै है. और,

जो ऐसे कहैः—स्वप्नके पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम हैं; औ जाग्रत्के पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम नहीं. किंतु घटकी उत्पत्ति दंड चक्र कुलालसैं होवै है. तैसे सर्व पदार्थनकी उत्पत्ति अपने अपने कारणतैं होवै है; साक्षात् अविद्यासैं नहीं. जो साक्षात् अविद्याके परिणाम

होवैं, तौ आकाशादिक क्रमतैं पंचभूतनकी उत्पत्ति औ पंचीकरण, तिनसैं ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिमैं कही है; सो असंगत होवैगी. यातैं ईश्वरसृष्टि जाग्रत्‌के पदार्थ अपने अपने उपादानके परिणाम हैं, अविद्याके साक्षात् परिणाम नहीं. स्वप्नके तौ सारे पदार्थ अविद्याके परिणाम हैं. तिनका एक अविद्या उपादान होनेतैं, तिन पदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकी एक अविद्यासैं, एक कालमैं उत्पत्ति संभवै है. जाग्रत्‌के पदार्थ भिन्न भिन्न कारणसैं उत्पन्न होवै हैं. कार्यतैं पहले कारण होवै है औ कारणमैं कार्यका लय होवै है. यातैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम औ घटनाशतैं आगे मृत्पिंड रहै है, इस रीतिसैं कोई पदार्थ अल्पकाल स्थिर औ कोई अधिककाल स्थिर कार्यकारण है; तैसे स्वप्नके नहीं.

सो शंका बनै नहीं. काहेतैं? जाग्रत्‌के पदार्थनकी नाईं स्वप्नके पदार्थनविषेभी कार्यकारणभाव प्रतीत होवै है. जैसे किसीकूं ऐसा स्वप्न होवै किः--मेरी गऊके बच्छा हुवा है, अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुवा है. तहां गऊ और स्त्रीविषे कारणताकी प्रतीति, औ बहुकाल स्थायिताकी प्रतीति होवै है. वत्स औ पुत्रविषे कार्यता औ अल्पकालस्थिरता प्रतीत होवै है, औ सारे समकाल हैं, कोई किसीका कारण नहीं; किंतु गऊ वत्स स्त्री अनादिकनका अविद्याही उपादान है. तैसे जाग्रत्‌विषेभी कोई अधिककालस्थायी कारणरूपतैं; कोई न्यूनकाल स्थायी कार्यरूपतैं प्रतीत स्वप्नकी नाईं होवै है. कोई किसीका परस्पर कार्यकारण नहीं; किंतु साक्षात् अविद्याके कार्य हैं. और,

श्रुतिविषे जो क्रमसे सृष्टि कही है, तहां सृष्टिप्रतिपा-

दनमैं श्रुतिका अभिप्राय नहीं; किंतु अद्वैतबोधनमैं अभिप्राय है. सारे पदार्थ परमात्मासैं उपजै है; यातैं ताके विवर्त हैं. जो जाका विवर्त होवै सो ताकाही स्वरूप होवै है. यातैं सारा नामरूप ब्रह्मतैं पृथक् नहीं; ब्रह्मही है. इस अर्थबोधन करनेकूं सृष्टि कही है, सृष्टिका और प्रयोजन नहीं. तहां क्रमका जो कथन है, सो स्थूलदृष्टिकूं विपरीतक्रमतैं लय चिंतनके निमित्त हैं, ताकाभी अद्वैतबोधही प्रयोजन है. यातैं क्रमकथनमैंभी अभिप्राय नहीं, सृष्टिमैं क्रम नहीं है, किंतु सारे पदार्थ एक अविद्यासैं उपजै हैं, तिनका परस्पर कार्यकारणभाव औ पूर्व उत्तरभाव, अविद्याकृतस्वप्नकी नाई मिथ्या प्रतीत होवै है. औ श्रुतिने तिनकी आपसमैं कार्यकारणता औ पूर्वउत्तरता कही है; सो लयचिंतनके निमित्त कही है. ध्यानमैं यह नियम नहीं, जैसा स्वरूप होवै तैसाही ध्यान होवै है. यातैं जाग्रतके पदार्थनका आपसमैं कारणकार्यभाव नहीं. किंतु,

सारे पदार्थ साक्षात् अविद्याके कार्य हैं, शुक्तिरजतकी न्याई वा स्वप्नकी न्याई अविद्याकी वृत्ति उपहितसाक्षीतैं तिनका प्रकाश होवै है, यातैं सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं औ ज्ञानाकार औ ज्ञेयाकार अविद्याका परिणाम एकही कालमैं उपजै है, साथही नष्ट होवै है. यातैं जब पदार्थकी प्रतीति होवै, तबही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवै है. अन्यकालमैं नहीं होवै है. याहीकूं दृष्टिसृष्टिवाद कहै हैं.

या पक्षमैं पदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं, ज्ञातसत्ता है. अद्वैतवादमैं यह सिद्धांतपक्ष है, या पक्षमैं दो सत्ता हैं; तीन नहीं. काहेतैं ? अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी नाई प्रातिभासिक

हैं. प्रतीतिकालमैं भिन्नकालमैं अनात्माकी सत्ता नहीं. यातैं तीसरी व्यावहारिकसत्ता नहीं. या पक्षमैं सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं. प्रमाताप्रमाणका विषय कोईभी नहीं. काहेतैं? अंतःकरण औ इंद्रिय तथा घटादिक, सारी त्रिपुटी औ ज्ञान स्वप्नकी नाईं एककालमैं उपजै हैं; तिनका विषयविषयी-भाव बनै नहीं. जो घटादिक विषय औ नेत्रादिक इंद्रिय, तैसे अंतःकरण ये ज्ञानतैं प्रथम होवैं; तौ नेत्रादिद्वारा अंतः-करणकी वृत्तिरूप ज्ञान प्रमाणजन्य होवै. अंतःकरण, इंद्रिय, विषय, तीनों ज्ञानके पूर्वकालमैं हैं नहीं; किंतु ज्ञानसमका-लही स्वप्नकी नाईं त्रिपुटी उपजै है. यातैं त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोईभी नहीं तथापि ज्ञानविषे स्वप्नकी नाईं त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवै है. यातैं जाग्रत्के पदार्थ साक्षीभास्य हैं. प्रमाण-जन्यज्ञानके विषय नहीं, यातैंभी स्वप्नके समान मिथ्या हैं. किंवा जाग्रत्मैं कितने पदार्थनकूं मिथ्यारूपकरके जानै हैं, औरनकूं सत्यरूपकरके ऐसे जानै हैं:—अनादिकालके पदार्थ हैं, तिनमैं कोई नष्ट होवै है और तिसके समान उत्पन्न होवै है. ऐसे प्रपंचधाराका उच्छेद कभी होवै नहीं. जाकूं ज्ञान होवै है, ताकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै नहीं, औ-रनकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै है. ता ज्ञानके साधन वेद गुरु हैं. तिनतैं परमसत्यकी प्राप्ति होवै है; ऐसी प्रतीति जाग्रत्मैं होवै है. तहां किसी पदार्थमैं मिथ्यापना, किसीमैं नाश, किसीमैं उत्पत्ति, वेदगुरुतैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति; ये सारी अ-विद्याकृत स्वप्नकी नाईं मिथ्या है. वासिष्ठमैं ऐसे अनंत इति-हास कहे हैं. क्षणमात्रके स्वप्नमैं बहुकाल प्रतीति होवै, औ जाग्रत्की नाईं स्थायी पदार्थ प्रतीत होवैं, औ तिनतैं बहुत

काल भोग होवै; यातैं जाग्रत् पदार्थकी स्वप्नतैं किंचित् विलक्षणता नहीं किंतु आत्मभिन्न सर्व मिथ्या है ॥ १० ॥

शिष्य उवाच।

दोहा।

लाख हजारन कल्पको, यह उपज्यो संसार ॥
यातैं ज्ञानी मुक्त ह्वै, बंधे अज्ञ हजार ॥ ११ ॥
झूठो स्वप्नसमान जो, क्षण घटिका ह्वै याम ॥
बद्ध कौन को मुक्त है, श्रवणादिक किह काम ॥ १२ ॥

टीकाः—ईश्वरसृष्टि अनंतकल्पतैं अनादि है तामैं ज्ञानी मुक्त होवै है, अज्ञानीकूं बंध रहै है. जो स्वप्नसमान होवै तौ स्वप्न एकक्षण घड़ी तथा पहर होवै है; तैसै संसारभी क्षण अथवा घड़ी वा पहरकाल, वा किंचित् अधिक काल होवैगा. स्वप्नकी नाईं स्वल्पकाल स्थायी संसार होवै, तौ अनादिकालका बंध नहीं होवैगा. बंधनिवृत्ति मोक्षके निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे.

यद्यपि पूर्वउक्त सिद्धांतमैं, बंध मोक्ष वेद गुरु अंगीकार नहीं, किंतु चेतन नित्यमुक्त है. अविद्याके परिणाम चेतनमैं नाना विवर्त्त होवै हैं; तातैं आत्मरूपकी किंचिन्मात्रभी हानि नहीं. आत्मा सदा असंग एकरस है. आजतोडी कोई मुक्त हुवा नहीं; आगे होवै नहीं, किंतु चेतन नित्यमुक्त है. अविद्या औ ताके परिणामका चेतनसैं किसीकालमैं संबंध नहीं, यातैं बंध औ वेदगुरुश्रवणादिक, औ समाधि तथा मोक्ष, इनकी प्रतीतिभी स्वप्नकी नाईं अविद्याजन्य है, यातैं मिथ्या

है. इन विषे बहुतकालस्थायिताभी अविद्याजन्य है, तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानके स्थूलदृष्टिका प्रश्न है ॥११॥१२॥

गुरुवाक्य।

दोहा।

अग्रधदेवकूं स्वप्नमें, भ्रम उपज्यो जिहिं रीति ॥
शिष तोकूं यह ऊपजी, बंधमोक्ष परतीति ॥१३॥

टीकाः—हे शिष्य ! जैसे निद्रादोषतैं स्वप्नमैं, अध्यापक, अध्ययन, वेद, शास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र औ अध्ययनकर्त्ता, कर्म, औ तिनका फल प्रतीत होवै है, औ तिन सर्वपदार्थनमैं सत्यताकी भ्रांति होवै है; तथापि सो स्वप्नके सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तैसैं जाग्रत्के सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तिनविषे सत्यताप्रतीति भ्रम है. दोहेमैं बंधमोक्ष ग्रहणतैं सर्व अनात्माका ग्रहण है. जैसे तेरेकूं हम गुरु प्रतीत होवै हैं, वेदअर्थका बंधविघातक उपदेश करै हैं, सो तेरेकूं मिथ्याप्रतीति है. जैसे अग्रधदेवकूं स्वप्नमैं मिथ्याप्रतीतिके विषय, गुरुवेदादिक अनिर्वचनीय उपजे हैं; तैसे तेरी प्रतीतिके विषे मेरेसैं आदि लेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या हैं. सो,

अग्रधदेवको ऐसा स्वप्न हुवा हैः—एक अग्रध नाम देवता अनादिकालका निद्रामैं सोवता हुवा स्वप्नकूं देखता भया. ता स्वप्नमैं तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई किः—मैं चंडाल हूं, औ महादुःखी हूं औ अस्थि-मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेद वीर्यरूप सप्तधातुसें मेरा मुख भऱ्या है. औ महाघोर भयंकर सर्पहस्तीआदिकसें युक्त जो वन, ताकेविषे मैं भ्रमण करूं हूं. सो देवता भ्रमण कर्त्ता हुवा ता वनमैं अनंत-

स्थान देखता हुवा. कहूं नानाभयंकर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूं धावन करै हैं. औ कहूं राधिरुधिरसैं भरे कुंड हैं; तिन्हमैं पड़े प्राणी हाहाकारशब्द करै हैं, और कहूं लोहेके तप्तस्तंभ हैं, तिनसैं बँधे पुरुष रोवै हैं, औ कहूं तप्तवालुकायुक्त मार्ग होइके नग्नपादपुरुष जावै हैं, औ तिन पुरुषनकूं राजभट लोहमयदंडनसैं ताडना करै हैं. इस रीतिसैं नाना जो भयंकर स्थान हैं, तिनकूं सो देवता देखता हुवा औ कदाचित् आपभी अपराधकरके स्वप्नमैं तिन्ह दुःखनकूं प्राप्त होता भया. औ,

कहूं दिव्य स्थान देखता हुवा तिन्ह स्थाननमैं उत्तमदेव विराजै हैं. तिन्ह देवनके दिव्यभोग हैं. अमृतके दर्शनमात्रसैं तिन्हकूं तृप्ति रहै है. क्षुधातृषाकी बाधा तिन्ह देवनकूं होवै नहीं. औ मलमूत्ररहित जिनका प्रकाशमान शरीर है, औ उत्तमविमानमैं स्थित होयके कोई देव रमण करै हैं, सो विमान ता देवकी इच्छाके अनुसार गमन करै है, औ कहूं रंभा-उर्वशीसैं आदि लेकें अप्सरा नृत्य करै हैं. तिन्हके संपूर्ण अंग-दोषरहित हैं. औ संपूर्ण स्त्रीगुणयुक्त हैं, उत्तमसुगंध तिनके शरीर सकामकी प्रकाशक आवै हैं. औ कहूं तिनसैं देव रमण करै हैं. औ कदाचित् आपभी देवभावकूं प्राप्त होयके, तिनसैं वहुतकाल रमण करै है. औ कदाचित् तिन अप्सरानसैं दिव्यस्थानमैं रमण करता हुवा अकस्मात् रुधिरमलपूरित जो कुंड हैं, तिनविषे मज्जन करै है. औ,

एक स्थानमें सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है. ताके आज्ञाकारी अनुचर ताके आगे स्थित हैं. कितने पुरुषकूं

सो अधिपति औ ताके अनुचर सौम्यरूप प्रतीत होवै हैं. औ कितने पुरुषकूं महाभयंकर रूप प्रतीत होवै है. औ ता वनमैं स्थित पुरुषनकूं कर्मके अनुसार फल देवै हैं इस रीतिसैं अग्रध नाम देवता स्वप्नकालमैं नाना जो स्थान हैं, तिनकूं देखता हुवा. औ कहूं अन्यस्थानमैं ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करै हैं. औ कहूं यज्ञशालामैं उत्तर कर्म करै हैं. औ कहूं उत्तम नदी बहै हैं, तिनमैं पुण्यके निमित्त लोग स्नान करै हैं. औ कहूं ज्ञानवान् आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करै हैं. ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके ता वनसैं निकस जावै है.

इस रीतिसैं स्वप्नविषे अग्रध नाम देवता क्षणमात्रमैं नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमैं देखता हुवा, ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्नमैं हुई:—जो मैं अनंतकालका या वनमैं स्थित हूं, या वनका कभी उच्छेद होवै नहीं. कदाचित् बागवान् चार-मुखनमैं नानाबीज निकासके वनकी उत्पत्ति करै है, औ जलसेचनसैं पालन करै है, औ कदाचित् घोरहास्यकरके मुखसैं अग्नि निकासके वनका दाह करै है. वनकी उत्पत्तिके संग मेरी उत्पत्ति होवै है, औ वनके दाहसंग मेरा दाह होवै है. औ सर्व वनका दाह करके सो बागवान् एकही रहै है. ताके शरीरमैं वनके बीज रहै है. यह प्रतीति स्वप्न वेदके श्रवणसैं ता अग्रध देवताकूं स्वप्नहीविषे हुई. तब,

वारंवार अपना जन्ममरण सुनके ताने विचार किया कि, किसी प्रकारसे वनके बाहर निकस जाऊं औ वनके बाहर नहींभी निकसूं, तोभी चांडालभाव मेरा दूर होय जावै औ देवभाव सदा बन्या रहै. सो और तौ कोई उपाय वनतैं निकसनेका है नहीं. ब्रह्मविद्याके उपदेश करनेवाले

आचार्य अपने शिष्यकूं वनके बाहर निकासैं हैं. यह विचारके आचार्यकूं स्वप्नकालमैंही सो अग्रध देवता प्राप्त हुवा. सो विधिपूर्वक प्राप्त हुआ जो शिष्य, ताकूं आचार्य देववाणरूप मिथ्याग्रंथ उपदेश करता हुवा.

संस्कृतग्रंथ जो मिथ्याआचार्यनैं मिथ्याशिष्यकूं उपदेश किया, ता ग्रंथकूं भाषाकरके लिखैं हैं. संस्कृतग्रंथके भाषा करनेमैं मंगल करै हैं. काहेतैं ? मंगल करनेतैं जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधक विघ्न हैं तिनका नाश होवै है. विघ्न नाम पापका है. पापतैं शुभकार्यकी समाप्ति होवै नहीं. ता पापका मंगलतैं नाश होवै है. औ जो पापरहित होवै सोभी ग्रंथके आरंभमैं मंगल अवश्य करै. काहेतैं ? जो ग्रंथ आरंभमैं मंगल नहीं किया होवै तो ग्रंथकर्त्ताविषे पुरुषनकूं नास्तिकभ्रांति होयके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं.

सो मंगल तीन प्रकारका है. एक वस्तुनिर्देशरूप है, औ दूसरा नमस्काररूप है, औ तीसरा आशीर्वादरूप है. सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा, सो वस्तु कहिये है; ताके कीर्तनका नाम वस्तुनिर्देश कहिये है. अपना अथवा शिष्यनका जो वांछितवस्तु ताके प्रार्थनका नाम आशीर्वादरूप मंगल कहिये है. सो अपने वांछितका प्रार्थन चतुर्थ दोहेमैं स्पष्ट है. शिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचमदोहेमैं स्पष्ट है.

गणेश औ देवीकूं ईश्वरता पुराणमैं प्रसिद्ध है, यातैं अनीश्वरका चिंतन नहीं; औ पुराणमैं गणेशका जो जन्म है, सो जीवकी नाईं कर्मका फल नहीं; किन्तु रामकृष्णादिकनकी नाईं भक्तजनके अनुग्रहवास्ते परमात्माकाही आविर्भाव होवै है; यह व्यासभगवान्का परम अभिप्राय है. या

स्थानमैं यह रहस्य है:—परमार्थदृष्टिसैं जीवभी परमात्मासैं भिन्न नहीं, परंतु जन्ममरणादिक बंधक आत्मा विषे जो अध्यास सो जीवका जीवपना है सो जन्मादिक बंध गणेशादिकनकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं; यातैं जीव नहीं; इस रीतिसैं गणेशादिकनकूं ईश्वरता है. यातैं ग्रंथके आरंभमैं तिनका चिंतन योग्य है. नामरूप ईश्वरका जो कथन है, सो सर्वकूं ईश्वरता द्योतन करनेके वास्ते है. औ ईश्वरभक्ति औ गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्य साधन है; इस अर्थकूंभी द्योतन करनेवास्ते है.

अथ निर्गुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल।

दोहा।

जा विभु सत्य प्रकाशतैं, परकाशत रवि चंद ॥
सो साक्षी मैं बुद्धिको, शुद्धरूप आनंद ॥ १ ॥

अथ सगुणवस्तुनिर्देश मंगल।

दोहा।

नाशै विघ्न समूलतैं, श्रीगणपतिको नाम ॥
जा चिंतन विन व्है नहीं, देवनहूंके थाम ॥ २ ॥[1]

टीका:—त्रिपुरवधमैं यह वार्ता प्रसिद्ध है.

---

१ त्रिपुरवधकी ऐसी कथा है कि—शिव विष्णु आदि सब देवता त्रिपुरासुरके मारनेको गणेशजीका पूजन कियेविना चढे, सो त्रिपुरासुरका कुछ न कर सके. फिर पश्चात्ताप करके श्रीगणेशजीका पूजन करके निर्विघ्नतापूर्वक सुखके त्रिपुरका विध्वंस कर दिया. सोई बात यहांपर कही है.

अथ नमस्काररूप मंगल।

सोरठा ।

असुरनको संहार, लक्ष्मी पारवतीपति ॥
तीन्हैं प्रणाम हमार, भजतनकूं संतत भजैं ॥ ३ ॥

अथ स्ववाछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद मंगल।

दोहा ।

जा शक्तीकी शक्ति लहि, करै ईश यह साज ।
मेरी वाणीमैं वसहु, ग्रंथसिद्धिके काज ॥ ४ ॥

अथ शिष्यवांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद।

दोहा ।

बंधहरण[1] सुखकरण श्री, दादू दीनदयाल ।
पढ़ै सुनै जौ ग्रंथ यह, ताके हरहु जँजाल ॥ ५ ॥

अथ वेदांतशास्त्रकर्ता आचार्य नमस्कार·

कवित ।

वेदवादवृक्षवन भेदवादीवायु आय,
पकर हलाय क्रियाकंटक पसारिकै ।
सरल सुशुद्ध शिष्य कंज पुनि तोरि गेरि,
सूलनमैं फेरत फिरत फेरि फारिकै ॥

---

१ संसाररूप बन्धनके हरनेवाले.

पेखि सुपथिक भगवान जानि अनुचित,
अंकमैं उठाय ध्याय व्यासरूप धारिकै ।
सूत्रकों बनाइ जालवनको विभाग कीन्ह,
करत प्रमाण ताहि निश्चल पुकारिकै ॥

टीकाः—जैसें वायु, बनमैं पैठके वृक्षनकूं हलायके, तिन्हके कंटक पसारके, सुंदर कमलनके पुष्पनकूं स्वस्थानसैं तोरके, कंटकनविषे भ्रमावै. तिन भ्रमते पुष्पनकूं देखके, पथिकके चित्तमैं ऐसी आवैः—कि ये सुंदर कमल या स्थानयोग्य नहीं, किंतु उत्तमस्थानयोग्य हैं. यह विचारके तिन पुष्पनकूं उठाइ लेवै । औ फेरि विचार करै कि, आगेभी पवन कंटकनविषे पुष्पनकूं तोडके भ्रमण करावैगा; यातैं ऐसा उपाय करूं, जातैं फेर वायु कंटकनमैं पुष्पनकूं भ्रमावै नहीं. यह विचारके सूत्रके जालसैं कंटकयुक्त वृक्षनका विभाग कर देवे. ता जालसैं पुष्पनका कंटकनमैं प्रवेश होवै नहीं.

तैसे भेदवादी आचार्यरूप जो वायु है, सो वेदरूपी वनमें वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटकसहित वृक्ष हैं, तिनतैं सकामकर्मरूप कंटक प्रवृत्त करके, सरल कहिये कपटरहित औ सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध रागादिदोपरहित जो शिष्यरूप कमलपुष्प, तिनकूं समाधिरूप जो स्वस्थान तासों तोरके सकामकर्मरूप कंटकनाविषे भ्रमावते देखके, पथिकसमान व्यापक विष्णुने विचार किया, कि यह शुद्धपुरुष या स्थानयोग्य नहीं है, किंतु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होनेयोग्य है. यह विचारके व्यासरूप धारके, तिन शिष्यनकूं उपदेश

रूप अंकमैं स्थापन किया. जैसे पुरुषके अंकमैं स्थित पुष्पकूं वात उड़ावनेविषे समर्थ नहीं, तैसे ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके उपदेशमैं स्थित पुरुषनकूं भेदवादी बहँकावनेमैं समर्थ नहीं. यातैं उपदेशही अंक कहिये गोद है. फिर व्यास भगवान्‌ने विचार किया, कि भेदवादी और पुरुषनकूं आगे-भी सकामकर्मरूप कंटकनमैं भ्रमावैंगे. यातैं ऐसा उपाय होवै, जातैं आगे शिष्य भ्रमै नहीं. यह विचारके सूत्ररूपी जालसैं वेदके वाक्यरूप वृक्षनका विभाग कर दिया.

जैसे वनमैं दो प्रकारके वृक्ष होवैं, सकंटक औ कंटकरहित, तिनका जालसैं विभाग कर देवै; औ जालतैं पुष्पनका कंट-कसहित वृक्षनमैं प्रवेश होवै नहीं. तैसे वेदमैं दो प्रकारके वाक्य हैं. एक तौ कर्मकी स्तुति करके कर्मविषे बहिर्मुख पुरुषकी प्रवृत्ति करावै हैं; औ दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करके पुरुषकी निवृत्ति करावै हैं. तिन वाक्यनका, वेदव्यासने विभाग करके सूत्रनसैं यह बोधन किया है:—कि सर्व वाक्यनका निवृत्तिमैं तात्पर्य है, प्रवृत्तिमैं किसी वाक्य-काभी तात्पर्य नहीं. जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं, तिनकाभी स्वाभाविक, औ निषिद्ध जो प्रवृत्ति है, तासैं निवृत्तिकरके विहितप्रवृत्तिसैं अतःकरण शुद्ध होयके, तासैंभी निवृत्ति होयके, ज्ञाननिष्ठपुरुष होवै. इस रीतिसैं निवृत्तिमैं तात्पर्य है. औ अर्थवादवाक्यने जो कर्मका फल बोधन किया है, सो गुडजिह्वान्यायतैं किया है. फलमैं तिनका तात्पर्य नहीं. यह अर्थ सूत्रनसैं व्यासजीने बोधन किया है. या अर्थकूं सूत्र-नसैं जानके पुरुषकी सकामकर्ममैं प्रवृत्ति होवै नहीं. जैसे सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसैं निरोध करै है; तैसैं व्यास

भगवान्के सूत्र, सकामकर्मनसैं निरोध करै हैं; यातैं जालरूप कहे ॥ ६ ॥

दोहा

कोउक शिष्य उदारमति, गुरुके शरणै जाइ ।
प्रश्न कियो कर जोरिकै, पादपद्म शिर नाइ ॥७॥

शिष्य उवाच ।

दोहा ।

भो भगवन् मैं कौन यह, संसृति कातैं होइ ॥
हेतु मुक्तिको ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ ॥ ८ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! मैं कौन हूं ? देहस्वरूप हूं अथवा देहसैं भिन्न हूं ? मैं मनुष्य हूं, औ मेरा शरीर है. यह दो प्रतीति होवै हैं, यातैं मेरेकूं संशय है. औ देहसैं भिन्नभी जो आप कहो, तौ मैं कर्त्ताभोक्ता हूं, अथवा अक्रिय हूं ? जो अक्रिय कहो, तौभी सर्वशरीरविषे एक हूं, अथवा नाना हूं ? यह प्रथमप्रश्नका अभिप्राय है. औ,

यह संसृति कहिये संसार, ताका कर्त्ता कौन है. याका यह अभिप्राय हैः—या संसारका कोई कर्ता है, अथवा आपही होवै है ? जो कर्त्ता कहो तौभी कोई जीव कर्त्ता है, अथवा ईश्वर है ? जो ईश्वर कहो तौभी एकदेशमैं सो ईश्वर स्थित है अथवा व्यापक है ? जो व्यापक है, तौभी जैसे व्यापक आकाशतैं जीव भिन्न है, तैसे तौ ईश्वरतैं जीव भिन्न है अथवा अभिन्न है ? औ,

मुक्तिका हेतु ज्ञान है, अथवा कर्म है ? अथवा उपासना

है, अथवा दो हैं ? जो दो कहो, तौभी ज्ञानकर्म है, अथवा ज्ञानउपासना है, अथवा कर्मउपासना है ?

श्रीगुरुरुवाच।

अर्ध दोहा ।

सत चित आनँद एक तू, ब्रह्म अजन्य असंग ।

टीकाः–प्रथम जो शिष्यने प्रश्न किया, ताका उत्तर कहै हैं:–" तूं सत् चित् आनंदस्वरूप है. " या कहनेतैं देहतैं भिन्न कह्या. काहेतैं ? देह असत्रूप है. औ जडरूप है, औ दुःखरूप है; औ कर्ताभोक्ताभी नहीं. काहेतैं ?

जाके विषे दुःख होवै, सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्तिके वास्ते क्रिया करै, सो कर्त्ता कहिये है. सो तेरेविषे दुःख है नहीं, यातैं दुःखकी निवृत्तिके वास्ते क्रियाका कर्त्ता नहीं. तूं आनंदस्वरूप है, यातैं सुखकी प्राप्तिके निमित्तभी तू क्रियाका कर्त्ता नहीं. जो कर्त्ता होवै, सोई भोक्ता होवै है. तू कर्त्ता नहीं, यातैं भोक्ताभी नहीं. पुण्यपापका जनक जो कर्म है, ताका कर्त्ता औ सुखदुःखका भोक्ता स्थूलसूक्ष्म संघात है; तू नहीं. तू संघातका साक्षी है. याहीतैं,

आत्मा एक है, नाना नहीं. जो आत्मा कर्ता भोक्ता होवै तब तौ नाना होवै; काहेतैं ? कोई सुखी है, कोई दुःखी है. औ कर्त्ता भोक्ता एकही अंगीकार होवै तौ एकके सुख होनेतैं तथा दुःख होनेतैं, सर्वकूं सुख तथा दुःख हुवा चाहिये, यातैं भोक्ता नाना हैं. औ आत्मा भोक्ता है नहीं, यातैं एक है.

सांख्यके मतमैं आत्मा कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करके नाना पुरुष जो अंगीकार किये, सो अत्यंत विरुद्ध है. काहेतैं? यह सांख्यका सिद्धांत है किः—सत्त्वरजतमगुणकी सम अवस्थाका नाम प्रधान कहै हैं. सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं. विकृति नाम कार्यका है, औ प्रकृति नाम उपादानकारणका है. सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादानकारण है, यातैं प्रकृति है; औ अनादि है, यातैं विकृति नहीं. औ महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा, ये सात प्रकृति विकृति हैं. उत्तरउत्तरके प्रकृति हैं. औ पूर्वके विकृति हैं. तन्मात्राभी भूतनके प्रकृति हैं. इस रीतिसैं सात प्रकृति विकृति हैं. औ पंच भूत, औ दश इंद्रिय, औ मन, ये सोलह विकृति हैं, प्रकृति नहीं. औ पुरुष, प्रकृतिविकृति नहीं, काहेतैं? जो हेतु किसी पदार्थका होवै, तौ प्रकृति होवै, औ कार्य होवै तौ विकृति होवै. सो पुरुष किसीका हेतु नहीं, यातैं प्रकृति नहीं; औ कार्य नहीं, यातैं विकृति नहीं; यातैं पुरुष असंग है. इस रीतिसैं सांख्यमतमैं पचीस तत्त्व हैं. तत्त्व नाम पदार्थका है. सांख्यमतमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं. स्वतंत्रप्रकृति जगत्का कारण है. औ पुरुषके भोग मोक्षके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवै है; पुरुष नहीं. प्रकृतिके विषयरूप परिणामतैं पुरुषनकूं भोग होवै है; औ बुद्धिद्वारा विवेकरूप प्रकृतिके परिणामतैं मोक्ष होवै है. यद्यपि पुरुष असंग है, ताके विषे भोगमोक्ष बनैं नहीं, तथापि ज्ञान सुखदुःख रागद्वेषसैं आदि लेके बुद्धिके परिणाम हैं. ता बुद्धिका आत्मासैं अविवेक है, विवेक नहीं. यातैं आत्मामैं आरोपित बंधमोक्ष हैं, परमार्थसैं नहीं. अविवेकसिद्ध जो आत्मामैं भोग, तासैंही आत्माकूं सांख्य-

मतमैं भोक्ता कहै हैं. औ परमार्थसैं आत्मा भोक्ता नहीं, बुद्धिही भोक्ता है. बुद्धि आत्मासैं भिन्न है; इस ज्ञानका नाम विवेक है. ताके अभावका नाम अविवेक है. इस रीतिसैं सांख्यमतमैं आत्मा असंग है.

औ सुखादिक बुद्धिके परिणाम हैं. यातैं बुद्धिके धर्म हैं. औ आत्मा नाना हैं, सो वार्त्ता अत्यंत विरुद्ध है. जो सुख दुःख आत्माके धर्म होवैं तौ सुखदुःखके प्रतिशरीर भेद होनेतैं, आत्माका भेद होवै. सो सुख दुःख आत्माके धर्म तौ हैं नहीं, किंतु बुद्धिके धर्म हैं. यातैं सुखदुःखके भेदसैं बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवै है; आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं. जैसे एकही व्यापक आकाशमैं नाना उपाधिके धर्म उपाधि औ आकाशके अविवेकसैं प्रतीत होवै हैं, तैसैं एकही व्यापक आत्मामैं नाना बुद्धिके धर्म अविवेकसैं प्रतीत होवै हैं, यह वार्त्ता सांख्यमतमैं अंगीकार करनी उचित है. आत्माकूं असंग मानके नाना अंगीकार करने निष्फल हैं. औ कोई आत्मा मुक्त है, औरनकूं बंध है ;इस रीतिसैं बंधमोक्षके भेदसैं जो आत्माका भेद अंगीकार करैं, सोभी बनै नहीं. काहेतैं? जो बंधमोक्ष आत्मामैं अंगीकार करैं तौ बंधमोक्षके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै, सो बंधमोक्ष सांख्यमतमैं असंग आत्मामैं अंगीकार किये नहीं. किंतु,

बुद्धिके अविवेकसैं बंध अंगीकार किया है, औ बुद्धिके अविवेकसैं बंधका मोक्ष अंगीकार किया है. जो वस्तु अविवेकसैं होवै, औ विवेकसैं दूर होवै, सो वस्तु रज्जु सर्पकी नाईं मिथ्या होवै है. आत्माविषेभी बुद्धिके अविवेकसैं बंध

है औ विवेकसैं दूर होवै है, यातैं बंध मिथ्या है. जैसैं बंध मिथ्या है, तैसैं आत्माका मोक्षभी मिथ्या है. जामैं बंध सत्य होवै, ताकाही मोक्ष सत्य होवै है. औ आत्मामैं बंध मिथ्या है, यातैं मोक्षभी मिथ्याही है. इस रीतिसैं मिथ्या जो बंधमोक्ष सो आकाशकी नाईं एक आत्मामैंभी बनै है. तिनके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं, यातैं सांख्य-मतमैं आत्माका भेद असंगत है. तैसे,

न्यायमतमैंभी आत्माका भेद असंगत है. काहेतैं? यह न्यायका सिद्धांत है:—सुख, दुःख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ये चतुर्दश गुण जीवरूप आत्माविषे हैं. संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न; ये अष्टगुण ईश्वरमें हैं. इतना भेद है:—ईश्वरके ज्ञान इच्छा, प्रयत्न, नित्य हैं; औ जीवके तीनों अनित्य हैं. ईश्वर व्यापक है, औ नित्य है; जीव नाना हैं, औ संपूर्ण व्यापक हैं, नित्य हैं, औ जीवका ज्ञान अनित्य है; यातैं जब ज्ञान गुण होवै, तब तौ जीव चेतन है; औ ज्ञानगुणका नाश होवै तब जडरूप रहै हैं. ईश्वरजीवकी नाईं आकाश, काल, दिशा, मन, नित्य हैं. औ,

पृथिवी, जल, तेज, वायुके परमाणु, नित्य हैं. जो झरोखेमैं सूक्ष्मरज प्रतीत होवै है, ताके छठे भागका नाम परमाणु है. परमाणु आत्माकी नाईं नित्य हैं. औरभी जातिसैं आदि लेके कितनेक पदार्थ न्यायमतमैं नित्य हैं. वेदविरुद्ध सिद्धांतको बहुत लिखनेका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं; यातैं लिखे नहीं. “ मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूं ” ऐसी जो देहविषे आत्म-

भ्रांति, तासैं रागद्वेष होवै है. ता रागद्वेषतैं धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवै हैं, तिन्हतैं शरीरके संबंधद्वारा सुख दुःख होवै हैं. इस रीतिसैं न्यायमतमैं आत्माकूं संसारका हेतु भ्रांतिज्ञान है.

सो भ्रांतिज्ञान तत्त्वज्ञानसैं दूर होवै है. देहादिक संपूर्ण पदार्थनसैं "आत्मा भिन्न है" या निश्चयका नाम तत्त्वज्ञान है. ता तत्त्वज्ञानसैं "मैं ब्राह्मण हूं, मनुष्य हूं" यह भ्रांति दूर होवै है. भ्रांतिके नाशतैं रागद्वेषका अभाव होवै है; तिनके अभावतैं धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवै है. प्रवृत्तिके अभावतैं शरीरसंबंधरूप जन्मका अभाव होवै है, औ प्रारब्धका भोगतैं नाश होवै है. शरीरसंबंधके अभावतैं इक्कीस दुःखोंका नाश होवै है. सो दुःखका नाशरूपही न्यायमतमैं मोक्ष है. एक शरीर औ श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण, मन, ये षट्इंद्रिय; और इन षट्इंद्रियोंके विषय औ षट् इंद्रियके ज्ञान, औ सुख दुःख ये इक्कीस दुःख हैं, शरीरादिकभी दुःखके जनक हैं, यातैं दुःख कहिये हैं औ स्वर्गादिकनका सुखभी नाशके भयतैं दुःखका हेतु है, यातैं दुःख कहिये है.

यद्यपि न्यायमतमैं श्रोत्र मन नित्य हैं, तिनका नाश बनै नहीं; तथापि जिस रूपकरके श्रोत्र मन दुःखके हेतु हैं; तिसरूपका नाश होवै है. पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्ति करके दुःखके हेतु हैं. सो पदार्थनका ज्ञान मोक्षकालमैं श्रोत्र औ मन करैं नहीं. काहेतैं ? जो कर्णगोलकमैं स्थित आकाश है सो श्रोत्र कहिये है. ता कर्णगोलकका मोक्षकालमैं अभाव है, यातैं आकाशरूप श्रोत्रइंद्रिय हैभी, परंतु गोलकके अभावतैं ज्ञान होवै नहीं. इस रीतिसैं ज्ञानका जनक जो श्रोत्रइंद्रियका स्वरूप सोई दुःख है; औ ताकाही नाश होवै है. औ,

आत्माके साथ मनके संयोगतैं ज्ञान होवै है. सो मनका संयोग न्यायसिद्धांतमैं एककी क्रियातैं अथवा दोकी क्रियातैं होवै है. जैसे बींजवृक्षका संयोग एक बींजकी क्रियातैं होवै है, औ दो मेषनका संयोग दोकी क्रियातैं होवै है; तैसे विभु आत्मामैं तौ क्रिया कभी भी होवै नहीं. औ मोक्षकालमैं मनमैंभी क्रिया होवै है. और

कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहै है; आत्माके संयोगकूं नहीं. सुषुप्तिमैं पुरीतत् नाम नाडीविषे मन प्रवेश करै है. त्वचासैं मनका संयोग है नहीं, यातैं सुषुप्तिमैं ज्ञान होवै नहीं. तिनके मतमैं त्वचासैं संयोगवाला मनही ज्ञानद्वारा दुःखका हेतु होनेतैं दुःख है; केवल मन नहीं. मोक्षमैं त्वचाके नाश होनेतैं ताके साथ संयोग है नहीं; यातैं ज्ञान होवै नहीं. मोक्षकालमैं मन हैभी, परंतु दुःखका हेतु जो ज्ञानका जनक त्वचासैं संयोगवाला मन, ताका संयोगके नाशतैं नाश होवै है. इस रीतिसैं मोक्षकालमैं परमात्मासैं भिन्नही दुःखरहित होयके व्यापक आत्मा जडरूप स्थित होवै है. काहेतैं ज्ञानगुणतैं आत्माका प्रकाश होवै है. सो जीवका ज्ञान संपूर्ण इंद्रियजन्यही है; नित्य है नहीं. ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमैं नाश होवै है, यातैं प्रकाशरहित जडरूप होयके आत्मा मोक्षकालमैं स्थित होवै है; यह न्यायका सिद्धांत है.

न्यायमतमैं पूर्वउक्तप्रकारसैं सुख-दुःख औ बंध मोक्ष आत्माकूं होवै हैं, यातैं आत्मा नाना हैं, औ संपूर्णव्यापक हैं. सर्व अल्प पदार्थनसैं जो संयोग, सोई न्यायमतमैं व्याप-

१ जिसे भाषामें 'आत' कहते हैं.

कका लक्षण है. औ सजातीय, स्वगतभेदका अभाव, व्यापकका लक्षण नहीं. काहेतैं? न्यायमतमैं यद्यपि आत्मा निरवयव है, यातैं स्वगतभेदका तौ ताकेविषे अभाव हैभी परंतु सजातीय, औ विजातीयके भेदका अभाव नहीं, किंतु सजातीय जो दूसरा आत्मा, ताका भेद आत्मामैं है. औ विजातीय घटादिकनका भेदभी आत्मामैं है. यातैं सजातीय विजातीय, स्वगतभेदका अभाव व्यापकका लक्षण नहीं; किंतु सर्व अल्पपदार्थनसैं संयोगही व्यापकका लक्षण है.

याकेविषे कोई शंका करै है:—न्यायमतमैं आत्माकी नाईं आकाश, काल, दिशाभी व्यापक है. औ परमाणु सूक्ष्म हैं, निरवयव हैं, तिनसैं सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग बनै नहीं. काहेतैं? जो परमाणु सावयव होवै, तब तौ किसी देशमैं आत्माका संयोग होवै औ किसी देशमैं अन्यव्यापकपदार्थनका संयोग होवै. सो परमाणु सावयव हैं नहीं, किंतु निरवय हैं; औ अतिसूक्ष्म हैं; तिनके साथ एकही देशमैं सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग होवैगा; सो बनै नहीं. काहेतैं? जो एकके संयोगसैं स्थान निरुद्ध है; ता देशमैं अन्यपदार्थनका संयोग बनै नहीं. यातैं नानापदार्थनकूं व्यापकता बनै नहीं; एकही कोई व्यापक बनै है.

यह शंका बनै नहीं. काहेतैं? जो सावयववस्तुका संयोग है, सो तौ अन्यके संयोगका विरोधी है. जैसैं जा पृथिवीदेशमैं हस्तका संयोग होवै, ता देशमें पादका संयोग होवै नहीं औ निरवयवका संयोग, स्थानकूं रोकै नहीं, यातैं अन्यके संयोगका विरोधी नहीं. यह वार्ता अनुभवसिद्ध है. जैसे घटको जा देशमैं आकाशका संयोग है, ता

देशमैंही कालका औ दिशाका संयोगभी है. जो कोई घटका देश, आकाश, काल, दिशासैं बाहिर होवै तौ ता देशमैं आकाश, काल, दिशाका संयोग होवै नहीं; सो बाहर तौ कोई देश है नहीं, किंतु सर्वपदार्थनके सर्व देश, आकाश, काल, दिशामैंही हैं. यातैं सर्वपदार्थनके सर्वदेशनविषे आकाश, काल, दिशाका संयोग है. इस रीतिसैं परमाणुविषेभी एकही देशमैं नानानिरवयवविभूका संयोग बनै है; कोई दोष नहीं; यातैं आत्मा नाना हैं, औ संपूर्णव्यापक हैं.

सर्वका सर्वपदार्थनसैं संयोग है, यह न्यायका सिद्धांत है. सो समीचीन नहीं. काहेतैं? जो व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करैं, तौ सर्व शरीरमैं सर्वआत्माका संबंध अंगीकार करना होवैगा. यातैं कौन शरीर किसका है, यह निश्चय नहीं होवैगा. किंतु एक एक आत्माके सर्व शरीर हुये चाहिये. जो ऐसे कहैं:—जाके कर्मसैं जो शरीर उत्पन्न हुवा है, ता आत्माका सो शरीर है; सोभी बनै नहीं. काहेतैं? कर्म जा शरीरसैं होवै है, ता कर्म करनेवाले पूर्वशरीरमैंभी सर्वआत्माका संबंध है, यातैं कर्मभी सर्व आत्माकेही होवैंगे; एकके नहीं. और ऐसे कहैं:—जा आत्माके मनसहित शरीर है, ता आत्माका सो शरीर है. सोभी बनै नहीं. काहेतैं? शरीरकी नाईं मनके साथभी सर्व आत्माका संबंध है. ताके विषे यह निश्चय होवै नहीं, कि कौनसा मन किस आत्माका है; किंतु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहिये. तैसैं इंद्रियभी सर्व आत्माके सर्वही होवैंगे. बाहरके पदार्थनविषे "यह मेरा है. यह औरका है" ऐसा व्यवहारभी शरीरनिमित्तक है. सो

शरीर सर्व आत्माके सर्व हैं, यातैं बाहरके पदार्थभी सर्व आत्माके सर्व हुए चाहिये. और,

जो ऐसे कहैं:—जा आत्माकूं जा शरीरमैं अहंबुद्धि औ ममबुद्धि होवै, ता आत्माका सो शरीर है. सो अहंबुद्धि औ ममबुद्धि एक है, यातैं सर्व आत्मामैं रहै नहीं. किंतु एक धर्म एकही धर्मीविषे रहै है. यातैं एकही आत्माका शरीर है. जा आत्माका जो शरीरके संबंधी मन इंद्रिय औ बाहरके पदार्थ ता आत्माके हैं. यातैं व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करनेमेंभी दोष नहीं.

सो वार्त्ताभी बनै नहीं. काहेतैं? यद्यपि अहंबुद्धि एकदेहमें एकही आत्माकूं होवै है, तथापि सो न्यायमतमें बनै नहीं. किंतु सर्व आत्माकूं एकदेहमें अहंबुद्धि हुई चाहिये. काहेतैं? न्यायमतमें बुद्धि नाम ज्ञानका है. सो ज्ञान आत्मा औ मनके संयोगतैं होवै है. सो मनके साथ संयोग सर्व आत्माका है. यातैं मनके संयोगसैं जैसे एक देहमैं एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवै है, तैसे एक देहमैं सर्व आत्माकूं अहंबुद्धि हुई चाहिये. जो ऐसे कहैं:—यद्यपि मनका संयोग तौ सर्व आत्मासैं है, तथापि जा आत्मामैं ज्ञानका जनक अदृष्ट है, ता आत्माकूंही अहंबुद्धि होवै है; तोभी सर्वकूंही ज्ञान हुवा चाहिये. काहेतैं? जो व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करैं, तौ एकशरीरकी शुभअशुभक्रियातैं, शरीरमैं स्थित सर्व आत्मामैंही अदृष्ट हुये चाहिये; यह वार्त्ता पूर्व कह आये. यातैं व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करैं, तौ एक देहमैं सर्वकूं सुखदुःखका भोग हुवा चाहिये. यातैं व्यापक नाना कर्ता भोक्ता आत्मा है; यह न्यायका सिद्धांत समीचीन नहीं. औ,

हमारे सिद्धांतमैं तौ कर्त्ता भोक्ता अंतःकरण है, सो अंतःकरण नाना हैं, व्यपक औ अणु नहीं; किंतु शरीरके समान ता अंतःकरणका परिमाण है. दीपकके प्रकाशकी नाईं बडे शरीरकूं प्राप्त होवै, तब अंतःकरणका विकास होवै है औ न्यूनशरीरमैं संकोच होवै है. यह वार्ता सिद्धांत बिंदुके व्याख्यानमैं **मधुसूदनस्वामीने** प्रतिपादन करी है. जा अंतःकरणका जा शरीरसैं संबंध है, ता अंतःकरणकूं ता शरीरसैं भोग होवै है.

जो अंतःकरणकूं व्यापक अंगीकार करैं, तौ सर्वशरीर सर्वके होवैं; औ भोगभी सर्वकूं होवै; सो व्यापक अंतःकरण नहीं, यातैं दोष नहीं. औ अंतःकरणकूं अणु अंगीकार करैं, तौ शरीरके एक देशमैं अंतःकरण रहै है; ऐसा अंगीकार करना होवैगा, सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं? जो एक कालमैंही पाद औ मस्तकमैं कंटकवेध होवै, तौ दोनों स्थानमैं एकही कालमैं पीडा होवै है; सो नहीं हुई चाहिये. काहेतैं? जो अंतःकरण अणु होवै, तो एकही स्थानमैं एक कालमैं रहै. यातैं जा स्थानमैं अंतःकरण होवै, ता स्थानमैंही पीडा हुई चाहिये; दोनों स्थानमैं नहीं. यातैं अंतःकरण अणु औ व्यापक नहीं. किंतु शरीरके समान है. यातैं कोई दोष नहीं. अणु औ व्यापकसैं विलक्षण जो है, ताकूंही मध्यमपरिमाण कहै हैं. औ,

न्यायमतमैं किसी नवीनने ऐसा अंगीकार किया हैः—आत्मा नाना है, कर्ता भोक्ता है, व्यापक नहीं, यातैं भोगका संकर नहीं. अणुभी नहीं, यातैं दो स्थानमैं पीडाका असंभवभी नहीं. किंतु जैसे वेदांतमतमैं अंतःकरण मध्यम-

परिमाण है, तैसैं आत्माभी मध्यमपरिमाण है. ताके विषे चतुर्दश गुण रहै हैं.

सोभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? जो आत्माकूं संकोचविकासवाला अंगीकार करै, तौ दीपककी प्रभाकी नाई आत्मा विकारी, औ विनाशवाला होवैगा. यातैं मोक्षप्रतिपादक शास्त्र औ साधन निष्फल होवैंगे. औ मध्यमपरिमाण अंगीकार करके संकोच विकास अंगीकार नहीं करै, तौ कौनसे शरीरके समान आत्माकूं अंगीकार करै, यह निश्चय होवै नहीं. जो मनुष्यशररीके समान अंगीकार करै, तौ जब आत्मा हस्तीके शरीरकूं प्राप्त होवै, तब सर्वशरीरमैं नहीं होवैगा. यातैं जा देशमैं हस्तीके आत्मा नहीं है, ता देशमैं पीडा नहीं हुई चाहिये.औ हस्तीके शरीरके समान अंगीकार करै तौ तासैं और शरीर बड़े हैं, तिनके एकदेशमैं पीडा नहीं हुई चाहिये. औ सर्वसैं बड़ा किसीका शरीर है नहीं,जाके समान आत्मा अंगीकार करैं औ सर्वसैं बडा विराटका शरीर है, ताके समान जो आत्मा अंगीकार करैं, तौ विराटके शरीरके अंतर्भूत सर्व शरीर हैं. यातैं सर्व आत्माका सर्व शरीरसैं संबंध होवैगा; ताकेविषे पूर्व दोष कहेही हैं. औ यह नियम है:—जो मध्यमपरिमाणवस्तु होवै, सो शरीरकी नाई अनित्य होवै है, यातैं आत्माभी अनित्य होवैगा. औ अंतःकरणका तौ हमारेमैं ज्ञानतैं नाश होवै है. यातैं अनित्य हैं. मध्यमपरिमाण अंगीकार कियेतैं दोष नहीं. इस रीतिसैं नवीन तार्किकका मतभी समीचीन नहीं. औ,

जो कोई ऐसे कहैं:—आत्मा नाना हैं, औ अणु हैं, सो वार्ताभी बनै नहीं. काहेतैं, जो आत्माकूं कर्ता भोक्ता अंगी-

कार करैं, तौ अंतःकरणके अणुपक्षमें जो दोष कह्या सो दोष होवैगा. औ कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करै तौ नाना आत्मा अंगीकार निष्फल होवैंगे. एकही व्यापक सर्वशरीरमैं अंगीकार करना योग्य है. औ कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करै तौ अपने सिद्धांतकाभी त्याग होवैगा. काहेतैं? अनुवादीका यह सिद्धांत हैः—ज्ञान सुख दुःख धर्मसैं आदि लेके आत्माके धर्म हैं. यातैं जो आत्माकूं अणु अंगीकार करैं, तौ जा शरीरदेशमैं आत्मा नहीं है, सो देश मृतसमान है; ताके विषे पीडादिक नहीं हुई चाहिये.

और जो ऐसे कहैंः--यद्यपि आत्मा तो शरीरके एकदेशमैं है. परंतु कस्तूरीके गंधकी नाईं ताका ज्ञान सारे शरीरमैं व्याप्त है. यातैं सर्वशरीरविषे अनुकूलप्रतिकूलके संबंधकूं अनुभव करै है.

सोभी बनै नहीं. काहेतैं? यह नियम हैः—जितने देशमें गुणवाला रहै, तासें बाहर गुण रहैं नहीं; किंतु गुणीमैंही गुण रहे हैं. जैसे रूप घटादिकनतैं बाहर रहै नहीं, तैसैं आत्मासैं बाहर ज्ञानभी बनै नहीं. औ कस्तूरीके सूक्ष्म भाग जितने देशमें व्याप्त होवै, उतने देशमैंही गंध व्याप्त होवै है; यातैं कस्तूरीका दृष्टांतभी बनै नहीं. "यातैं आत्मा अणु है" यह पक्षभी बनै नहीं. औ,

कहूं श्रुतिमैं आत्मा अत्यंत अणुसैंभी अणु जो कह्या है, सो दुर्विज्ञेयहै, यातैं कह्या है. जैसे अत्यंत अणुवस्तुका मंददृष्टि पुरुषकूं ज्ञान होवै नहीं, तैसे बहिर्मुख पुरुषकूं आत्माकाभी ज्ञान होवै नहीं, यातैं अणुके समान है, यह श्रुतिका अभिप्राय है; औ "आत्मा अणु है" यह अभिप्राय नहीं.

काहेतैं ? बहुत स्थानमैं व्यापकरूप आपही वेदने प्रतिपादन किया है; यातैं अणु नहीं. इस रीतिसैं 'व्यापक तथा मध्यम-परिमाण अथवा अणु, आत्मा नाना हैं' यह कहना संभवै नहीं.

परिशेषतैं एक व्यापक आत्मा है. ताके विषे धर्मअधर्म-सुखदुःख औ बंधमोक्ष जो अंगीकार करैं, तौ किसीकूं सुख औ किसीकूं दुःख, किसीकूं बंध औ किसीकूं मोक्ष ऐसा व्यवहार नहीं होवैगा. यातैं धर्मादिक बुद्धिके धर्म हैं. यद्यपि बुद्धि जड है, यातैं ताके विषेभी धर्मसुखादिक बनैं नहीं, तथापि आत्माके धर्म नहीं हैं; इस अभिप्रायतैं बुद्धिके धर्म कहिये हैं. औ " बुद्धिके धर्म हैं " याके विषे अभिप्राय नहीं. बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं अध्यस्त हैं. जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवै, सो तामैं परमार्थसैं होवै नहीं. जैसे सर्प रज्जुमैं अध्यस्त है, सो परमार्थसैं रज्जुमैं है नहीं; तैसैं बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं हैं नहीं. औ अध्यस्तवस्तुभी किसी-का आश्रय होवै नहीं; यातैं बुद्धिभी सुखादिकनका आश्रय है नहीं. परंतु अज्ञान तौ शुद्धचेतनमैं अध्यस्त है, औ अंतः-करण अज्ञानउपहितमैं अध्यस्त है, औ अंतःकरणउपहि-तमैं धर्मअधर्म सुखदुःख बंधमोक्ष, अध्यस्त हैं. इस रीतिसैं आत्मामैं धर्मादिकनके अधिष्ठानपनेका अंतःकरण उपाधि-है, यातैं अंतःकरणके धर्म कहिये हैं.

जो अंतःकरणविशिष्टमैं धर्मादिक अध्यस्त कहै, तौ बनै नहीं. काहेतैं, विशेषणयुक्तता नाम विशिष्ट है. धर्मादिक अ-ध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा, ताका अंतःकरण जो विशे-षण अंगीकार करै, तौ अंतःकरणकी धर्मसुखादिकनका अ-धिष्ठान होवैगा. सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतैं ? मिथ्यावस्तु-

अधिष्ठान होवै नहीं. यातैं आत्मामैं धर्मादिकनके अध्यासका अंतःकरण विशेषण नहीं; किंतु उपाधि है. उपाधिका यह स्वभाव है:—आप तटस्थ होयके जितने देशमैं आप होवै, उतने देशमैं स्थित वस्तुकूं जनावै, औ विशेषणका यह स्वभाव है:—जितने देशमैं आप होवै, उतने देशमैं स्थित वस्तुकूं अपनेसहित जनावै. विशेषणवानकूं विशिष्ट कहै हैं, औ उपाधिवालेकूं उपहित कहै हैं; इस रीतिसैं अंतःकरणविशिष्टमैं जो धर्मादि अध्यस्त कहै, तौ जितने देशमैं अंतःकरण है, ता देशमैं स्थित चेतनभाग औ अंतःकरण दोनोकूं अधिष्ठानता होवै, सो अन्तःकरण आपभी अध्यस्त है, यातैं अधिष्ठान बनै नहीं. इस अभिप्रायतैं अंतःकरणउपहितमैं धर्मादिक अध्यस्त कहे. यातैं " जितने देशमैं अंतःकरण है, उतने देशमैं स्थित चेतनभागमात्रमैं अधिष्ठानता है; अंतःकरणमैं नहीं. " यह वार्ता बनै है. तैसैं,

अंतःकरणभी अज्ञानउपहितमैं अध्यस्त है; अज्ञातविशिष्टमैं नहीं. इस रीतिसैं अध्यस्त जो धर्मादिक, तिनका अधिष्ठान आत्मा है. अध्यासके अधिष्ठानपनेकी अंतःकरण उपाधि है. यातैं बुद्धिके धर्म कहै हैं. औ अविवेकसैं अंतःकरण आत्मा दोनोंविषे प्रतीत होवै है. यातैं अंतःकरणविशिष्ट जो प्रमाता, ताके धर्म कहै हैं. धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवैं, अथवा अंतःकरणविशिष्ट प्रमाताके धर्म होवैं, अथवा रज्जुसर्प, स्वप्नके पदार्थ, गंधर्वनगर, नभनीलताकी नाईं किसीके धर्म न होवैं; सर्वप्रकारसैं आत्माके धर्म नहीं. यद्यपि आत्मामैं अध्यस्त है, तथापि जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवै सो ताहीमैं परमार्थसैं होवै नहीं. अध्यस्त नाम कल्पितका

है. यातैं राग-द्वेष, धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, बंध-मोक्षसैं रहित यह व्यापक आत्मा है. सो,

आत्मा सत् है. जा वस्तुका ज्ञानसैं अभाव होवै, सो असत् कहिये है. जाकी निवृत्ति किसी कालमैंभी नहीं होवै, सो सत् कहिये है. सर्वपदार्थनका औ तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है. जो आत्माकी निवृत्ति होवै, तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये. काहेतैं ? शून्यमैं निवृत्ति होवै नहीं. जो आत्मा औ ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अंगीकार करैं, तौ ताका और अधिष्ठान अंगीकार करना होवैगा. इस रीतिसैं अन्यअवस्था होवैगी. और आत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करैं, ताकूं यह पूछै हैं:—कि आत्माकी निवृत्ति किसीने अनुभव करी है अथवा नहीं ? जो ऐसे कहै अनुभव करी है सो बनै नहीं. काहेतैं ? जो अनुभव करनेवाला है सोई आत्मा है. औ अपना स्वरूप है, ताकी निवृत्तिका अनुभव अपने मस्तकछेदनके अनुभवसमान है, यातैं आत्माकी निवृत्तिका अनुभव बनै नहीं. औ ऐसे कहै किः—आत्माकी निवृत्ति तौ होवै है, परंतु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूं नहीं. तौ यह वार्ता सिद्ध हुई, कि आत्माकी निवृत्ति तौ होवै नहीं. काहेतैं ? जो वस्तु किसीने अनुभव नहीं करी सो वंध्यापुत्रके समान होवै है. यातैं आत्माकी निवृत्ति होवै नहीं, याहीतैं आत्मा सत् है. औ,

आत्मा चित् है. प्रकाशरूप जो ज्ञान, सो चित् कहिये है. जो अप्रकाशरूप आत्मा अंगीकार करैं, तौ अनात्मजड़वस्तुका प्रकाश कभी होवै नहीं. जो अंतःकरण औ इंद्रियनसैं पदार्थनका प्रकाश कहैं, तौ बनै नहीं. काहेतैं ? अंतःकरण औ

इंद्रिय परिच्छिन्न हैं, यातैं कार्य हैं. जो परिच्छिन्न होवै, सो घटकी नाई कार्य होवै है. औ अंतःकरण इंद्रियभी परिच्छिन्न है; यातैं कार्य है. देशकालतैं जाका अंत होवै, सो परिच्छिन्न कहिये है. जो कार्य होवै सो जड होवै है. यातैं अंतःकरण औ इंद्रियभी जड हैं. तिनतैं किसी वस्तुका प्रकाश बनै नहीं. यातैं जो आत्मा सर्वका प्रकाश करै है, सो प्रकाशरूप है. और,

जो ऐसे कहैः—आत्मा प्रकाशरूप नहीं; किंतु आत्मा तौ जड है. औ ताके विषे ज्ञानगुण है; ता ज्ञानतैं आत्मा औ अनात्माका प्रकाश होवै है. ताकूं यह पूछै हैंः—आत्माका ज्ञानगुण नित्य है, अथवा अनित्य है? जो नित्य कहै, तो आत्माका स्वरूपही ज्ञान सिद्ध होवैगा. काहेतैं? यह नियम हैः—जो आत्मासैं भिन्न होवै, सो अनित्य होवै है. जो ज्ञानकूं आत्मासैं भिन्न अंगीकार करैं, तौ अनित्यही होवैगा. यातैं नित्य मानके आत्मासैं भिन्न ज्ञान है, यह कहना बनै नहीं. औ अनित्य अंगीकार करैं, तौ घटादिकनकी नाईं जड होवैगा. जौ अनित्यवस्तु होवै सो जड होवै है. यातैं "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बनै नहीं; किन्तु ज्ञान नित्यही है. सो नित्यज्ञान आत्मस्वरूपही है. जो अनित्य अंगीकार करैं तौ कदाचित् आत्मामैं ज्ञान होवै, औ कदाचित् नहीं, यातैं आत्मासैं भिन्नभी ज्ञान होवै, औ नित्य अंगीकार कियेतैं तौ भिन्न होवै नहीं. जो गुण होवै सो गुणवान्‌विषे कदाचित् रहै; औ कदाचित् नहींभी रहै. जैसे वस्त्रका नील पीत गुण कदाचित् रहै, औ कदाचित् नहीं रहै. यातैं जो गुण होवै, सो आगमापायी होवै है. औ ज्ञानकूं नित्यता होनेतैं आगमापायी है नहीं, यातैं आत्माका स्वरूपही ज्ञान है. औ,

ज्ञानकूं अनित्य कहैं, तौ इंद्रिय अथवा अंतःकरणसैं ज्ञान उत्पन्न होवै है, यह कहना होवैगा. सो बनै नहीं. काहेतैं? सुषुप्तिमैं इंद्रियादिक तौ हैं नहीं, औ सुखका ज्ञान होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. जो सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान अंगीकार नहीं करै, तौ जागके "मैं सुखसैं सोया" यह सुषुप्तिके सुखकी स्मृति होवै है; सो नहीं हुई चाहिये. जा वस्तुका पूर्वज्ञान होवै, ताकी स्मृति होवै है; औ अज्ञातवस्तुकी स्मृति होवै नहीं. औ सुषुप्तिके सुखकी जागके स्मृति होवै है. यातैं सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान होवै है. ता ज्ञानके जनक इंद्रियादिक सुषुप्तिमैं हैं नहीं. यातैं नित्य है. ज्ञानकूं त्यागके आत्मा कभी भी रहै नहीं. यातैं ज्ञान आत्माका स्वरूप है. जैसे उष्णताकूं त्यागके अग्नि कभीभी रहै नहीं, यातैं उष्णता वह्निका स्वरूप है, तैसैं ज्ञानभी आत्माका स्वरूप है. जो आगमापायी होवै सो गुण होवै है. उष्णता औ ज्ञान आगमापायी है नहीं, यातैं अग्नि औ आत्माके स्वरूप हैं. जो वस्तु कदाचित् होवै औ कदाचित् न होवै, सो आगमापायी कहिये है.

उत्पत्ति औ नाश अंतःकरणकी वृत्तिके होवै हैं, ज्ञानके नहीं. आत्मास्वरूप जो ज्ञान है, सो विशेषव्यवहारका हेतु नहीं; किंतु ज्ञानसहित वृत्ति अथवा वृत्तिमैं आरूढ ज्ञान व्यवहारका हेतु है. यह अवच्छेदवादी रीति है. औ आभासवादमैं आभाससहितवृत्तिसैं व्यवहार होवै है. आभासद्वारा अथवा साक्षात् वृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञानसैंही सर्व व्यवहार सिद्ध होवै है; नहीं तौ होवै नहीं. इस रीतिसैं सर्वका प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है; यातैं चित् है. औ,

आत्मा आनंदरूप है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै,

तौ विषयसंबंधसैं स्वरूपआनंदका भान होवै है, सो नहीं हुआ चाहिये. विषयमैं आनंद नहीं, यह वार्ता पूर्व कही है. जो विषयमैं आनंद होवै; तौ जा विषयतैं एक पुरुषकूं सुख होवै, तासैंही अन्यकूं दुःख होवै है. जैसैं अग्निके स्पर्शतैं अग्निकीटकूं, औ सर्पसिंहके रूप देखनेतैं सर्पनी सिंहनीकूं आनंद होवै है, औ अन्य पुरुषनकूं दुःख होवै है; सो नहीं हुआ चाहिये. औ सिद्धांतमैं तौ अग्निकीटकूं अग्निस्पर्शकी इच्छा होवै, तब चंचलबुद्धिमैं स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं. अग्निसंबंधतैं क्षणमात्र इच्छा दूर होयके निश्चलबुद्धिमैं स्वरूपआनंदका भान होवै है. अन्य पुरुषनकूं अग्निसंबंधकी इच्छा है नहीं; किंतु अन्य पदार्थनकी इच्छा है. तिन पदार्थनकी इच्छा अग्निसंबंधसैं दूर होवै नहीं. यातैं चंचल अंतःकरणमैं अग्निसंबंधसैं आनंद होवै नहीं. याके विषे,

यह शंका होवैहैः--जो इच्छारूप अंतःकरणकी वृत्ति है, सो तौ विषयप्राप्तिसैं नाशकूं प्राप्त होगई, औ अन्यवृत्तिका कोई निमित्त है, नहीं यातैं उत्पत्ति हुई नहीं. औ वृत्तिसैं विना स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं; यातैं विषयमैंही आनंद है.

सो शंका बनै नहीं. काहेतैं ? यद्यपि इच्छारूप तौ अंतःकरणकी वृत्तिका अभाव है, सो इच्छारूप वृत्ति होवै तौभी ताके विषे आनंद प्रकाश होवै नहीं. काहेतैं? इच्छारूप वृत्ति राजस है, औ आनंदका प्रकाश सात्त्विकवृत्तिमैं होवै है. तथापि वांछित पदार्थ जो मिल्या है, ताके स्वरूपकूं विषय करनेके वास्ते जो ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति है, सो सात्त्विक है. काहेतैं? सत्त्वगुणसैं ज्ञान होवै है, यह नियम है. ता सात्त्विकवृत्तिमैं आनंदका भान होवै है, परंतु सो ज्ञानरूप

वृत्ति बहिर्मुख है. ताके पृष्ठभागमैं स्थित जो अंतःकरणउप-हितचेतनस्वरूप आनंद, ताका तिस वृत्तिसैं ग्रहण होवैं नहीं. यातैं विषयउपहितचेतनरूप आनंदका भान होवै है. सो वि-षय उपहितचेतन आत्मासैं भिन्न नहीं. यातैं आत्मानंदकाही विषयमैं भान कहिये है. ता ज्ञानरूप वृत्तिविषे विषयके साथ नेत्रादिकनका संबंधही निमित्त है. अथवा,

ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति, तासैं अन्य अंतर्मुखवृत्ति होवै है. ताके विषे अंतःकरणउपहितचेतनरूप आनंदकाही भान होवै है; यह उत्तम सिद्धांत है. ता वृत्तिकी उत्पत्तिमैं इच्छा-दिकनका अभावही निमित्त है. जैसे इच्छादिकनतैं रहित जो एकांतमैं उदासीन पुरुष स्थित है, ताकूं बहिर्मुखज्ञानरूपतैं कोई वृत्ति होवै नहीं, आनंदका भान होवै है. यातैं इच्छा-दिकनके अभावरूप निमित्ततैं अंतर्मुखवृत्ति आनंद ग्रहण करनेवाली होवै है; तासैं वांछितविषयके लाभसैं इच्छादि-कनका अभाव होनेतैं ज्ञानसैं अनंतर अंतर्मुखवृत्ति होवै है. तिसतैं अंतःकरणउपहितआनंदकाही ग्रहण होवै है. सो स्वरूपआनंदका ग्रहण औ विषयका ज्ञान अत्यंत व्यवहित है, यातैं पुरुषकूं ऐसी भ्रांति होवै है.-"मैंने विषयमैं आनंद अनुभव किया है." प्रथमपक्षसैं यह पक्ष उत्तम है. काहेतैं ? जो विषयकी ज्ञानरूपवृत्ति है, तासैं अंतःकरणउपहितआनं-दका तो भान बनै नहीं. यातैं विषयउपहितआनंदका भान होवैगा, तो मार्गमैं वृक्षका ज्ञानरूप वृत्ति है सोभी सात्त्विक है, तासैंभी वृक्षउपहितचेतनस्वरूपआनंदका भान हुवा चा-हिये. तैसैं सर्वज्ञानसैं ज्ञेयउपहितचेतनरूप आनंदका भान हुआ चाहिये. यातैं अनात्मवस्तुका ज्ञानरूप जो बहिर्मुख-

वृत्ति, तासैं ज्ञेयउपहितचेतनस्वरूपआनंदका ग्रहण होवै नहीं. इस रीतिसैं विषयके संबंधसैं आत्मस्वरूपानंदका भान होवै है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै, तौ विषयसंबंधसैं आनंदका भान बनै नहीं, यातैं आत्मा आनंदरूप है. औ,

आत्माका संबंधी जो वस्तु है, ताके विषे प्रेम होवै हैं. तासैं सन्निहितमैं अधिक प्रेम होवै है. इस रीतिसैं बाहिरबाहिरके पदार्थनकी अपेक्षातैं अंतरअंतरके पदार्थनमैं अधिक प्रीति है. परंपरातैं आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्र तामैं प्रीति होवै है. पुत्रके मित्रकी अपेक्षातैं पुत्रमैं अधिक प्रीति है. औ, पुत्रसैंभी स्थूलसूक्ष्म शरीरमैं अधिक प्रीति है. औ स्थूलसूक्ष्म शरीरमैंभी स्थूलतैं सूक्ष्ममैं अधिक प्रीति है. पूर्वपूर्वसैं उत्तर उत्तर आत्माके समीप हैं. आत्माका आभास सूक्ष्मशरीरमैं है; औरमें नहीं. यातैं आभासद्वारा आत्माका सूक्ष्मशरीरसैं संबंध है, औरसैं नहीं. स्थूलशरीरसैं सूक्ष्मशरीरका संबंध है. यातैं स्थूलशरीरसैं सूक्ष्मशरीरद्वारा आत्माका संबंध है. औ पुत्रसैं स्थूलशरीरद्वारा संबंध है, औ पुत्रके मित्रसैं पुत्रद्वारा संबंध है, इस रीतिसैं उत्तरउत्तर जो आत्माके समीप ताके विषे अधिक प्रीति है. जा आत्माके संबंध होनेतैं पदार्थमैं प्रीति होवै, ता आत्मामैंही मुख्य प्रीति है; औ पदार्थमैं नहीं. जैसे पुत्रके मित्रमैं पुत्रके संबंधसैं प्रीति है, यातैं पुत्रमैंही प्रीति है; पुत्रके मित्रमैं नहीं; तैसैं आत्माके अधिकसमीपमैं अधिकप्रीति होवै है, यातैं आत्माविषेही सर्वकी प्रीति है.

सो प्रीति आनंदमैं औ दुःखके अभावमैं होवै है, औरमें नहीं. और पदार्थमैं जो प्रीति होवै, सो आनंद औ दुःखके अभावके निमित्त होवै है. यातैं आनंद औ दुःखके अभा-

वसैं औरभी प्रीति नहीं. यातैं सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा सो आनंदरूप है, और दुःखका अभावरूप है; कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवै है. जैसैं सर्पका अभाव रज्जुरूप है, यातैं कल्पित जो दुःख, ताका अभावभी आत्मारूप है. इस रीतिसैं आत्मा आनंदरूप है. औ,

न्यायमतमैं आत्माका आनंदगुण है, सो समीचीन नहीं. काहेतैं? जो आनंदगुणकूं नित्य अंगीकार करैं, तौ आगमापायी नहीं होवै; यातैं आत्माका स्वरूपही आनंद सिद्ध होवैगा. औ नित्य आनंद न्यायमतमैं है भी नहीं. औ अनित्य जो कहै, तौ अनुकूलविषय औ इंद्रियके संबंधसैं आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी. यातैं सुषुप्तिमैं आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं? सुषुप्तिमैं विषयका औ इंद्रियका संबंध है नहीं. यातैं आत्माका आनंद गुण नहीं, किंतु आत्मा आनंदस्वरूप है. इस रीतिसैं आत्मा सत् चित् आनंदरूप है. सो,

सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं; किंतु एकही है. जो आत्माके गुण होवैं, तौ परस्पर भिन्नभी होवैं औ आत्मस्वरूप है, यातैं भिन्न नहीं. एकही आत्मा निवृत्तिरहित है, यातैं सत् कहिये है. औ जडसे विलक्षण प्रकाशरूप है, यातैं चित् कहिये है. औ दुःखसे विलक्षण मुख्यप्रीतिका विषय है, यातैं आनंद कहिये है. जैसे उष्णप्रकाशरूप अग्नि है, तैसे सच्चिदानंदरूप आत्मा है. औ सच्चित् आनंदस्वरूपही शास्त्रमैं ब्रह्म कह्या है, यातैं ब्रह्मस्वरूप आत्मा है. औ ब्रह्मनाम व्यापकका है. देशतैं जाका अंत नहीं होवै, सो व्यापक कहिये हैं, तासैं आत्मा जो भिन्न होवै, तो देशतैं अंतवाला

होवैगा. 'जाका देशतैं अंत होवै ताका कालसैंभी अंत होवै है;' यह नियम है; यातैं अनित्य होवैगा. जाका कालसैं अंत होवै सो अनित्य कहिये है. यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आत्मा नहीं. और आत्मासैं भिन्न जो ब्रह्म होवै, तौ अनात्मा होवैगा. जो अनात्मा घटादिक है, सौ जड है; यातें आत्मासैं भिन्न ब्रह्मही जडही होवैगा. यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्मभी नहीं; किंतु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है.

एकही चेतन सर्वप्रपंच औ मायाका अधिष्ठान है. यातैं ब्रह्म कहिये है. अविद्या औ व्यष्टिदेहादिकनका अधिष्ठान है; यातैं आत्मा कहिये है. तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहिये है, औ त्वंपदका लक्ष्य आत्मा कहिये है. ईश्वरसाक्षी तत्पदका लक्ष्य है, औ जीवसाक्षी त्वंपदका लक्ष्य है. व्यष्टिसंघातउपहित चेतन जीवसाक्षी है, औ समष्टिसंघातउपहित चेतन ईश्वरसाक्षी कहिये है. यद्यपि जीवकी औ ईश्वरकी एकता बनै नहीं; तथापि जीवसाक्षी औ ईश्वरसाक्षीका उपाधिके भेदसैं भेद हैं; औ स्वरूपसैं एकही है. जैसैं मठमें स्थित जो घटाकाश औ मठाकाश तिनका उपाधिके भेदबिना स्वरूपसैं भेद नहीं, तैसैं आत्मा औ ब्रह्मका उपाधिभेदबिना भेद नहीं; एकही वस्तु है. सो

ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा कहिये जन्मरहित है. जो आत्माका जन्म अंगीकार करैं, तौ अनित्य होवैगा. सो वार्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं, तिनकूं इष्ट नहीं. काहेतैं ? जो आत्मा उत्पत्तिनाशवान् होवै तौ प्रथमजन्मविषै पूर्वकर्मबिनाही सुखदुःखका भोग औ किये कर्मके भोगसैं बिना नाश होवैगा. यातैं कर्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करैं तौभी

२६

जन्मनाशरहितही अंगीकार करना होवैगा. औ आत्माका जन्म जो अंगीकार करै तौ हेतुसैं बिना तौ किसी वस्तुका जन्म होवै नहीं. यातैं, किसी हेतुसैंही जन्म कहना होवेगा, सो बनै नहीं. काहेतैं ? जो आत्माका हेतु है, सो आत्मासैं भिन्नही कहना होवैगा. सो आत्मासैं भिन्न संपूर्ण आत्मामैं कल्पित है, यातैं आत्माका हेतु बनै नहीं. जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्प रज्जुका हेतु नहीं, तैसैं आत्मामैं कल्पित वस्तु आत्माका हेतु बनै नहीं.

जैसैं एकरज्जुविषे नानापुरुषनकूं दंड, सर्प, पृथ्वीरेषा, जलधाराकी भ्रांति होवै है. ता भ्रांतिमैं दो अंश हैं, एक तौ सामान्य इदंअंश है, औ एक सर्पादिक विशेष अंश है. सो सामान्य इदंअंश सर्पादिक विशेषअंशनमैं सारे व्यापक हैं. "यह सर्प है, यह दंड है, यह पृथ्वीकी रेषा है, यह जलकी रेषा है," इस रीतिसैं सर्पादिक विशेषअंशमैं इदंअंश सारे व्यापक हैं. सो व्यापकसामान्य इदंअंश रज्जुस्वरूप है. ता सामान्य इदंअंशके ज्ञानकूंही भ्रांतिका हेतु रज्जुका सामान्यज्ञान कहै हैं. सो सामान्य इदंअंश सत्य है. काहेतैं ? रज्जुका ज्ञान हुयेसैं अनंतरभी ता इदंअंशकी प्रतीति होवै है. जैसैं भ्रांतिकालमैं "यह सर्प है," या रीतिसैं सर्पादिकनसैं मिलके इदंअंशकी प्रतीति होवै है. तैसैं भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतरभी, "यह रज्जु है" या रीतिसैं रज्जुके साथ मिलके इदंअंशकी प्रतीति होवै है. जो इदंअंशभी मिथ्या होवै, तौ सर्पादिकनकी नाईं भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर ताकीभी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. यातैं सर्पादिक भ्रांतिमैं व्यापक जो इदंअंश सो सत्य है. और

अधिष्ठान रज्जुरूप है. और परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक, सो कल्पित है.

तैसैं सर्वपदार्थनमैं पांच अंश हैं; एक नाम और रूप और अस्ति तथा भाति, और प्रिय. "घट" यह दो अक्षर नाम, और "गोलरूप घट है" यह अस्ति, और "घट प्रतीति होवै है" यह भाति; और "घट, प्रिय है" यह आनंद. सर्पादिकभी सर्पिणीआदिनकूं प्रिय है. इस रीतिसैं सर्व पदार्थनमैं पांच अंश हैं. तिनविषे अस्तिभातिप्रियरूप तीन अंश सब पदार्थनमैं व्यापक हैं. और नामरूप व्यभिचारी हैं. जो वस्तु कहूं होवै औ कहूं नहीं होवै, सो व्यभिचारी कहिये है. घट नाम गोलरूप, पटविषे नहीं है. पटनाम औ ताका रूप घटविषे नहीं है. इस रीतिसैं सर्वपदार्थनविषे नामरूपअंश व्यभिचारी हैं, और अस्तिभातिप्रियरूप सर्वविषे अनुगत है. जैसैं सर्पदंडादिकनमैं अनुगत इदंअंश सत्य और अधिष्ठान है. तैसैं सर्वपदार्थनमैं अनुगत अस्तिभातिप्रियरूप सत्य है; और अधिष्ठानरूप सर्पदंडादिकनकी नाई व्यभिचारी नामरूप कल्पित हैं. और अस्तिभातिप्रिय सच्चिदानंदरूप है; यातैं आत्मस्वरूप है. इस रीतिसैं सच्चित् आनंदरूप आत्माविषे संपूर्ण नामरूपप्रपंच कल्पित है. सो कल्पित पदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं, यातैं आत्मा अजन्मा है. जा वस्तुका जन्म होवै, ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, विनाशरूप पांच विकार और होवै हैं. आत्माका जन्म होवै नहीं. यातैं उत्तर पांच विकारभी होवैं नहीं. इस रीतिसैं अजन्म कहिये, जन्मादिक षट्विकारसैं रहित आत्मा है. सत्ता नाम प्रगटताका है; और अपक्षय नाम घटनेका है. सो,

आत्मा असंग है. संग नाम संबंधका है. सो सजातीयविजातीयस्वगतपदार्थसैं होवै है. जैसैं घटका घटसैं जो संबंध है, सो सजातीयसैं संबंध है. और घटका पटसैं जो संबंध सो विजातीयसैं संबंध है. स्वगत नाम अवयवका है. यातैं पटका तंतुसैं जो संबंध, सो स्वगतसैं संबंध है. आत्मा दो अथवा अनंत होवैं, तौ सजातीयसैं आत्माका संबंध होवै, सो आत्मा एक है; यातैं सजातीय आत्मासैं आत्माका संबंध नहीं और आत्मासैं विजातीय अनात्मा है. सो मृगतृष्णाके जलकी नाईं आत्मामैं कल्पित है. ता कल्पितसैं आत्माका संबंध बनै नहीं. जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं पृथिवीका संबंध होवै नहीं; जो संबंध होवै तौ ऊपरभूमिका जलसैं गिली हुई चाहिये. जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं ऊपरभूमिका संबंध नहीं; तैसैं आत्मामैं कल्पित जो विजातीय अनात्मा, तासैं आत्माका संबंध नहीं. जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका स्वगत संबंध होवै. आत्मा नित्य है, यातैं निरवयव है; ताका स्वगतसैं संबंध बनै नहीं. इस रीतिसैं सजातीयविजातीयस्वगत संबंध आत्माविषे नहीं, यातैं असंग है. इस रीतिसैं, हे शिष्य ! सच्चितआनंदब्रह्मरूप, जन्मादिविकाररहित, असंग आत्मा है, " सो तू है " इस प्रथमप्रश्नका अर्ध दोहेसैं आचार्यने उत्तर कह्या.

" जगत्का कर्त्ता कौन है ? " इस द्वितीय प्रश्नका उत्तर अर्ध दोहेसैं कहै हैं:—

दोहा ।

विभु चेतनमाया करै, जगको उत्पत्ति भंग ।

टीका:—विभु कहिये व्यापक जो चेतन, ताके आश्रित औ ताकूं विषय करनेवाली माया कहिये सत्असत्सैं विल-

क्षण अद्भुतशक्तिरूप अज्ञान, तासैं जगत्की उत्पत्ति भंग होवै है. उत्पत्ति औ भंग कहनेतैं स्थितिका ग्रहण अर्थतैं होवै है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुआः—मायायुक्त जो चेतन सो ईश्वर कहिये है. 'ईश्वर जगत्की उत्पत्तिपालननाशका हेतु है' या कहनेतैं " जगत्का कोई कर्त्ता है, अथवा आपसैं होवै ?" याका उत्तर कह्या. औ " जगत्का कर्त्ता कोई जीव है, अथवा ईश्वर है " याकाभी उत्तर कह्या.

जगत्का कर्त्ता ईश्वर है, आपसैं होवै नहीं. जो कर्त्तासैं बिना जगत् होवै, तौ कुलालबिना घट हुवा चाहिये. यातैं जगत्का कोई कर्त्ता है. सो कर्त्ता सर्वज्ञ है. काहेतैं ? जो कार्यका कर्त्ता होवै, सो ता कार्यकूं औ ताके उपादानकूं जानके करै है. यातैं जगत्का कर्त्ताभी जगत्कूं औ जगत्के उपादानकूं जानके करै है. इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता जगत्कूं, औ जगत्के उपादानकूं जानै है; यातैं सर्वज्ञ है. औ सर्वशक्तिमान् है. काहेतैं ? जो अल्पशक्तिवाले जीव हैं, तिनसैं या जगत्की रचना मनसैंभी चिंतन होवै नहीं. यातैं अद्भुत-जगत्का कर्त्ता अद्भुतशक्तिवाला है. इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता सर्वशक्तिमान् है औ स्वतंत्र है. काहेतैं ? जो न्यूनश-क्तिवाला होवै सो पराधीन होवै है. औ सर्वशक्तिवाला परा-धीन होवै नहीं; यातैं स्वतंत्र है. इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र है; ताहीकूं ईश्वर कहै हैं. औ,

अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् पराधीनकूं जीव कहै हैं. यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमैंभी परमार्थसैं नहीं, तथापि अविद्या-कृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमैं प्रतीति होवैं हैं; यातैं जीवमैं कहिये हैं. अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकनकी जो

भ्रांति, सोई जीवता है. सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईश्वरमैं है नहीं. किंतु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वरमैं हैं. यह वार्त्ता विस्तारसैं आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता जीव नहीं; ईश्वर है.

सो ईश्वर एकदेशमैं स्थित नहीं, किंतु सर्वत्र व्यापक है, जो एकदेशमैं अंगीकार करैं, तौ जा वस्तुका देशतैं अंत होवै, ताका कालसैंभी अंत होवै है; यातैं अनित्य होवैगा. जो अनित्य होवै सो कर्त्तासैं जन्य होवै है. यातैं ईश्वरका कर्त्ता अंगीकार करना होवैगा. सो ईश्वरका कर्त्ता बनै नहीं; काहेतैं? आप तौ अपना कर्त्ता बनै नहीं. जो अपना कर्त्ता आपही अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयदोष होवैगा. आपही क्रियाका कर्त्ता, औ आपही क्रियाका कर्म होवै, तहां आत्माश्रय होवै है. जैसे कुलाल क्रियाका कर्त्ता है, औ घट कर्म है, तैसैं क्रियाका कर्त्ता औ कर्म भिन्न होवैं हैं; एक बनै नहीं. यातैं आत्माश्रय दोष है. कर्म नाम कार्यका है, औ कार्यके विरोधीका नाम दोष है. आत्माश्रय कार्यका विरोधी है, यातैं दोष है; यातैं ईश्वरका कर्त्ता अन्य अंगीकार करना होवैगा. सो अन्यभी प्रथम कर्त्ताकी न्याईं कर्त्ताजन्यही कहना होवैगा. सो ताका कर्त्ताभी प्रथमकी न्याईं तासैं भिन्नही कहना होवैगा. सो प्रथम जो ईश्वर है, ताकूं द्वितीय कर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं, तौ अन्योन्याश्रयदोष होवैगा; यातैं तृतीयकर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा. ता तृतीयका कर्ता जो द्वितीय मानै, तब तौ अन्योन्याश्रयदोष होवै, औ प्रथम मानैं तब चाक्रिकादोष होवैगा. जैसैं चक्रका भ्रमण होवै है, तैसैं प्रथमकर्ता द्वितीयजन्य, सो प्रथम फेर

द्वितीयजन्य; इस रीतिसैं कार्यकारणभावका भ्रमण होवैगा. चक्रिकास्थानमैं कोईभी सिद्ध होवै नहीं; सर्वकी परस्पर अपेक्षा है. अन्योन्याश्रयमैं दोकी परस्पर अपेक्षा है; एककी सिद्धि हुये विना अन्यकी सिद्धि होवै नहीं. यातैं, जैसैं कुलालका कर्त्ता आप नहीं, किंतु ताका पिता है, तैसैं प्रथम ईश्वरकर्त्ताका अन्य कर्त्ता है; औ कुलालका पिता अपने पुत्रसैं उत्पन्न होवै नहीं.किंतु अन्य पितासैं उत्पन्न होवै है. तैसैं द्वितीय कर्त्ता प्रथम कर्त्तासैं उत्पन्न होवै नहीं, किंतु अन्य कर्त्तासैंही कहना होवैगा. औ कुलालका पितामह, कुलाल औ ताके पितासैं उत्पन्न होवै नहीं, किंतु चतुर्थ जो कुलालका प्रपितामह, तासैं उत्पन्न होवै है. तैसैं तृतीय कर्त्ताभी प्रथम औ द्वितीय कर्त्तासें उत्पन्न होवै नहीं. यातैं चतुर्थ कर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा. ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम मानना होवेगा. यातैं अनवस्थादोष होवेगा. धाराका नाम अनवस्था है. जो कर्त्ताका धारा अंगीकार करैं, तौ कौनसा कर्त्ता जगत् करै है, यह निर्णय नहीं होवैगा. किसी एककूं जगत्का कर्त्ता माननेमैं कोई युक्ति नहीं. ता युक्तिके अभावका नामही विनिगमनाविरह कहै हैं. औ धाराकी कहूं विश्रांति अंगीकार करैं तौ जा कर्त्तामैं धाराका अंत अंगीकार किया, सोई कर्त्ता जगतका माननेयोग्य है. पूर्व सारे निष्फल होवैंगे. याका नामही प्राग्लोप कहै हैं. पिछलेके अभावका नाम प्राग्लोप है. इस रीतिसैं ईश्वरका देशतैं अंत अंगीकार करैं, तो उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी. और उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयादि षट् दोष होवैंगे. यातैं ईश्वरका देशतैं अंत नहीं, किंतु व्यापक है; याहीतैं नित्य है.

ता व्यापक ईश्वरका और जीवका स्वरूपसैं भेद नहीं; किंतु उपाधिसैं भेद हैं.काहेतैं ? अवच्छेदवादमैं मायाविशिष्ट चेतन ईश्वर कहै हैं; और अविद्याविशिष्ट चेतन जीव कहे हैं.आभासवादमैं माया और आभासविशिष्ट चेतन ईश्वर कहै हैं; और आभाससहित अविद्याविशिष्ट चेतनकूं जीव कहै हैं. आभासवादमैं आभाससहित अविद्या औ मायाका भेद है; चेतनका नहीं. तैसैं अवच्छेदवादमैंभी अविद्या औ मायाका भेद है; स्वरूपसैं चेतनका भेद नहीं. औ अज्ञानमैं चेतनका प्रतिबिंब जीव है; औ बिंब ईश्वर है. या पक्षमैंभी चेतनका स्वरूपसैं भेद नहीं; किंतु एकही चेतनमैं जीवपना औ ईश्वर पना आरोपित है.यह वार्त्ता आगे कहैंगे.इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र ईश्वर है. सो ईश्वर व्यापक है. ताका औ जीवका विशेषणमात्रसैं भेद है; औ स्वरूपसैं अभेद है. यह द्वितीयप्रश्नका उत्तर कह्या.

“ मोक्षका साधन ज्ञान है, अथवा कर्म है, अथवा उपासना है अथवा दो हैं ? ” याका उत्तर कहै हैं:—

दोहा ।

हेतु मोक्षको ज्ञान इक, नहीं कर्म नहिं ध्यान ।
रज्जुसर्प तबहीं नशै, होय रज्जुको ज्ञान ॥

टीका--मुक्तिका हेतु कर्म औ ध्यान कहिये उपासना नहीं; किन्तु ज्ञानही हेतु है. काहेतैं, जो आत्मामैं बंध सत्य होवे, तौ ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसैं होवै नहीं;किन्तु कर्म अथवा उपासनातैं होवै. सो बंध आत्मामैं सत्य है नहीं, किंतु रज्जु-सर्पकी नाईं मिथ्या है. ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञान-

सैंही बनै है; कर्म अथवा उपासनासैं नहीं. जैसा रज्जुका सर्प किसी क्रियातैं दूर होवै नहीं, केवल रज्जुके ज्ञानसैं दूर होवै, तैसैं आत्माके अज्ञानसैं प्रतीत जो होवै है बंध, ता बंधकी प्रतीति औ अज्ञान आत्माके ज्ञानसेही दूर होवै है.

जो कर्मका फल मोक्ष होवै तौ मोक्ष अनित्य होवैगा. काहेतैं ? यह नियम है:—जो कृषिआदि कर्मका फल अन्नादिक है, सो अनित्य है. औ यज्ञादिकर्मका फल स्वर्गादिकभी अनित्य है. जो मोक्षभी कर्मका फल अंगीकार करैं, तौ अनित्य होवेगा. यातैं कर्मका फल मोक्ष नहीं. तैसैं उपासनाका फल जो अंगीकार करै, तौभी मोक्ष अनित्य होवैगा. काहेतैं ? उपासनाभी मानसकर्मही है; औ कर्मका फल अनित्य होवै है; यातैं उपासनारूप कर्मका फलभी मोक्ष नहीं. औ,

कर्मकर्त्ताकूं कर्मसैं पांच प्रकारका उपयोग होवै है. पदार्थकी उत्पत्ति, तथा नाश, अथवा पदार्थकी प्राप्ति वा पदार्थका विकार, तैसैं संस्कार. अन्यरूपकी प्राप्तिका नाम विकार है. संस्कार दो प्रकारका होवै है:--मलकी निवृत्ति औ गुणकी उत्पत्ति. यह पांच प्रकारका कर्मसैं उपयोग होवै है. सो मुमुक्षुकूं कोई भी बनै नहीं; यातैं मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवणादिकविषेही प्रवृत्त होवै; औ कर्ममैं नहीं. जैसैं कुलालके कर्मतैं कुलालकूं.

घटकी उत्पत्ति उपयोग होवै है, तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मतैं मोक्षकी उत्पत्ति उपयोग बनै नहीं. काहेतैं ? जो अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामैं नित्यसिद्ध है. जैसैं रज्जुमैं सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है. औ आत्मा परम आनंदस्वरूप है, यातैं परमानंदकी प्राप्तिभी नित्यसिद्ध है. इस रीतिसैं स्वभावसिद्ध

मोक्षकी कर्मसैं उत्पत्ति बने नहीं. जो वस्तु आगे सिद्ध नहीं होवै, ताकी कर्मसैं उत्पत्ति होवै है; औ सिद्ध वस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं. औ,

वेदांतश्रणभी मोक्षकी उत्पात्तिके निमित्त नहीं कह्या, किंतु "आत्मा नित्यमुक्त है, किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं" इस वार्त्ताके जाननेके वास्ते श्रवण है. यह जानके कर्तव्यभ्रांति दूर होवै है. औ वेदान्तश्रवणसैं अनंतरभी जिनकूं कर्तव्यप्रतीति होवै है तिननैं तत्त्व जान्या नहीं. इसी कारणतैं नित्यनिवृत्ति जो अनर्थ, ताकी निवृत्ति, औ नित्यप्राप्त आनंदकी प्राप्ति, वेदांतश्रवणका फल देवगुरुने नैष्कर्म्यसिद्धिमें कह्या है यातैं मोक्षकी उत्पत्तिरूप कर्मका, उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

जैसे दंडके प्रहाररूप कर्मका, घटका नाशरूप उपयोग होवै है, तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मतैं किसी पदार्थका नाशरूप उपयोगभी बनै नहीं. काहेतैं ? अन्य पदार्थका नाश तौ मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं, बंधका नाशही कर्मसैं उपयोग कहना होवैगा, सो बंध आत्मामैं है नहीं; मिथ्या प्रतीति होवै है. ता मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्मतैं बनै नहीं; औ आत्माके यथार्थज्ञानसैं तो मिथ्याप्रतीतिका नाश बनै है. यातैं मुमुक्षुकूं पदार्थका नाशरूप उपयोगभी कर्मसैं बनै नहीं. जैसैं गमनरूप कर्मतैं ग्रामकी प्राप्ति होवै है, तैसे मोक्षकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसैं बनै नहीं. काहेतैं ? जो आत्मा नित्यमुक्त है, ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै नहीं; जाकूं बंध होवै, ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै है. औ आत्मामैं बंध है नहीं, यातैं मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

जैसैं पाककरूप कर्मसैं अन्नका विकाररूप उपयोग पाचकक्कूं होवैहै, तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मसैं विकाररूप उपयोगभी बनै नहीं. काहेतैं ? और तौ कोई विकार बनै नहीं; जो आत्मामैं प्रथमबंध अंगीकार करै, औ मोक्षदशामैं चतुर्भुजादिक लक्षणरूप प्राप्ति अंगीकार करैं, तौ अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै है. सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामैं अंगीकार नहीं, यातैं कर्मसैं विकाररूप उपयोगभी मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

जैसे वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका, मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवै है, तैसैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कारभी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग नहीं. काहेतैं ? अन्यके मलकी निवृत्ति तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं, आत्माके मलकी निवृत्ति कहनी होवैगी, सो आत्मा नित्यशुद्ध है, ताके विषे मल है नहीं. यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बनै नहीं. औ अंतःकरण विषे पापरूप जो मल है, ताकी निवृत्ति जो कर्मसैं उपयोग कहै, तो यह वार्ता सत्य है; परंतु शुद्ध अंतःकरणवाला जो मुमुक्षु है, ताका विचार करै हैं. ताके अंतःकरणमेंभी पाप है नहीं; यातैं पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कारभी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं. औ अज्ञानकूं जो मल कहै, तौ अज्ञान आत्मामैं हैभी, परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसैं होवै नहीं. काहेतैं ? अज्ञानका विरोधी ज्ञान है; कर्म नहीं. यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं. जैसैं वस्त्रका कुसुंभमैं मज्जनरूप कर्मका रक्तगुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवै है तैसैं गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसैं पउयोग बनै नहीं. काहेतैं ? अन्यविषे ता

गुणकी उत्पत्ति कहना बनै नहीं.आत्माविषेही कहना होवैगा.सो आत्मा निर्गुण है;ताके विषे गुणकी उत्पत्ति बनै नहीं. मुमुक्षुकूं यातैं गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कारभी कर्मका उपयोग बनै नहीं. या प्रकरणमैं उपयोग नाम फलका है. कर्मका पांचही प्रकारका फल होवै है, और नहीं. सो पांच प्रकारका कर्मका फल मुमुक्षुकूं बनै नहीं, यातैं कर्मकूं त्यागके ज्ञानके साधन श्रवणविषेही मुमुक्षु प्रवृत्त होवै. उपासनाभी मानस कर्मही है; यातैं ताके खंडनमैं पृथक् युक्ति नहीं कही. इस रीतिसैं केवल कर्म अथवा उपासना मोक्षका हेतु नहीं; किंतु केवल ज्ञान है. औ कोई कर्म उपासनासहित ज्ञानकूं मोक्षका हेतु अंगीकार करैं हैं, औ ताके विषे युक्तिदृष्टांतभी कहै हैं. जैसैं आकाशमैं पक्षीका एकपक्षसैं गमन होवै नहीं, किंतु दो पक्षसैं गमन होवै, तैसैं मोक्षलोककोभी एक ज्ञानरूप पक्षसैं गमन होवै नहीं; किंतु एक पक्ष तौ उपासनासहित कर्म है; औ द्वितीय पक्ष ज्ञान है. उपासनाभी मानस कर्मही है, यातैं एकही पक्ष है.

अन्य दृष्टांतः—जैसैं सेतुके दर्शनसैं पापका नाश होवै है. सो सेतुका दर्शनभी प्रत्यक्षरूप ज्ञान है. औ श्रद्धाभक्तिसहित गमनादि नियमकी अपेक्षा करै है. जो श्रद्धादिकसहित पुरुष होवै, ताकूं सेतुदर्शनसैं फल होवै नहीं. जैसैं सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी, फलकी उत्पत्तिमैं अपेक्षा कहै हैं. तैसैं ब्रह्मज्ञानभी मोक्षरूप फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै हैं. औ,

केवलज्ञानसैं जो मोक्ष अंगीकार करै हैं, सोभी ज्ञानका हेतु तौ कर्मउपासना मानै हैं. शुद्ध औ निश्चल अंतःकरणमैं

ज्ञान होवै है. सो अंतःकरण शुभकर्मसैं शुद्ध होवै है, औ उपासनासैं निश्चल होवै है.इस रीतिसैं अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताद्वारा कर्मउपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार किये हैं.

जैसे ज्ञानके हेतु कर्मउपासना अंगीकार किये, तैसैं ज्ञानके फल मोक्षके हेतुभी अंगीकार करनेयोग्य हैं.

दृष्टांतः—जैसे जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्तिका हेतु है, औ वृक्षके फलकी उत्पत्तिकाभी हेतु है. जो बनके वृक्षनके जलसेचनबिना फल होवै हैं, सोभी वृक्षके मूलमें नीचे जलका संबंध है; यातैं फल होवै है, औ जलके संबंधबिना वृक्षभी सूख जावै; औ फलभी होवै नहीं.

तैसैं कर्म,उपासना, ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं, औ ज्ञानका फल जो मोक्ष, ताकेभी हेतु हैं. इस रीतिसैं कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों मोक्षके हेतु हैं, यातैं ज्ञानवानभी कर्म करै.

अथवा, कर्म उपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु है; काहेतैं ? जो कर्मउपासनाका ज्ञानवान् त्याग करै, तौ उत्पन्न हुवा ज्ञानभी जलसैं बिना वृक्षकी नाईं नष्ट होय जावैगा. काहेतैं ? शुद्धअंतःकरणमैं ज्ञान होवै है; औ शुभकर्म नहीं करै तौ ज्ञानवानकूं पाप होवैगा. औ उपासनाके त्यागसैं अंतःकरण फेर चंचल होय जावैगा. ता मलीन औ चंचल अंतःकरणमैं ज्ञान रहै नहीं; जैसे सूखी भूमिमैं उत्पन्न हुवा वृक्षभी रहै नहीं.

अन्यदृष्टांतः—जैसैं संस्कारसैं शुद्ध किये स्थानमैं वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करै है औ शुद्ध किया स्थानभी किसी निमित्तसैं फेर मलिन होय जावै, तौ ता स्थानकूं त्याग देवै है. तैसैं कर्मके त्यागसैं मलिन, औ उपासनाके त्यागसैं चंचल हुवा जो अंतःकरण, ताकेविषे ज्ञान रहै नहीं; यातैं

कर्म औ उपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं. इस रीतिसैं कर्म, उपासना, ज्ञान, तीनों मोक्षके हेतु अंगीकार करैं, तथा ज्ञानकी रक्षाके हेतु कर्म उपासना अंगीकार करैं, औ केवलज्ञान मोक्षका हेतु अंगीकार करैं, दोनों प्रकारसैं ज्ञानवानकूं कर्मउपासना कर्तव्य है. याकूं समुच्चयवाद कहै हैं, सो समीचीन नहीं. काहेतैं ?

देहसैं भिन्न जो आत्मा नहीं जानै, तासैं कर्म होवै नहीं; काहेतैं ? जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करै है; औ देहका अग्निविषे दाह होवै है; तासैं जन्मांतरका भोग बनै नहीं; यातैं शरीरतैं भिन्न आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो शरीरसैं भिन्नभी आत्माका कर्त्ताभोक्तारूपकरके ज्ञान कर्मका हेतु है. "मैं पुण्यपापका कर्त्ता हूं, औ पुण्य पापका फल मेरेकूं होवैगा" ऐसा जाकूं ज्ञान है, सो कर्म करै है. औ ज्ञानिनकूं ऐसा आत्माका ज्ञान है नहीं; किंतु पुण्यपाप औ सुखदुःखतैं रहित असंगब्रह्मरूप आत्मा है, ऐसा वेदांतवाक्यसैं ज्ञान होवै है. सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं; उलटा विरोधी है. यातैं ज्ञानवानसैं कर्म होवै नहीं. औ कर्त्ता कर्म फलका भेदज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्ताकर्मफलकी ज्ञानवानकूं आत्मासैं भिन्न प्रतीति होवै नहीं; संपूर्ण आत्मस्वरूपही प्रतीति होवै है. यातैंभी ज्ञानवानसैं कर्म होवै नहीं औ भाष्यकारने बहुत प्रकारसैं ज्ञानवानकूं कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है. कर्मका औ ज्ञानका फलसैं विरोध है. यातैं भी ज्ञानकर्मका समुच्चय बनै नहीं. कर्मका फल अनित्य संसार है, औ ज्ञानका फल नित्य मोक्ष है. औ, आत्मामैं जाति आश्रम अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु

है. काहेतैं ? जाति आश्रम अवस्थांके योग्य भिन्न भिन्न कर्म कहे हैं. यातैं जाति आदिकनका अध्यास कर्मका हेतु है. यद्यपि जाति आश्रम अवस्था देहके धर्म हैं, औ कर्मीकूं देहमैं आत्मा बुद्धि है नहीं, किंतु देहसैं भिन्न कर्त्ता आत्मा कर्मी जानै है. यह वार्त्ता पूर्व कही. यातैं जाति आश्रम अवस्थाकी प्रतीति आत्मामैं कर्मीकूंभी बनै नहीं. तथापि देहसैं भिन्न आत्माका कर्मीकूं अपरोक्षज्ञान नहीं, किंतु शास्त्रसैं परोक्षज्ञान है. औ देहमैं आत्मज्ञान अपरोक्ष है. जो देहसैं भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवै, तौ देहमैं अपरोक्ष आत्मज्ञानका विरोधी होवै. औ परोक्षज्ञानका अपरोक्षज्ञानसैं विरोध है नहीं; यातैं देहसैं भिन्न कर्ता आत्माका ज्ञान, औ देहमैं आत्मबुद्धि दोनुं एककूं बनै हैं. दृष्टांत:--मूर्तिमैं ईश्वरज्ञान शास्त्रसैं परोक्ष है, औ पाषाणबुद्धि अपरोक्ष है; तिनहीका विरोध नहीं. दोनों एककूं होवैं हैं, औ रज्जुमैं जाकूं सर्पसैं अपरोक्षभेदज्ञान है, ताकूं अपरोक्ष सर्पभ्रांति दूरि होवै है. यातैं यह नियम सिद्ध हुवा कि--अपरोक्षभ्रांतिका अपरोक्षज्ञानसैं विरोध है, परोक्षसैं नहीं. यातैं देहसैं भिन्न आत्माका परोक्षज्ञान, और देहमैं अपरोक्षज्ञान बनै है. सो दोनों कर्मके हेतु हैं. देहसैं भिन्नभी कर्त्तारूपकरके आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्तारूपकरके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है. औ भ्रांति विद्वानकूं है नहीं; यातैं कर्मका अधिकार नहीं. औ,

देहमैं अपरोक्षआत्मबुद्धि होवै, तब देहके धर्म जाति आश्रमअवस्था प्रतीत होवैं; सो देहमैं आत्मबुद्धिभी विद्वानकूं है नहीं; किंतु ब्रह्मरूपकरके आत्माका अपरोक्षज्ञान है. यातैं

जाति आश्रम अवस्थाकी भ्रांतिके अभावतैंभी विद्वानकूं कर्मका अधिकार नहीं.औ उपासनाभी "मैं उपासक हूं, देव उपास्य है" या बुद्धिसैं होवै है. सो विद्वानकूं उपास्यउपासकभाव प्रतीत होवै नहीं. "देहादिक संघात तौ मेरा औ देवका स्वप्नकी नाईं कल्पित है. औ चेतन एक है;" यह विद्वानका निश्चय है. यातैं ज्ञानका उपासनासैं विरोध है. औ,

पक्षीके गमनका दृष्टांत बनै नहीं. काहेतैं? पक्षीके तौ दो पक्ष एक कालमैं रहै हैं; तिनका परस्पर विरोध नहीं.औ ज्ञानका तौ कर्मउपासनासैं विरोध है, एक कालमैं बनै नहीं. औ,

सेतुके ज्ञानका दृष्टांतभी बनै नहीं. काहेतैं? सेतुका दर्शन दृष्टफलका हेतु नहीं; किंतु अदृष्टफलका हेतु है. प्रत्यक्ष जो फल प्रतीत होवै, सो दृष्टफल कहिये है. जैसैं भोजनका फल तृप्ति प्रत्यक्ष है, यातैं भोजन दृष्टफलका हेतु है, तैसैं सेतुके दर्शनसैं प्रत्यक्षफल प्रतीत होवै नहीं; किंतु पापका नाशरूप फल शास्त्रसैं जान्या जावै है. जो शास्त्रसैं फल जानिये, औ प्रत्यक्षप्रतीत होवै नहीं; सो अदृष्टफल कहिये है. यातैं जैसैं यज्ञादिककर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलके हेतु हैं, तैसैं सेतुका दर्शनभी पापका नाशरूप अदृष्टफलका हेतु है. जो अदृष्टफलका हेतु होवै है, सो तौ जितना फलकी उत्पत्तिमैं शास्त्रने सहाय बोध किया है, तासहित फलका हेतु होवै है, केवल नहीं. यातैं श्रद्धानियमादिकसहित सेतुका दर्शन पापनाशरूप फलका हेतु है;श्रद्धानियमादिकरहित हेतु नहीं. काहेतैं? सेतुके दर्शनसैं प्रत्यक्ष तौ कोई फल प्रतीत होवै नहीं;केवल शास्त्रसैं जान्या जावै है,सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसैं फलबोधन करै है; केवल दर्शनसैं फलकी उत्पत्तिमैं कोई प्रमाण

नहीं. यातैं सेतुका दर्शन फलकी उत्पत्तिमैं श्रद्धानियम भक्तिकी अपेक्षा करै है. औ,

ब्रह्मविद्या अपने फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं. काहेतैं ? जो ब्रह्मविद्याका फलभी स्वर्गकी नाईं लोकविशेष अदृष्ट होवै, सो लोकविशेषभी केवल ब्रह्मविद्यासे शास्त्रने बोधन नहीं किया होवै; किंतु कर्मउपासनासहितसैं बोधन किया होवै, तौ ब्रह्मविद्याभी सेतुके दर्शनकी नाईं फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै. सो ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष स्वर्गकी नाईं लोकविशेषरूप अदृष्ट तौ है नहीं, किंतु मोक्ष नित्यप्राप्त है औ भ्रांतिसैं बंध प्रतीत होवै. ता भ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है. सो भ्रांतिकी निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासैं हमारेकूं प्रत्यक्ष है औ रज्जुज्ञानसैं सर्पभ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्ष है. यात अधिष्ठानज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति दृष्टफल है. दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसैं प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है, सो सामग्री दृष्टफलकी हेतु कहिये है. जैसैं तुरीतंतुवेमसैं पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है, यातैं तुरीतंतुवेम पटके हेतु हैं. औ केवल भोजनसैं तृप्तिरूप फल प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है; यातैं केवल भोजन तृप्तिका हेतु है. तैसैं केवल अधिष्ठानज्ञानतैं भ्रांतिकी निवृत्ति प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है, यातैं केवलअधिष्ठानका ज्ञानही भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु है. जैसे रज्जुका ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं, तैसैं बंधकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा, ताका ज्ञानभी बंधभ्रांतिकी निवृत्तिमैं कर्मउपाननाकी अपेक्षा करै नहीं. औ,

ज्ञानके फल मोक्षकूं जो स्वर्गकी नाईं लोकविशेप अदृष्ट

अंगीकार करै हैं, सो वेदवाक्यसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? ज्ञानवानके प्राण किसी लोककूं गमन नहीं करते, यह वेदमैं कह्या है. औ लोकविशेष अंगीकार करनेतैं, स्वर्गकी नाईं मोक्ष अनित्य होवैगा. यातैं लोकविशेषरूप मोक्ष नहीं, औ लोकविशेष जो मोक्ष अंगीकार करै, ताकूंभी केवल ज्ञानसैंही मोक्षलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है. काहेतैं ? जो शास्त्रने प्रतिपादन किया अर्थ होवै, सो शास्त्रके अनुसारही अंगीकार करिये है. सो शास्त्र केवल ज्ञानसैं मोक्ष कहै है यातैं केवलज्ञान मोक्षका हेतु है, कर्मउपासनाज्ञान तीनों नहीं. औ,

वृक्षका दृष्टांतभी बनै नहीं. काहेतैं ? यद्यपि जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्ति औ रक्षामैं हेतु है, तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्तिमैं नहीं. वृद्ध जो वृक्ष है, ताके विषे जलका सेचन वृक्षकी रक्षाके निमित्त है; फलके निमित्त नहीं. जलसैं पुष्ट जो वृक्ष, सोई फलका हेतु है, जलसेचन नहीं. तैसैं कर्मउपासनाकाभी ज्ञानकी उत्पत्तिमैं उपयोग है. मोक्षमैं नहीं. यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताके निमित्त कर्मउपासना करै, ज्ञानसैं अनंतर मोक्षके निमित्त नहीं.

ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वभी जितने अंतःकरणमैं मल औ विक्षेप होवैं तवपर्यंतही करै. शुद्ध औ निश्चल अंतःकरण जाका होवै, सो जिज्ञासु श्रवणके विरोधी कर्मउपासनाका त्याग करै. मल नाम पापका है, सो अशुभवासनाका हेतु है. जवपर्यंत मल होवै, तवपर्यंत अशुभ वासना होवै है. जव अशुभवासना होवै नहीं, तव मलका अभाव निश्चय करै. अंतःकरणकी चंचलता औ एकाग्रता अनुभवसिद्ध है. यातैं

उत्तमजिज्ञासु औ विद्वानकूं कर्मउपासना निष्फल है. औ,

पूर्व जो कह्या "ज्ञानकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै. जैसैं जलसैं उत्पन्न हुवा जो वृक्ष, ताकी जलसैं रक्षा होवै है, जो जलका संबंध नहीं होवै, तो वृद्धवृक्षभी सूख जावै है, तैसैं कर्मउपासनासैं उत्पन्न हुवा जो ज्ञान, ताकी कर्मउपासनासैं रक्षा होवै है. जो ज्ञानी कर्मउपासना नहीं करै, तो अंतःकरण मलिन औ चंचल फेरि होय जावैगा. ता मलिन औ चंचल अंतःकरणमैं सूखी भूमिमैं वृक्षकी नाईं उत्पन्न हुवा ज्ञानभी नष्ट होय जावैगा. यातैं ज्ञानवान्भी कर्मउपासना करै."

सो बनै नहीं. काहेतैं? आभाससहित अथवा चेतनसहित जो अंतःकरणकी "मैं असंग ब्रह्म हूं" यह वृत्ति, सो वेदांतका फलरूप ज्ञान है, ताका कर्मउपासनासैं विना नाश होवैगा; अथवा चेननस्वरूप ज्ञानका नाश होवैगा. जो ऐसे कहैः—स्वरूपज्ञान तो नित्य है; यातैं ताका तो नाश औ रक्षा बनै नहीं; परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान है, ताकी कर्मउपासनासैं उत्पत्ति होवै है, औ कर्मउपासनाके त्यागसैं उत्पन्न हुई विद्याभी नष्ट होय जावैगी; यातैं ताकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करैं, सो बनै नहीं. काहेतैं? एकवार उत्पन्न हुई जो अंतःकरणकी ब्रह्माकार वृत्ति तासैं ज्ञान औ भ्रांतिका नाशरूप फल तिसही समय सिद्ध होवै है. अज्ञान औ भ्रांतिके नाशतैं अनंतर फेर वृत्तिकी रक्षाका उपयोग नहीं. औ अंतःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासैं रक्षा बनैभी नहीं. काहेतैं? जब कर्मउपासनाका अनुष्ठान करैगा, तब कर्मउपासनाकी सामग्रीकाही वृत्तिरूप

ज्ञान होवैगा; ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं. और वृत्ति हुयेतैं प्रथमवृत्ति रहै नहीं; यातैं कर्मउपासना, ज्ञानकी उत्पत्तिके तो परंपरातैं हेतु हैं; औ उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं. यातैं कर्मउपासनातैं ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं. औ,

पूर्व जो कह्या "ज्ञानवानकूं कर्मके त्यागसैं पाप होवै है." सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतैं ? जो शुभकर्मका त्याग है, सो पापका हेतु नहीं; किंतु, निषिद्धकर्मका अनुष्ठानही पापका हेतु है. यह वार्ता भाष्यकारने बहुत प्रकारसैं प्रतिपादन करी है; यातैं कर्मके त्यागसैं पाप होवे नहीं. औ ज्ञानवानकूं तो सर्वप्रकारसैं पापका असंभव है. काहेतैं ? पुण्य पाप औ तिनका आश्रय अंतःकरण परमार्थसैं है नहीं. अविद्यासैं मिथ्याप्रतीति होवै है. सो अविद्या औ मिथ्या प्रतीति ज्ञानवान्के है नहीं. यातैं ज्ञानवानकूं शुभकर्मके त्यागसैं अथवा अशुभके अनुष्ठानसैं पाप बनै नहीं.

या स्थानमैं यह सिद्धांत है:—मंद औ दृढ दो प्रकारका ज्ञान है. संशयादिकसहित जो ज्ञान, सो मंदज्ञान कहिये है, औ संशयादिकरहित ज्ञान दृढ कहिये है. जाकूं दृढज्ञान होवै, ताकूं किंचिन्मात्रभी कर्तव्य नहीं. एकबार उत्पन्न हुवा जो संशयादिकरहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान सोई अविद्याका नाश करि देवै है. सो ज्ञान आपभी दूर होय जावै, तोभी भलेप्रकारसैं जाने आत्मामैं फेर भ्रांति होवै नहीं. काहेतैं? जो भ्रांतिका कारण अविद्या है, सो अविद्या एकबार उत्पन्न हुये ज्ञानसैं नष्ट होय गई; यातैं भ्रांति औ अविद्याके अभावतैं वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कुछ उपयोग नहीं. औ जीवन्मुक्तिके आनंदके वास्ते जो वृत्तिकी

आवृत्ति अपेक्षित होवै, तौ वारंवार वेदांतके अर्थका चिंतनही करै. वेदांतके अर्थचिंतनसैंही वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति होवै है. औ कर्मउपासनातैं नहीं. काहेतैं ? कर्म औ उपासनाका अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताद्वाराही ज्ञानमैं उपयोग है; और रीतिसैं नहीं. औ विद्वानके अंतःकरणमें पाप औ चंचलता है नहीं. रागद्वेषद्वारा पाप औ चंचलताका हेतु अविद्या है. ता अविद्याका ज्ञानसैं नाश होवै है. यातैं विद्वानके पाप औ चंचलताके अभावतैं कर्मउपासनाका उपयोग नहीं और,

जो कदाचित् ऐसे कहैः—रागद्वेषादिक अंतःकरणके सहज धर्म हैं. जितने अंतःकरण हैं उतने रागद्वेषका सर्वथा नाश ज्ञानवानकेभी होवै नहीं. तिन रागद्वेषतैं ज्ञानवानकाभी अंतःकरण चंचल होवै है. यातैं चंचलता दूर करनेकेवास्ते ज्ञानवानभी उपासना करै.

यद्यपि ज्ञानवानकूं अंतःकरणकी चंचलतासैं विदेहमोक्षमैं हानि नहीं, तथापि चंचल अंतःकरणमैं स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं. यातैं चंचलता, जीवन्मुक्तिकी विरोधी है. यातैं जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता दूर करनेके वास्ते उपासना करै.सो बनै नहीं.काहेतैं ? यद्यपि दृढबोध जाके अंतःकरणमैं हुआ है, ताके समाधि औ विक्षेप समान हैं; यातैं अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वानकूं बनै नहीं.

तथापि विद्वानकी प्रवृत्ति औ निवृत्ति प्रारब्धके आधीन है. प्रारब्धकर्म सर्वका विलक्षण है. किसी विद्वानकी जनकादिकनकी नाईं भोगका हेतु प्रारब्ध है औ किसीका शुकदेव वामदेवादिकनकी नाईं निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है.

जाके भोगका हेतु प्रारब्ध है, ताकूं ता प्रारब्धसैं भोगकी इच्छा औ भोगके साधनका यत्न होवै है. औ जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवै, ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै है, औ भोगमें ग्लानि होवै है. जाकूं जविन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै, सो ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदांत अर्थका चिंतनही करै; उपासना नहीं. काहेतैं ? अंतःकरणकी निश्चलतामात्रसैं ब्रह्मानंदका विशेषस्वरूपसैं भान होवै नहीं; किंतु ब्रह्माकारवृत्तिसैंही होवै है. सो ब्रह्माकारवृत्ति वेदांतचिंतनसैंही होवै है; उपासनासैं नहीं. औ अंतःकरणकी चंचलताभी विद्वानकूं वेदांतके चिंतनसैंही दूर होय जावै है. यातैं अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्तभी उपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं. इस रीतिसैं दृढबोध जाकूं हुवा है, ताकी कर्मउपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं. औ,

जाके मंदबोध है, सोभी मनन औ निदिध्यासनही करै, कर्मउपासना नहीं. काहेतैं ? मंदबोध जाकूं हुवा है, सो उत्तम जिज्ञासु है. ता उत्तम जिज्ञासूकूं मनननिदिध्यासनसैं विना अन्य कर्तव्य नहीं; यह वार्ता शारीरकमैं सूत्रकार औ भाष्यकारने प्रतिपादन करी है. औ विद्वानकूं मनननिदिध्यासनभी कर्तव्य नहीं. जो जीवन्मुक्तिके आनंदके वास्ते विद्वान् मनननिदिध्यासनमैं प्रवृत्त होवै है; सोभी अपनी इच्छासे प्रवृत्त होवै है. औ "मैं वेदकी आज्ञा नहीं करूंगा, तो मेरेकूं जन्ममरणसंसार होवैगा." इस बुद्धिसैं जो क्रिया करै, सो कर्तव्य कहिये है. सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वानके होवै नहीं, यातैं अपनी इच्छातैं जो विद्वान् मनननिदिध्यासन करै, सो कर्तव्य नहीं. इस रीतिसैं मंदबोध

अथवा दृढबोध जाकूं हुआ है, तिनकूं कर्मउपासना कर्तव्य नहीं. औ,

जाकूं बोध नहीं हुआ है, किंतु आत्माके जाननेकी तीव्र इच्छा है, भोगकी नहीं, ताका अंतःकरण शुद्ध है; यातैं सोभी उत्तमही जिज्ञासु है. ताकूंभी बोधके वास्ते श्रवणादिकही कर्तव्य हैं, कर्मउपासना नहीं. काहेतैं ? जो कर्मउपासनाका फल है, सो ताके सिद्ध है. औ ज्ञानकी सामान्य इच्छातैं जो श्रवणमैं प्रवृत्त हुआ है, औ अंतःकरण भोगनमैं आसक्त है, सो मंदजिज्ञासु है. सोभी श्रवणकूं त्यागके फेर कर्मउपासनामैं प्रवृत्त होवै नहीं. जो कर्म उपासनाका फल अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलता है, सो ताकूं श्रवणसैंही होय जावैगी. श्रवणकी आवृत्तितैं अंतःकरणका दोष दूर होयके इस जन्मविषे अथवा अन्यजन्मविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे ज्ञान होवै है. आवृत्ति नाम वारंवारका है. औ श्रवणकूं त्यागके जो कर्मउपासनामैं प्रवृत्त होवै है. सो आरूढपतित कहिये है. इस रीतिसैं ज्ञानवान् औ उत्तमजिज्ञासुका कर्मउपासनाविषे अधिकार नहीं. औ मंदजिज्ञासुभी जो वेदांतश्रवणमैं प्रवृत्त हुवा है, ताका अधिकार नहीं. औ ज्ञानकी जाकूं इच्छा तौ है, परंतु भोगमैं बुद्धि आसक्त है यातैं श्रवणमैं प्रवृत्त नहीं हुवा ऐसा जो मंदजिज्ञासु, ताका निष्कामकर्म औ उपासनामैं अधिकार है. औ,

जाकी भोगविषेही आसक्ति है, औ ज्ञानकी इच्छा नहीं ऐसा जो बहिर्मुख है, ताका सकामकर्मविषेभी अधिकार है. यातैं ज्ञानवानकूं कर्मउपासनाका अधिकार नहीं. कर्मउपासनाका ज्ञान विरोधी है, औ,

कर्मउपासनाभी अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलता-द्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ हेतु हैं; परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर जो कर्मउपासना करै, तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान नष्ट होय जावैगा; यातैं ज्ञानके विरोधी हैं, इच्छाके हेतु नहीं. काहेतैं ? "मैं कर्त्ता हूं, औ यज्ञादिक मेरेकूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल है," या भेदबुद्धिसैं कर्म होवै है. औ "मैं उपासक हूं, देव उपास्य है; " या भेद-बुद्धिसैं उपासना होवै है. सो दोनों प्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकूं दूर करके होवै है. यातैं कर्मउपासना ज्ञानके विरोधी हैं. यद्यपि ज्ञानवान् आत्माकूं असंग जानै है, तौभी देहका भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिकनकी नाईं अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार करै है, ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी नहीं औ व्यवहार-ज्ञानकाभी विरोधी नहीं. काहेतैं ? जो आत्मस्वरूप ज्ञानसैं असंग जान्या है, ता आत्माविषे जो व्यवहार प्रतीत होवै तौ व्यवहारका विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार होवै; सो विद्वानकूं आत्माविषे व्यवहार प्रतीत होवै नहीं. किंतु संपूर्ण व्यवहार देहादिकनकें आश्रित हैं औ आत्माविषे व्यवहारसहित देहादिकनका संबंध है नहीं. या बुद्धिसैं संपूर्ण व्यवहार करै हैं. इसी कारणसैं विद्वानकी प्रवृत्तिभी निवृत्तिही कही है.

जैसे अन्य व्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं, तैसे कर्मउपासनाभी अन्यबहिर्मुख पुरुषनके करावनेवास्ते आत्माकूं असंग जानके, और देह वाक् अंतःकरणके आश्रित क्रिया जानके जो कर्मउपासना करै, तौ ज्ञानके विरोधी नहीं.

काहेतैं ? जो आत्मा विद्वान्ने असंग जान्या है, ताकूं कर्ता जानके जो कर्म, उपासना करै, तौ ज्ञानके विरोधि होवैं. सो आत्माका असंगरूप दृढनिश्चय कर्मउपासनासैं विद्वान्का दूर होवै नहीं. यातैं आभासरूप कर्म औ उपासना दृढज्ञानके विरोधी नहीं. इसी कारणतैं जनकादिकनने आभासरूप कर्म करे हैं. जो आत्माकूं असंग जानके और व्यवहारकी नाईं देहादिकनके धर्म जानके विद्वान् शुभक्रिया करै, सो आभासरूप कर्म कहिये है; ताका ज्ञानसैं विरोध नहीं. औ भाष्यकारने कर्मउपासनाका जो ज्ञानसैं विरोध कह्या है, सो आत्मामैं कर्ताबुद्धिसैं जो कर्मउपासना करै है, ताका विरोध कह्या है; औ आभासरूपसैं नहीं. तथापि,

मंदबोधके आभासरूप कर्म, औ आभासरूप उपासनाभी विरोधी हैं. काहेतैं ? जो संशयादिकसहित बोध है, सो मंदबोध कहिये है. जाके अंतःकरणमैं "आत्मा असंग है अथवा नहीं है" ऐसा कदाचित् संशय होवै, सो पुरुष जो वारंवार "आत्मा असंग है, मेरेकूं किंचित्मात्रभी कर्तव्य नहीं" या अर्थकूं चिंतन करै तब तौ संशय दूर होयके दृढ बोध होय जावै. औ कर्म उपासना करैगा, तौ मंधबोध जो उत्पन्न हुवा है सो दूर होयके "मैं कर्ता भोक्ता हूं" यहविपरीतनिश्चय होय जावेगा. यातैं मंदबोधकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्मउपासना करै; औ अनंतर नहीं. जो मंदबोधवाला कर्म उपासना करैगा, तो उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होय जावैगा. दृष्टांतः—जैसैं पक्षी अपने अंडेकूं पक्षकी उत्पत्तिसैं पूर्व सेवन करै है; औ पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं. जो पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतरभी अंडेकूं सेवन करै, तौ बालकपक्षीके ता अंडेके ज-

लसैं पक्ष गल जावैं, ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्मउपासनाका सेवन करै;औ ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं. जो ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतरभी कर्म उपासनाका सेवन करै; तौ बालककी नाईं मंदज्ञानका नाश होय जावै, औ वृद्धपक्षीकी जैसैं अंडेके संबंधसैं हानि होवै नहीं, तैसैं दृष्टबोधकी तौ हानि होवै नहीं, औ वृद्धपक्षकी नाईं दृढबोधकूं कर्मउपासनासैं उपयोगभी नहीं. इस रीतिसैं ज्ञानवान्कूं मोक्षके निमित्त किंचिन्मात्रभी कर्तव्य नहीं. यह तृतीय प्रश्नका उत्तर कह्या.

जो शिष्यकूं आचार्यने उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार कहे, यातैं यथार्थ हैं; यह वार्ता कहै हैं—

दोहा ।

शिष्य कह्यो जो तोहिं मैं, सर्व वेदको सार ।
लहे ताहि अनयासही, संसृति नशै अपार ॥ ११ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जो मैं तेरेकूं कह्या सो सर्व वेदका सार है, यातैं याविषे विश्वास कर. औ याके जाननेतैं अनयास कहिये खेदविना अपार जो संसृति कहिये जन्ममरण रूप संसार ताका नाश होवै है.

यद्यपि खेदका नाम आयास है, ताके अभावका नाम अनायास है; तथापि छंदके वास्ते अनयास पढ्या है, भाषामैं छंदके वास्ते गुरुके स्थानमें लघु औ लघुके स्थानमैं गुरु पढनेका दोष नहीं. औ मोक्षके स्थानमें मोछही भाषामैं पाठ होवै है. काहेतैं ? यह भाषाका संप्रदाय है.

दोहा।

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृत्तहेत[1] उच्चार।
रू व्है अरुकी ठौरमें, अवकी ठौर वकार ॥ १ ॥
संयोगी क्ष न कपर ख न, नहीं टवर्ग णकार।
भाषामें ऋ ऌ हू नहीं, अरु तालव्य शकार ॥ २ ॥

टीकाः—इतने अक्षर भाषामें नहीं, कोई लिखै तौ कवि अशुद्ध कहैं. क्षके स्थानमैं छ, खके स्थानमैं प, णकारके स्थानमैं नकार, ऋऌके स्थानमें रि लि है, शकारके स्थानमैं सकार भाषामें लिखनेयोग्य है ॥ १ ॥ २ ॥

" जगत्का[2] कर्त्ता ईश्वर है, सो तेरेसैं भिन्न नहीं औ सत्‌चित्‌आनंदरूप ब्रह्म तू है" यह आचार्यने कह्या; सोई कृपातैं फेर कहै हैं—

कवित्व।

दीनताकूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देख,
तूं तौ शुद्धब्रह्म अज दृश्यको प्रकाशी है।
आपने अज्ञानतें जगत सव तूंही रचै,
सर्वको संहार[3] करै आप अविनाशी[4] है ॥
मिथ्यापरपंच देखि दुःख जिन आनि जिय,
देवनको देव तू तौ सबसुखराशी[5] है।

१ वृत्त अर्थात् छन्द शुद्ध होनेके वास्ते लघुको गुरु और गुरुको लघु उच्चारण किया जाता है, तथा "अरु" के स्थानमें "रु" अवके स्थानेमें "व" कहते हैं. इत्यादि औरभी जान लेने. २ जगत्का. ३ नाश. ४ नाशरहित. ५ सर्व सुखोंका समूह.

जीव जग ईश होय मायासैं प्रभासै तूही,
जैसे रज्जु साँप सीप रूप व्है प्रभासी है ॥ १२ ॥

अर्थ स्पष्ट है.

कवित्व ।

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि ।
बारवार मृगवारि पारवार पेखिये ॥
ज्ञानभानु आनि तमतम तारि भागत्याग ।
जीव शीव भेद छेद वेदन सु लेखिये ॥
वेदको विचार सार आपकूं सँभार यार ।
टारि दासपास आश ईशकी न देखिये ॥
निश्चल तू चल न अचल चलदल छल ।
नभ नील तल मल तासूं न विशेखिये ॥ १३ ॥

टीकाः—ज्ञानके साधन कहैं हैं:—हे शिष्य ! राग जो पदार्थनमैं दृढ आसक्ति है, ताकूं जारके, लोभकूं हार कहिये नाश कर. द्वेषकूं मार. मार कहिये कामकूं, वारि, दूर कर. राग, लोभ, द्वेष, कामके ग्रहणतैं, सर्व राजसीतामसीवृत्तिका ग्रहण है; यातैं सर्व राजसीतामसीवृत्तिका नाश कर, यह अर्थ सिद्ध हुआ. राजसीवृत्ति औ तामसीवृत्ति ज्ञानकी विरोधी है. तिनके नाशविना ज्ञान होवै नहीं. यातैं तिनकी निवृत्ति जिज्ञासुकूं अपेक्षित है. विवेक, वैराग्य, शमादिषट्-संपत्ति, मुमुक्षुता, ये चार जो ज्ञानके साधन हैं, तिनमें विवेक प्रधान है. काहेतैं ? विवेकसैं वैराग्यादिक उत्पन्न होवैं हैं. यातैं विवेकका उपदेश आचार्य करैं हैं:—हे शिष्य ! पारवार जो संसार है, ताकूं वारंवार मृगवारि कहिये मृगतृष्णाके जलस-

मान मिथ्या जान, पारवार नाम संसारका है; औ अपारवार नाम आत्माका है. पारवार मिथ्या है, या कहनेतैं अपारवार मिथ्या नहीं; किंतु सत्य है, यह वार्ता अर्थसैं कही. जैसैं बाजीगरके तमासे देखते पुत्रकूं पिता कहै:- “ हे पुत्र ! यह आम्रवृक्षसैं आदि लेके जो बाजीगरने बनाये हैं, सो मिथ्या हैं” या कहनेतैं बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानै है; किंतु सत्य जानै है. तैसैं जगत्कूं मिथ्या कहनेतैं आत्माकूं सत्य जान लेवेगा. या अभिप्रायतैं आचार्यने पारवार मिथ्या कह्या. इस रीतिसैं जगत् मिथ्या है, औ आत्मा सत्य है; या विवेकका उपदेश कऱ्या. ता विवेकसैं अन्य साधन आपही उत्पन्न होवैं हैं. यातैं विवेकके उपदेशतैं सर्व साधनका उपदेश अर्थसैं कह्या. ज्ञानके बहिरंगसाधन कहे; अंतरंगसाधन श्रवणादि कहै हैं:-हे शिष्य ! ज्ञानरूपी जो भानु है, ताकूं आनि कहिये श्रवणसैं संपादन करके, तम कहिये अज्ञानरूपी जो तम अंधेरा है, ताकूं तारि कहिये नाश कर. तम नाम अंधेरा औ अज्ञानका है. अंधेरा उपमान है, औ अज्ञान उपमेय है; प्रथम जो तमशब्द है, सो उपमेयका वाचक है; औ दूसरा उपमानका वाचक है.

दोहा.

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखान ।
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमान ॥ ३ ॥

टीका:—ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्रनमैं नानाप्रकारका अंगीकार किया है. यातैं महावाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप कहै हैं:—हे शिष्य ! जीव औ ईश्वरविषे अविद्या औ मायाभोगकूं त्यागके तिनका जो भेद प्रतीत होवै है; ताकूं

छेद कहिये दूर कर, औ जीवईश्वरमें जो वेदन कहिये चेतनभाग है, ताकूं भेदरहित जान. या कहनेतैं यह वार्त्ता कही:—महावाक्यनमें भागत्यागलक्षणातैं जीवईश्वरकी एकता जान शिवके स्थानमैं शीव पढ्या है. तृतीय पादका अर्थ स्पष्ट है.

पूर्व कहे अर्थकूं संक्षेपतैं चतुर्थपादसैं कहै हैं. हे शिष्य! चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात, सो तू नहीं; किंतु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तू है, औ चलदल कहिये वृक्षरूप जो संसार, सो छल कहिये मिथ्या है. जैसे नभविषे नीलता, औ तलमल कहिये कटाहरूपता है नहीं, किंतु मिथ्या प्रतीत होवै है.तैसे संसारभी आत्माविषे है नहीं; मिथ्या प्रतीत होवै है. वृक्षरूप करके संसार, श्रुतिस्मृतिमैं कह्या है; यातैं वृक्षके वाचक चलदलशब्दका संसारमैं प्रयोग कऱ्या है.

मोक्षका साधन ज्ञान है,या अर्थकूं अन्य प्रकारसैं कहै हैं—

कवित्त ।

वंध–मोक्ष–गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग रु विराग दोइ ध्वजा फहरात है।
विषयविषे सत्यभ्रम भ्रममति वात तात,
हललात प्रात रात घरि न ठरात है।
साक्ष्य साक्षी पूतरी अनुचरी रु ऊजरी द्वै,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात है।
चंचल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुखकूप आनँदस्वरूपमें समात है॥ १४॥

टीकाः—हे शिष्य! देहवान् कहिये देहअभिमानी अज्ञानी, औ ज्ञानवान्, ये बंधऔ मोक्षके गेह कहिये धाम हैं. अज्ञानी तौ बंधका धाम है औ ज्ञानी मोक्षका धाम है. राग औ विराग तिनकी ध्वजा है. जैसैं ध्वजा राजाके नगरका चिह्न होवै है, तैसैं राग औ विराग तिनके चिह्न हैं. अज्ञानीका राग चिह्न है, औ ज्ञानीका विराग चिह्न है. अज्ञानीविषेभी विराग होवै है; यातैं ज्ञानीका अज्ञानीसैं विलक्षण विराग कहै हैंः—हे तात! विषय जो शब्दादिक हैं, तिनविषे सत्य-भ्रम कहिये, सत्यपनेकी भ्रांति, औ भ्रममति कहिये रज्जु-सर्पकी नाईं विषय भ्रमरूप है; यह जो मति निश्चय सो वातकी नाईं राग औ विरागकूं हलावै है. जैसै वायु ध्वजाकी चंचलता करै है, तैसैं विषयमैं सत्यबुद्धि औ भ्रमबुद्धि, राग औ विरागकूं चंचल करै है; शिथिल होने देवै नहीं. विषयमें सत्यबुद्धिसैं रागकी शिथिलता दूर होवै है. औ विषयमें भ्रमबुद्धिसैं विरागकी शिथिलता दूर होवै है.

विषय असत्य है, यातैं तिनमैं सत्यबुद्धि भ्रांतिरूप है, इस वार्त्ताके जनावनेकूं कवित्तमैं सत्यभ्रम कह्या; सत्यबुद्धि नहीं कही. भ्रांतिज्ञान, औ भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु, सो दोनों भ्रम कहिये हैं. या कहनेतैं अज्ञानीके विरागतैं ज्ञानीके विरागका भेद कह्या, काहेतैं जो अज्ञानीका विराग है, सो विषयमैं मिथ्याबुद्धिसैं उत्पन्न नहीं हुवा; यातैं मंद है. विषय मिथ्या है, यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं. यद्यपि शास्त्रयुक्तिसैं अज्ञानीभी मिथ्या जानै है, तथापि " विषय मिथ्या है " यह अपरोक्षमति ज्ञानवान्कूंही होवै है; अज्ञानीकूं नहीं. यातैं अज्ञानीकूं विषयमें परोक्ष जो मिथ्या-

बुद्धि, तासैं अपरोक्षसत्यभ्रांति दूर होवै नहीं. इस रीतिसैं अज्ञानीकूं विषयमें जब विराग होवैहै, ता कालसैं परोक्षमिथ्याबुद्धि हैभी, परंतु परोक्षमिथ्याबुद्धिसैं प्रबल अपरोक्ष सत्यबुद्धि है;यातैं अज्ञानीकी परोक्षमिथ्याबुद्धि विरागकी हेतु नहीं. किंतु प्रबल जो सत्यबुद्धि तासैं विषयमैं रागही होवै है, औ जो विराग होवै, तौभी मिथ्याबुद्धिसैं नहीं; किंतु विषयमें दोषदृष्टिसैं होवै है. ज्ञानवान् सर्वप्रपंचकूं अपरोक्षरूप करके मिथ्या जानै है. ता अपरोक्षमिथ्याबुद्धिसैं, अपरोक्षसत्यबुद्धि दूर होवै है. यातैं रागकी हेतु विषयमैं सत्यबुद्धि तौ ज्ञानकूं है नहीं; विरागकी हेतु विषयमें मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्कूं है. जो ज्ञानीकूं विषयमें सत्यबुद्धि फेरहोवै, तौ राग फेर होवै, औ विराग दूर होवै. सो अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जानै. पदार्थमें फेर सत्यबुद्धि होवै नहीं. जैसैं अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जान्या जो रज्जुमें सर्प, ताके विषे सत्यबुद्धि फेरि होवै नहीं. तैसैं ज्ञानीकूं फेर सत्यबुद्धि होवै नहीं, इस रीतिसैं रागकी उत्पत्ति औ विरागकी निवृत्ति, ज्ञानीकूं होवै नहीं, यातैं ज्ञानीका विराग दृढ है. औ दोषदृष्टिसैं जो अज्ञानीकूं विराग होवै है सो तौ दूर होय जावै है. काहेतैं ? जा पदार्थनमैं दोषदृष्टि होवै है ता पदार्थमैंही अन्य कालमैं सम्यग्बुद्धिभी होय जावै है. जैसैं सर्व पुरुषनकूं पशुधर्मके अंतमें स्त्रीविषे दोषदृष्टि होवै है औ कालांतरमैं फे सम्यग्बुद्धि होवै है. इस रीतिसैं दोषदृष्टि जब दूर होवै, तब अज्ञानीका विरागभी दूर होय जावै है, यातैं अज्ञानीकूं दृढ विराग होवै नहीं. इस रीतिसैं राग औ विराग, अज्ञानी औ ज्ञानीके चिह्न कहे.

औरभी चिह्न कहे हैं:—हे शिष्य! जैसैं धामके ऊपर पुतरी कहिये हस्तिआदिकनकी मूर्ति होवै हैं, तैसैं बंधमोक्षका धाम जो अज्ञानी, औ ज्ञानीका अंतःकरण है, ताके विषे साक्ष्यसाक्षी पूतरी है, अज्ञानी अंतःकरणविषे तौ साक्ष्यरूपी पूतरी है, औ ज्ञानी अंतःकरणमें साक्षीरूपी पूतरी है. साक्षीका विषय जो प्रपंच है, ताकूं साक्ष्य कहै हैं. साक्ष्यरूपी पूतरी अनूजरी कहिये मलिन है. औ साक्षीरूपी पूतरी ऊजरी कहिये शुद्ध है. आगे अर्थ स्पष्ट है. चंचलभ्रम निजरूप लखि, औ अचलब्रह्म निजरूप लखि; या क्रमतैं अन्वय है.

भागत्यागलक्षणाका जो कवित्तमैं विशेषकरके ग्रहण किया है, ताविषे हेतु कहनेकूं लक्षणाका भेद कहै हैं—

दोहा।

त्रिविधै लक्षणा कहत हैं, कोविद बुद्धिनिधान।
जहती अरु अजहती पुनि, भागत्याग निजजान॥१५॥
आदि दोइ नहिं संभवै, महावाक्यमैं तात।
भागत्यागतैं रूप निज, ब्रह्मरूप दरशात॥ १६॥

अर्थ स्पष्ट.

॥ शिष्य उवाच ॥

अर्धशंकरछंद।

अव लच्छना प्रभु कहत काकूं, देहु यह समुझाय।
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लक्षणहु दरशाय॥

---

१ तीन प्रकारकी. २ प्रथमकी दोनों अर्थात् जहती और अजहती.
३ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यमें.

टीकाः—सामान्यज्ञानसैं अनंतर विशेषका ज्ञान होवै है. जैसैं सामान्यब्राह्मणका ज्ञान हुयेसैं अनंतर सारस्वत-आदिक विषेका ज्ञान हौवै है. तैसैं लक्षणासामान्यका ज्ञानं हौवै, तौ जहतीआदिक विशेषरूपनका ज्ञान हौवै. लक्षणा का सामान्यरूप जानेबिना, जहतीआदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै नहीं. इस अभिप्रायतैं शिष्य कहै हैः—हे प्रभो! लक्षणा काकूं कहत हैं, यह मैं नहीं जानूं हूं; यातैं लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिसतैं अनंतर जो जहतीआदिक लक्षणाके तीन भेद कहिये विशेष हैं, तिनके जुदे जुदे लक्षण दिखावो. छंदके वास्ते प्रभोकूं प्रभु पढ्या, औ भाषाकी संप्रदायतैं लक्षणाके स्थानमें लच्छना पढ्या.

गुरुवाक्य.

शंकरछंद ।

श्रुति चित्त निज एकाग्र करि ।
अब शिष्य सुनि मम बानि ॥
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके ।
लेहु नीके जानि ॥
सुन वृत्ति है द्वैभांति पदकी ।
शक्ति तामैं एक ॥
तहँ लच्छना पुनि जानि दूजी ।
सुनहु सो सविवेक ॥

टीकाः—पदका जो अर्थसैं संबंध, सो वृत्ति कहिये है. सो वृत्ति दो प्रकारकी है. ता दो प्रकारमैं एक शक्तिवृत्ति है औ

दूजी लक्षणावृत्ति है. तिनकूं सविवेक कहिये विवेकसहित याका अर्थ लक्षणसहित सुन.

अथ शक्तिलक्षण.

दोहा ।

जा पदतैं जा अर्थकी, व्है सुनतेहि प्रतीति ।
ऐसी इच्छा ईशकी, शक्ति न्यायकी रीति ॥ १९ ॥

टीकाः—जा पदतैं कहिये घटपदतैं, जा अर्थकी कहिये कलश अर्थकी सुनतैंही प्रतीति कहिये ज्ञान सर्वपुरुषनकूं होवै ऐसी जो ईश्वरकी इच्छा, ताकूं न्यायशास्त्रमैं शक्ति कहै हैं.

अथ स्वरीतिशक्तिलक्षण.

अर्ध—शंकरछंद.

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेदमतअनुसार ।
सो वह्निमैं जिमि दाहकी है, शक्ति त्यूं निर्धार ॥

टीकाः—घटपदके श्रोताकूं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनेका जो घटपदविषे सामर्थ्य, सोई घटपदमें शक्ति है. तैसैं पटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनेका जो पटपदविषे सामर्थ्य, सोई पटपदमैं शक्तिवृत्ति है. ऐसे सर्वपदनमैं जान लेनी. दृष्टांतः—जैसैं वह्निमैं अपनेसैं मिलतेही, वस्तुके दाह करनेकी सामर्थ्यरूप शक्ति है, तैसैं श्रोताके कर्णसैं मिलतेही वस्तुके ज्ञान करनेकी जो पदविषे सामर्थ्य, सो शक्ति कहिये है. सामर्थ्य नाम समर्थपनेका है, जाकूं सामर्थाई कहै हैं; औ बलभी कहै हैं, जोरभी कहै हैं. जैसैं अग्निमैं दाहकी शक्ति है, तैसैं जलविषे गीला करनेकी, तृषा दूर करनेकी, पिंड बांधनेकी, जो सम-

थीई है, सो शक्ति है. इस प्रकारसैं सर्वपदार्थनविषे अपना अपना कार्य करनेका सामर्थ्य है. सोई शक्ति है. यह वेदका सिद्धांत है. ताहीकूं निर्धार कहिये निश्चय कर, औ न्यायकी रीति त्यागनेकूं योग्य है.

शिष्य उवाच ।

शंकरछंद ।

ननुवह्निमें नहिं शक्ति भासै, वह्नि विन कछु और ।
है हेतुता जो दाहकी, सो वह्निमें तिहि ठौर ॥
इमि पदनहूंमें वर्णबिन कछु, शक्ति भासत नाहिं ।
या हेतुतें जो ईशइच्छा, शक्ति सो मह्निमाहिं ॥ २१ ॥

टीकाः--ननुशब्द संदेहका वाचक है. वह्निमें ताके स्वरूपसैं जुदी शक्ति भासे कहिये प्रतीत होवै नहीं. औ पूर्व कह्या दाहका हेतु जो वह्निमें सामर्थ्य, सोई वह्निमैं शक्ति है; सो बनै नहीं. काहेतें? दाहकी हेतुता कहिये जनकता कारणपना केवल वह्निमैंही है. अप्रसिद्धसामर्थ्य वह्निमें मानके ताके विषे हेतुता माननेका, औ प्रसिद्धवह्निमें हेतुता त्यागनेका कछु प्रयोजन नहीं. जैसैं दृष्टांतमैं, शक्ति नहीं संभवै, इमि कहिये इस रीतिसैं पदनके विषेभी वर्णका समुदाय जो पदनका स्वरूप तासैं जुदी शक्ति भासै नहीं; औ ताका प्रयोजनभी नहीं. या हेतुतें ईश्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसैं शक्ति, सोई मेरी मतिमाहिं भासे है.

गुरुरुवाच ।

शंकरछंद ।

प्रतिबंध होते वह्नितैं नहिं, दाह उपजै अंग ।
उत्तेजक रु जब धरै तब, फिरि दहै वह्नि स्वसंग ॥
व्है वह्निमें जो हेतुता, तौ दाह व्है सबकाल ।
जो नशै उपजै वह्नि होते, हेतु शक्ति सु बाल ॥२२॥

टीका:—हे अंग ! प्रिय ! प्रतिबंधके होते अग्निसैं दाह होवै नहीं. औ उत्तेजक समीप धरै, तब स्वसंग कहिये अग्निसैं मिल्या जो पदार्थ ताका दाह, प्रतिबंध होते भी होवै है. जो शक्तिसैं बिना केवल अग्निकूं दाहकी हेतुता होवै, तौ सर्वकाल कहिये, उत्तेजकसहित प्रतिबंधकाल औ प्रतिबंधरहितकालकी नाईं उत्तेजकसहित प्रतिबंधकालमैंभी दाह हुवा चाहिये? काहेतैं, दाहका हेतु केवल अग्नि ता कालमैंभी है. औ स्वमतमैं तौ यह दोष नहीं. काहेतैं ? स्वमतमैं अग्निकी शक्ति, अथवा शक्तिसहित अग्नि दाहका हेतु है; केवल अग्नि नहीं. जहां प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसैं अग्निका तौ नाश वा तिरोधान नहींभी होता; तथापि अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान होवै है. यातैं दाहका हेतु शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्निका अभाव होनेतैं दाह होवै नहीं. औ जा स्थानमैं प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आया है, तहां प्रतिबंधने तौ अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान करदिया, परंतु उत्तेजकने फेर शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है. यातैं प्रतिबंधके होतेभी उत्तेजकके माहात्म्यतैं दाहका हेतुशक्ति वा शक्तिसहित अग्निके होनेतैं दाह होवै. चतुर्थपादका अक्षरार्थ यह

हैः--हे बाल, अज्ञाततत्त्व! जो नशै कहिये नाशकूं प्राप्त होवै प्रतिबंधतैं, औ उपजै उत्तेजकतैं, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है. कारजका जो विरोधी सो प्रतिबंध औ प्रतिबंधक कहिये है. औ प्रतिबंधकके होते कारजका साधक उत्तेजक कहिये है.

अग्निके स्थान प्रतिबंधक, औ उत्तेजक मणि मंत्र औषध है. जा मणि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसैं दाह होवै नहीं, सो प्रतिबंधक, औ जा मणि मंत्र औषधके सन्निधानसैं प्रतिबंधक होतेभी दाह होवै, सो उत्तेजक है.

गुरुवाक्य ।

अर्धशंकरछंद ।

शिषरीति यह सब वस्तुमें तूं, शक्ति लेहु पिछानि ।
विन शक्ति नहिं कछु काज होवै, यहै निश्चय मानि ॥

टीकाः—हे शिष्य! वह्निकी नाईं जल आदिक सर्व पदार्थनविषे तूं शक्ति पिछान; शक्तिसैं विना किसी हेतुसैं कोई होवै नहीं. सार्धशंकरसैं शक्तिका प्रयोजन कह्या.

पूर्व जो शिष्यने प्रश्न कियाथाः--"शक्ति वह्निसैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं." ताका समाधान कहनेकूं अर्धशंकरसैं शक्तिका अनुभव दिखावै हैंः—

अर्धशंकरछंद ।

अब शक्ति यामें है नहीं वह, शक्ति उपजी और ।
यह शक्तिको परसिद्ध अनुभव, लोपि है किस ठौर ॥

अर्थ—स्पष्ट. सिद्धांतकी रीतिसैं शक्तिका स्वरूप औ शक्तिमैं प्रमाण निरूपण किया.

अन्यमतकी शक्तिखंडन करैं हैं.

अर्धशंकरछंद.

जो शक्ति इच्छा ईशकी सो पदनके न नजीक ॥
मत न्यायको अन्याय या विधि,शक्ति जानि अलीक ॥२

टीकाः--जो ईश्वरकी इच्छारूप पदशक्ति कही, सो बनै नहीं. काहेतैं ? ईश्वरकी इच्छा ईश्वरका धर्म है; यातैं ईश्वरमैं रहै. जो इच्छा सो पदकी शक्ति है, यह कहना बनै नहीं. जो पदका धर्म शक्ति होवै तौ पदकी शक्ति है यह कहना बनै. यातैं पदकी सामर्थ्यरूपही पदकी शक्ति है. ईशकी इच्छा पदके नजीकभी नहीं, सो पदकी शक्ति है; यह कहना बनै नहीं. अलीक नाम झूठका है.

अथ वैय्याकरणरीतिशक्तिलक्षण.

अर्धशंकरछंद.

योग्यता जो अर्थकी पदमाहिं शक्ति सु देखि ।
यूं कहत वैय्याकरणभूषण, कारिका हरि लेखि ॥

टीकाः--पदके विषे जो अर्थकी योग्यता कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पदमैं शक्ति है. जैसे घटपदविषे कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है, सोई शक्ति है. इस रीतिसैं वैय्याकरकभूषण ग्रंथमैं हरिकी कारिका प्रमाण लिखके शक्ति कही है. अथवा वैय्यारणके जो

भूषण कहिये उत्तम वैय्याकरणते हरिकी कारिका कहिये श्लोककूं देखिके कहत हैं.

गुरुवाक्य ।

सार्धशंकरछंद.

सुन शिष्य वैय्याकरणमतमैं प्रबलदूषण एक ।
सामर्थ्य पदमैं है न वा यह, पूछि ताहि विवेक ॥
भाषैं जु है तौ शक्ति मानहु, ताहि लोकप्रसिद्ध ।
कहि नाहिं जो असमर्थ पदसो, योग्य व्है यह सिद्ध ॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध ॥
जो और दूषण देखनो तौ ग्रंथदर्पण शोध ॥ २८ ॥

टीकाः--प्रथमपाद स्पष्ट. हे शिष्य! अर्थज्ञानकी हेतुतारूप योग्यताकूं जो शक्ति मानै है, ताकूं यह विवेक पूछ किः तेरे मतमें पदविषे सामर्थ्य है, अथवा नहीं है ? प्रथमपक्ष कहै तौ हमारे मतकी शक्ति बलसैं सिद्ध होवै है. यह तृतीयपादसैं कहे हैं. "भाषै जु है तौ," इति. याका अन्वयः-जु कहिये जो भाषै है, तौ लोकप्रसिद्ध शक्ति ताहि मानहु. अर्थ- जो वैयाकरणी कहै, पदमैं सामर्थ्य है, तौ लोकमैं प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप-शक्ति है, ताहि पदमैंभी मानहु. पदमैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताकूं शक्ति मति मान.

अभिप्राय यह हैः-जो पदमैं सामर्थ्य अंगीकार करै, ताकूं सामर्थ्यसैं भिन्नरूप शक्तिका मानना योग्य नहीं. किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है; यह मानना योग्य है. काहेतैं ? सामर्थ्य

---

१ बडा भारी दोष.

बल जोर शक्ति, ये चार नाम एक वस्तुके लोकमैं प्रसिद्ध हैं. जोरहीनकूं लोक कहै हैं--यह सामर्थ्यहीन है, बलहीन है, शक्तिहीन है; और भर्जित अन्नकूं कहै हैं--याके विषे अंकुरउत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है, बल नहीं है, शक्ति नहीं है, जोर नहीं है. इस रीतिसैं सामर्थ्य औ शक्तिकी एकता लोकमैं प्रसिद्ध है. औ वह्निमैं भी सामर्थ्यरूपही शक्ति निर्णीत है. यातैं पदमैं सामर्थ्यरूपही शक्ति माननी योग्य है. औ पदमैं सामर्थ्य मानके तासैं भिन्न योग्यताकूं शक्ति कहनेका लोकप्रसिद्धिके विरोधविना और फल नहीं. केवल लोकप्रसिद्धिका विरोधही फल है. औ,

जो ऐसे कहै, सामर्थ्यकूंही हम योग्यता कहै हैं, तौ हमाराही मत सिद्ध होवै है. औ ऐसे कहैं, हम सामर्थ्य अंगीकार करैं तौ सामर्थ्यरूप शक्ति पदमैं संभवै; सो सामर्थ्यकूं अंगीकारही नहीं करते. यातैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताही पदमैं शक्ति है ताकूं यह पूछ्या चाहियेः-

सामर्थ्यका अभाव केवलपदमैंही अंगीकार करै हैं, अथवा वह्निआदिक सर्वपदार्थनमैं सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करै हैं? जो अंत्यपक्ष कहैं, तो वह्निआदिक पदार्थनमैं सामर्थ्यरूप शक्तिके प्रतिपादनमैं उक्त जो युक्ति तिनतैं खंडित है औ प्रथमपक्ष कहैं तो ताकेविषे अंत्यपक्ष उक्त दोष तौ यद्यपि नहीं है; काहेतैं? जो वह्निआदिक सर्व पदार्थनमैं सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं मानैं, तौ प्रतिबंधकतैं दाहका अभाव बनै नहीं. यह अंत्यपक्षमैं दोष है; सो दोष प्रथमपक्षमैं नहीं. काहेतैं? वन्हिआदिक सर्व पदार्थनमैं तौ सामर्थ्यरूप शक्ति है; यातैं प्रतिबंधकतैं दाहके अभावका असंभव नहीं, परंतु पदके विषे अर्थज्ञानकी जन-

कतारूप योग्यतासैं भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं; किंतु पदमैं अर्थकी योग्यताही शक्ति है, यह प्रथमपक्ष है. ताके विषे प्रतिबंधकतैं दाहका असंभवरूप दोष तौ नहीं, तथापि,

पदविषेभी वन्हिकी नाईं सामर्थ्यका अंगीकार अवश्य किया चाहिये; यह प्रतिपादन करै हैं; शंकरके दो पादनतैं:-"नाहिं जो असमर्थ" इत्यादि सविरोधपर्यंत. अर्थ-नाहिं कहिये पदमैं सामर्थ्यका अंगीकार नहीं, तौ जो असमर्थपद सो योग्य, कहिये अर्थज्ञानका जनक है. यह सिद्ध कहिये मतका निश्चय है, सो असंगत है. काहेतैं ? पद असमर्थ है, औ अर्थयोग्य, कहिये अर्थज्ञानका जनक है; यह वाक्य नपुंसक अमोघवीर्य है; इस वाक्यकी नाईं कहतेही सविरोध है; विरोधसहित है. सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है. औ सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थ है. असमर्थसैं कोई कार्य होवै नहीं, यह लोकमैं प्रसिद्ध है. यातैं असमर्थपदसैंभी अर्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं. यातैं पदमैं सामर्थ्य मानना योग्य है. जब सामर्थ्य पदमैं अंगीकार किया तब शक्तिभी पदमैं सामर्थ्यरूपही माननी योग्य है. इस रीतिसैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता, पदमैं शक्ति नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है. जो वैय्याकरणमतमैं और दूषण देखना होवै,तौ शक्तिके निरूपणमैं दर्पणग्रंथकूं शोध कहिये देख. दूषण क्लिष्ट है, यातैं दर्पणउक्त दूषण लिख्या नहीं.

अथ भट्टरीतिशक्तिलक्षण.

अर्धशंकरछंद.

संबंध पदको अर्थसैं तादात्म्य शक्ति सुवेद ।
इमि भट्टके अनुसारि भाषत, ताहि भेदाभेद ॥ २९ ॥

टीकाः--पदका अर्थसैं जो तादात्म्यसंबंध, ताकूं भट्टके अनुसारी शक्ति कहै हैं सो वेद कहिये तू जान. ताहि कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेदरूप कहै हैं. यह तिनका अभिप्राय हैः--अग्निपदका अंगारअर्थसैं अत्यंत भेद नहीं. जा अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं अग्निपदसैं अत्यंत भिन्न जलआदिके हैं; तिनकी अग्निपदसैं प्रतीति होवै नहीं, तैसैं अग्निपदसैं अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नहीं होवैगी. पदसैं अत्यंत भिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं. जैसैं पदका अपने अर्थसैं अत्यंत भेद नहीं तैसैं अत्यन्त अभेदभी नहीं. जो अत्यन्त अभेद वाच्यवाचकका होवै, तौ जैसे अग्निपदके वाच्य अंगारसैं मुखका दाह होवै है, तैसैं अंगारका वाचक अग्निपदके उच्चारण कियेतैंभी मुखका दाह हुवा चाहिये. औ पदके उच्चारणतैं दाह होवै नहीं; यातैं अत्यंत अभेदभी नहीं, किंतु अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं, भेदसहित अभेद है. भेद है यातैं दाह होवै नहीं, औ अभेद है यातैं अग्निपदतैं जलआदिकनकी नाईं अंगारकी प्रतीतिका असंभवभी नहीं. जैसे अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं, भेदसहित अभेद है; तैसे उदक, वन, जल, दक,जीवन पदनका पानीरूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है. जो अत्यंत भेद होवै तौ जैसैं उदकआदिक पदनतैं अत्यंत भिन्न अग्निआदिक हैं; तिनकी उदकआदिक पदनतैं प्रतीति होवै नहीं. तैसैं पानीरूप अर्थकीभी उदकआदिक पदनतैं प्रतीति नहीं होवैगी; यातैं अत्यंतभेद नहीं; औ अत्यंतअभेदभी नहीं. जा अत्यंतअभेद होवै, तौ जैसे पानीतैं मुखमैं शीतलता होवै है, तैसैं उदकआदिक पदनके उच्चारणतैंभी मुखमैं शीतलता हुई चाहिये; और पदनतैं शीत-

लता होवै नहीं, यातैं अत्यंत अभेद नहीं. किंतु भेदसहित अभेद होनेतैं दोऊ दोष नहीं. इस रीतिसैं सर्वत्रही अपने अपने वाच्यतैं; वाचकपदनका भेदसहित अभेद है. ता भेदसहित अभेदकूंही, भट्टके अनुसारी तादात्म्यसंबंध कहै हैं; औ भेदाभेद कहै हैं. सो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधही सर्वपदनमैं अपने अपने अर्थकी शक्ति है. तादात्म्यसंबंधसैं जुदी सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं. भेदाभेदमैं युक्ति कही.

अब प्रमाण कहैं हैं:—

अर्धशंकरछंद.

"यह ॐ अक्षर ब्रह्म है" यूं कहत वेद अभेद ॥
पुनि वाणिमें पद अर्थ बाहर, देखियत यह भेद ॥३०

टीकाः--मांडूक्यआदिक वेदवाक्यनमैं "ॐ अक्षरब्रह्म है" यह कह्या है. तहां व्याकरणकी रीतिसैं प्रकाशरूप सर्वकी रक्षा करता ॐ अक्षरका अर्थ है. ऐसा ब्रह्म है. यातैं ॐ अक्षर ब्रह्मका वाचक है; औ ब्रह्म वाच्य है. जो वाच्यवाचकका आपसमैं अत्यंतभेद होवै, तौ वाचक ॐ अक्षरका औ वाच्य ब्रह्मका, मांडूक्यआदिकनमैं अभेद नहीं कहते. औ "ॐ अक्षर ब्रह्म है," इस रीतिसैं अभेद कह्या है. यातैं वाच्यवाचकके अभेदमैं वेदवचन प्रमाण है. औ सर्वलोककी प्रतीतिसैं वाच्यवाचकका भेद सिद्ध है. काहेतैं ? अग्नि आदिक पद वाणीमैं हैं, औ अंगारआदिक तिनका अर्थ वानितैं बाहर चुल्ही आदिकनमैं है. तैसैं ॐ अक्षररूप पद वाणीमें है, औ ताका अर्थ ब्रह्म बानीमैं नहीं है, किंतु बानीतैं बाहिर कहिये अपने महिमामैं है. यद्यपि ब्रह्म व्यापक है, यातैं बानीमैं

ब्रह्मका अभाव नहीं, तथापि ब्रह्ममैं बानी है; और बानीमें ब्रह्म नहीं. इस रीतिसैं सर्वलोककूं पद बानीमैं; औ अर्थ बानीतैं बाहर प्रतीत होवै है. यातैं पदका औ अर्थका भेद लोकमैं प्रसिद्ध है. इस रीतिसैं वाच्यवाचकके भेदमैं सर्वलोकका अनुभव प्रमाण है, औ तिनके अभेदमैं वेदवचन प्रमाण है. यातैं पदका अर्थसैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध अप्रमाण नहीं; किंतु प्रमाणसिद्ध है.

प्रसंगतैं अन्यस्थानमैंभी भेदाभेदतादात्म्यसंबंध दिखावैं हैं:-

अर्धशंकरछंद.

जो गुण गुणी औ जाति व्यक्ती, क्रिया अरु तद्वान।
संवंध लखितादात्म्यइनको, कार्य कारण सान॥ ३१॥

टीकाः—रूप रस गंध आदिक गुण हैं, तिनका आश्रय गुणी कहिये है. जैसैं रूपआदिकनका आश्रय भूमि गुणी है. अनेकनके माहिं रहै जो एक धर्म, सो जाति कहिये है. जैसैं सर्व ब्राह्मणशरीरनके माहिं एक ब्राह्मणत्व है, औ सर्वशूद्रमाहिं शूद्रत्व है; औ सर्व जीवनमाहिं जीवत्व है, पुरुषनमैं पुरुषत्व है; सर्व घटनमाहिं घटत्व है, जाकूं लोकमाहिं ब्राह्मणपना, शूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं, सोई ब्राह्मणआदिक शरीरनमाहिं, ब्राह्मणत्वआदिक जाति है. जातिका आश्रय जो ब्राह्मणआदिक, सो व्यक्ति कहिये हैं. गमन आगमनआदिक क्रिया कहिये हैं, औ तद्वान् कहिये तिसवाला. अर्थ यह, क्रियाका आश्रय. इतने पदार्थनका तादात्म्यसंबंध है; यह लखि कहिये जान. औ कारणकार्यकूं सान

कहिये गुणगुणी आदिकविषे मिलाव. अभिप्राय यह है:-कारणकार्यकाभी गुणगुणीकी नाईं तादात्म्यसंबंध है. गुणका औ गुणीका आपसमैं तादात्म्यसंबंध है. जातिका औ व्यक्तिका आपसमैं तादात्म्यसंबंध है. तैसें क्रिया औ क्रियावानका तादात्म्यसंबंध है. कारणका औ कार्यकाभी तादात्म्यसंबंध है, तादात्म्य नाम भेदसहित अभेदका है.

यद्यपि निमित्तकारणका औ कार्यका तौ भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं है, किंतु अत्यंतभेद है; तथापि उपादानकारणका औ कार्यका, भेदाभेदरूप तादात्म्यही संबंध है. जैसे घटके निमित्तकारण, कुलालदंडआदिक हैं; तिनका घटरूप कार्यसैं अत्यंतभेदभी है, परंतु उपादानकारण मृत्तिकापिंड औ घटकार्यका भेदसहित अभेद है. जो मृत्तिकापिंडसैं घट अत्यंत भिन्न होवै, तौ जैसैं मृत्तिकापिंडसे अत्यंत भिन्न तैलकी उत्पत्ति होवै नहीं; तैसैं घटकीभी उत्पत्ति नहीं होवैगी. औ उपादानकारणका कार्यतैं अत्यंत अभेद होवै, तौभी मृत्पिंडसैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं. काहेतैं ? अपने स्वरूपसैं अपनी उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदसहित अभेद है. यातैं अत्यंत अभेदपक्षका दोष नहीं. इस रीतिसैं उपादान कारणका कार्यतैं भेदाभेद युक्तिसिद्ध है. औ प्रतीतिसैंभी उपादानतैं कार्यका भेदाभेदही सिद्ध है. यह मृत्पिंड है, यह घट है. इस रीतिकी भिन्नप्रतीतिसैं भेद सिद्ध होवै है, औ विचारतैं देखैं तो घटके बाहर भीतर मृत्तिकासैं भिन्न कुछ वस्तु प्रतीत होवै नहीं, किंतु मृत्तिकाही प्रतीत होवै है; यातैं अभेद सिद्ध होवै है. इस रीतिसैं उपादानकारणका, कार्यतैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है. तैसैं

गुण औ गुणीकाभी भेदाभेद है. जो घटके रूपका घटसैं अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं घटतैं पटका अत्यंतभेद है; सो पट घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है; तैसैं घटका रूपभी घटके आश्रित नहीं होवैगा. औ गुणगुणीका अत्यंत अभेद होवै तौभी घटका रूप घटके आश्रित बनै नहीं. काहेतैं? अपना आश्रय आप होवै नहीं. यातैं गुणगुणीका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है; यह युक्ति, जाति औ व्यक्ति तथा क्रिया औ क्रियावालेके भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधमैं जाननी. औ जो मत खंडन करना, ताके विषे बहुत युक्ति कहनेका प्रयोजन नहीं; यातैं और युक्ति नहीं लिखी.

अथ भट्टमतखंडन.

दोहा ।

एक वस्तुको एकमैं, भेदअभेद विरुद्ध ।
युक्तियुक्त याते कहत, यह मत सकल अशुद्ध ॥

टीका:--अक्षरअर्थ स्पष्ट. अभिप्राय यह है:--यद्यपि एक घटमैं अपना अभेद है, औ परका भेद है, तथापि जाका अभेद है, ताका भेद नहीं, औ जाका भेद है ताका अभेद नहीं; इस अभिप्रायतैं एक वस्तुका भेदअभेद विरुद्ध कह्या है. तथा एकवस्तुका कहिये, घटकाही अपनेमैं अभेद औ पटमैं भेद है, परंतु जामैं अभेद है तामैं भेद नहीं, औ जामैं भेद है तामैं अभेद नहीं. इस अभिप्रायतैं एक वस्तुको भेदअभेद एकमैं विरुद्ध कह्या है. भेदअभेद आपसमैं विरोधी हैं. एकवस्तुमैं जाका भेद होवै ताका अभेद, औ जाका अभेद-

---

१ अर्थात् तर्कचतुर.

होवै ताका भेद विरुद्ध है. यातैं वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान्, उपादानकरणकार्यका जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया, सो अशुद्ध है.

पूर्व वाच्यवाचकके भेदाभेदमैं प्रमाण जो कह्याः-"बानीमैं, वाचक औ बाहर वाच्य, यातैं भेद, औ श्रुतिमैं ॐअक्षर ब्रह्म कह्या है, यातैं अभेद." ताका समाधानः-

दोहा।

प्रणववर्ण अरु ब्रह्मको, कह्यो जु वेद अभेद।
तामैं अन्यरहस्य कछु, लख्यो न भट्ट सु भेद ३२

टीकाः--प्रणववर्ण कहिये ॐअक्षर अरु ब्रह्मका जो वेदमैं अभेद कह्या, ता वेदवचनका वाच्यवाचकके अभेदमैं तात्पर्य नहीं, किंतु तामैं अन्यही रहस्य कहिये गोप्य अभिप्राय है. सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टने लख्या नहीं. जहां ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है, तिस वाक्यका ॐअक्षर औ ब्रह्मके अभेदमैं तात्पर्य नहीं है, किन्तु "ॐअक्षरकूं ब्रह्मरूप करके उपासना करैं; इस अर्थसैं तात्पर्य है. उपासना जाकी विधान करी है, ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं हैः--जैसी उपासना विधान करी है, तैसाही उपास्यका स्वरूप होवै है, किंतु जैसा वस्तुका स्वरूप है ताकूं त्यागके अन्यस्वरूपकीभी ताके विषे उपासना करिये है. जैसैं शालिग्राम औ नर्मदेश्वरकी, विष्णुरूप औ शिवरूप करके उपासना कही है. तहां शंख चक्र आदिकसहित चतुर्भुजमूर्ति शालिग्रामकी नहीं है. औ गंगाभूषित जटाजूट-डमरू-चर्म-कपालिकासहित भद्र शरसामुद्रै-

शरणागतनकूं त्रिगुणरहित आत्माका उपदेश देनेवाली मूर्ति नर्मदेश्वरकी नहीं है; किंतु दोनों शिलारूप हैं. औ शास्त्रकी आज्ञातैं शिलारूपकी दृष्टि त्यागके, तिन दोनों-विषे क्रमतैं विष्णुरूप औ शिवरूपकी उपासना करिये है. यातैं उपास्यके स्वरूपके अधीन उपासना नहीं होवै है; किंतु विधिके अधीन है. जैसे शास्त्रका वचन विधान करैं, तैसी उपासना करै. जैसैं छांदोग्य उपनिषद्मैं, पंचाग्नि-विद्याप्रकरणमैं स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष, स्त्री; इन पांचपदार्थनकी अग्निरूपकरके उपासना कही है. औ श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य, इन पांचपदार्थनकी पंच अग्निकी आहुतिरूप उपासना कही है. तहां स्वर्गआदिक अग्नि नहीं हैं औ श्रद्धा सोमआदिक आहुति नहीं हैं; तथापि वेदकी आज्ञातैं स्वर्गलोकादिकनकी अग्निरूपतैं; औ श्रद्धा-आदिकनकी आहुतिरूपतैं उपासना करिये है. इस रीतिसैं ॐ अक्षरकी ब्रह्मरूपकरके उपासना कही है. तहां ॐ अक्षर ब्रह्मरूप नहीं है; तौभी ब्रह्मरूपकरके उपासना बनै है.

उपासनावाक्यमें वस्तुके अभेदकी अपेक्षा नहीं, किंतु भिन्नवस्तुकीभी अभिन्नरूपतैं उपासना होवै है. औ विचारतैं देखिये तौ ब्रह्मका वाचक जो ॐ अक्षर है, ताका तौ अपने वाच्य ब्रह्मतैं अभेद बनैभी है. घटआदिक अन्यपदनका अपने अपने जडरूप अर्थसैं अभेद बनै नहीं. काहेतैं, सर्व नामरूप ब्रह्ममैं कल्पित हैं; ब्रह्म अधिष्ठान है. ॐ अक्षरभी ब्रह्मका नाम है, यातैं ब्रह्ममैं कल्पित है; अधिष्ठानसैं कल्पित वस्तु भिन्न होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानरूपही होवै है, यातैं ॐ अक्षर ब्रह्मरूप है. औ घटआदिकपदका जो जड़रूप

अपना अर्थ, सो अधिष्ठान नहीं, किंतु वाच्यसहित घटआदिक पद ब्रह्ममैं कल्पित हैं; औ ब्रह्म तिनका अधिष्ठान है. यातैं ब्रह्मसैं तौ सर्वका अभेद बनैभी है, परंतु घट आदिक पदनका अपने जड़रूप वाच्य अर्थसैं, अभेद किसी रीतिसैं बनै नहीं. यातैं भट्टमतमैं वाच्यवाचकका अभेद असंगत है. औ,

केवलभेद जो वाच्यवाचकका अंगीकार करै हैं; तिनके मतमैं यह दोष भट्टने कह्या है:—जो घटपदका वाच्य घटपदसैं अत्यंत भिन्न होवै, तौ जैसे अत्यंत भिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीति होवै नहीं. तैसे घटपदसैं अत्यंतभिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीतिभी नहीं होवैगी. औ घटपदसैं वाच्यकूं भिन्न मानके ताकी घटपदसैं प्रतीति मानोगे, तौ जैसैं घटपदतैं अत्यंतभिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति होवै है, तैसैं अत्यंत भिन्नवस्त्रकीभी घटपदसैं प्रतीति हुई चाहिये. यह दोषभी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप शक्ति नहीं मानैं तिनके मतमैं है. जो शक्ति अंगीकार करैं, तिनके मतमैं दोष नहीं. काहेतैं ? जो घटपदका वाच्य कलश औ ताका अवाच्य वस्त्रादिक सो दोनों घटपदसैं भिन्न हैं. परंतु घटपदमैं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनेकी शक्ति है; औ अन्य अर्थके ज्ञान करनेकी शक्ति नहीं यातैं घटपदतैं कलशरूप अर्थतैं भिन्नअर्थकी प्रतीति होवै नहीं. इस रीतिसैं जा पदमैं जिस अर्थकी शक्ति है, ताही अर्थकी तिस पदसैं प्रतीति होवै है; अन्य अर्थकी नहीं, यातैं वाच्यवाचकके अत्यंतभेदमैं दोष नहीं. तिनका भेदसहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बनै नहीं.

भेद औ अभेद आपसमैं विरोधी हैं. तैसैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदसहित अभेद नहीं; केवलभेद है, औ केव-

लभेदमैं जो दोष कह्या है, सो नैयायिक औ शक्तिवादीके मतमैं नहीं.काहेतैं ? कारणकार्यके अत्यंतभेदमैं यह दोष हैः- जो मृत्पिंडसैं अत्यंत भिन्न घटकी उत्पत्ति होवै तो अत्यंतभिन्न तैलकीभी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति हुई चाहिये. औ अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवैगी, तौ अत्यंत भिन्न घटकीभी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये.

यह दोष नैयायिकमतमैं नहीं. काहेतैं ? सर्ववस्तुकी उत्पत्तिमैं नैयायिक प्रागूभावकूं कारण मानै हैं. जैसे घटकी उत्पत्तिमैं दंड, चक्र, कुलाल, कारण हैं, तैसैं घटका प्रागूभावभी घटका कारण है. तैसैं सर्वका प्रागूभाव सर्वकी उत्पत्तिमैं कारण है. सो घटका प्रागूभाव घटके उपादानकारण मृत्पिंडमैं रहै है; अन्यमैं नहीं. तैलका प्रागूभाव तिलनमैं रहै है; अन्यमैं नहीं. ऐसैं सर्वकार्यनका प्रागूभाव अपने अपने उपादानकारणमैं रहै है. जिस पदार्थमैं जाका प्रागूभाव होवै, तिस पदार्थसैं ताकी उत्पत्ति होवै है; अन्यकी नहीं. जैसैं मृत्पिंडमैं घटका प्रागभाव है, यातैं मृत्पिंडसैं घटकीही उत्पत्ति होवै है; तैलकी नहीं. औ तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहै है; यातैं तिलनतैं तैलकीही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं. ऐसैं सर्वकार्यमैं प्रागभाव कारण है. यातैं कारणकार्यका अत्यंतभेद माननेतैं नैयायिकमतमैं दोष नहीं. औ,

सामर्थ्यरूप शक्तिवादीके मतमैं दोष नहीं. काहेतैं ? मृत्पिंडमैं घटकी सामर्थ्यरूप शक्ति है, तैलकी नहीं; औ तिलनमैं तैलकी सामर्थ्य है, घटकी नहीं; यातैं मृत्पिंडतैं घटकी उत्पत्ति होवै है, औ तैलकी नहीं. तैसैं तिलतैं तैलकीही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं. इस रीतिसैं उपादानकारणका और

कार्यका अत्यंतभेद माननेमैं दोष नहीं. भेदाभेद असंगत है औ भेदमैं तथा अभेदमैं जो दोष भट्टने कहे हैं, सो दोनों पक्षके दोष भट्टके मतमैं अवश्य रहे हैं. काहेतैं? भट्टने भेदसहित अभेद अंगीकार किया है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवा:--कारणकार्यका भेदभी है, औ अभेदभी है. भेद है यातैं भेदपक्षोक्तदोष होवैंगे. औ अभेद है यातैं अभेदपक्षउक्तदोष होवैंगे. जैसैं चोरीका दोष औ द्यूतका दोष जो एक एक करनेवालेकूं कहै हैं; सो दोऊ व्यसन जाके होवैं, ताके चोरी द्यूत दोनोंके दोष होवैं हैं. तैसैं गुणगुणी आदिकनके भेदाभेद माननेतैंभी, भेदपक्ष औ अभेदपक्षके दोनों दोष होवैंगे. औ शक्तिवादीके मतमैं केवल भेद अंगीकार कियेतैं दोष नहीं. काहेतैं? गुणीमैं गुणके धारनेकी शक्ति है, अन्यकी नहीं. यातैं भेदपक्षमैं जो दोष कह्या था:--घटके रूपादिक जैसैं घटसैं भिन्न हैं, तैसे पटआदिकभी घटसैं भिन्न है. रूपादिकनकी नाईं पटआदिकभी घटमैं रहना चाहिये अथवा पटआदिकनकी नाईं रूपादिकभी नहीं रहना चाहिये. सो दोष शक्ति नहीं अंगीकार करै ताके मतमैं हैं. शक्तिवादीके मतमैं केवल भेद माननेतैंभी दोष नहीं. उलट भट्टमतमैं भेद अभेद दोनों माननेतैं, दोनोंपक्षके दोष, उक्तदृष्टांतसैं हैं. औ भेद अभेद विरोधी धर्मका असंभवदोष है. तैसैं जातिव्यक्तिका औ क्रिया क्रियावान्काभी केवल अभेद है. तथापि व्यक्तिमैं जातिके धारनेकी शक्ति है; औ क्रियावानमें क्रिया धारनेकी शक्ति है; अन्य धारनेकी शक्ति नहीं. इस रीतिसैं उपादान औ कार्यका तथा गुणगुणी आदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध असंगत है. सर्वकाल आपसमैं भेद माननेमें भट्टउक्तदोषनकूं शक्ति ग्रसै है. यद्यपि,

वेदांतसिद्धांतमैंभी, कार्य गुण जाति क्रियाका, उपादान गुणी व्यक्ति क्रियावान्‌तैं अत्यंत भेद नहीं; किंतु तादात्म्य-संबंधही अंगीकार किया है; तथापि वेदांतमतमैं भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं; किंतु भेद औ अभेदसैं विलक्षण अनिर्वचनी-यरूप तादात्म्यसंबंध है. भेदसैं विलक्षण है, यातैं भेदपक्षके दोष नहीं औ अभेदसैं विलक्षण है यातैं अभेदपक्षके दोष नहीं. इस रीतिसैं भेदाभेदसैं विलक्षण अनिर्वचनीयतादात्म्य संबंध है परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत है. यातैं "वा-चकवाच्यका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधही शक्ति है." यह भट्टअनुसारीका पक्ष समीचीन नहीं, किंतु पदके सुनतेही अर्थके ज्ञान करनेकी जो पदमैं सामर्थ्य, सोई पदमैं शक्ति है. इति शक्तिनिरूपण.

लक्षणाके ज्ञानमैं शक्यका ज्ञान उपयोगी है. काहेतैं ? शक्यसंबंध लक्षणाका स्वरूप है. शक्य जाने बिना शक्य संबंधरूप लक्षणाका ज्ञान होवै नहीं. यातैं शक्यका लक्षण कहै हैं:—

दोहा ।

व्है पदमैं जा अर्थकी, शक्ति शक्य सो जानि ।
वाच्य अर्थ पुनि कहत तिहिं, वाचक पदहिं पिछानि ॥

टीकाः--जा पदमैं जो अर्थकी शक्ति होई, ता पदका सो अर्थ शक्य जान. औ शक्यअर्थकूंही वाच्यअर्थभी कहै हैं; जैसैं अग्निपदमैं अंगाररूप अर्थकी शक्ति है; यातैं अग्निपदका अंगार शक्यअर्थ औ वाच्यअर्थ कहिये है. और वाच्यअर्थका बोधकपद वाचक कहिये है.

अथ लक्षणा औ जहतीआदिक भेदोंके लक्षण.

कवित्त.

शक्यको संबंध जो स्वरूप जानि लक्षणको,
लक्षणा सो भान जाको लक्ष्य सु पिछानिये ।
वाच्यअर्थ सारो त्यागि वाच्यको संबंध जहाँ,
होयहै प्रतीति तहां जहती बखानिये ॥
वाच्ययुत वाच्यके संबंधिका जु ज्ञान होय,
ताहि ठौर लक्षणा अजहतीहि मानिये ।
एक वाच्य भागत्याग होत तहां भागत्याग,
दूजो नाम जहतीअजहती प्रमानिये ॥ ३५ ॥

टीकाः—शक्य कहिये वाच्यअर्थका जो संबंध कहिये मिलाप, सो लक्षणाका स्वरूप कहिये लक्षण जान. औ जा अर्थका पदकी शक्तिसैं ज्ञान न होवै, किंतु लक्षणातैं भान कहिये ज्ञान होवै, सो पदका लक्ष्यअर्थ कहिये है. एक पादसैं लक्षणाका स्वरूप कह्या. अब--

लक्षणाके जहतीआदिक तीन भेदनके लक्षण एक एक पादसैं कहै हैं:--" वाच्य " इत्यादिसैं जहां वाच्य अर्थ संपूर्ण त्यागके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै, तहां जहतीलक्षणा कहिये है. जैसैं किसीने कह्या " गंगामैं ग्राम है " या स्थानमैं गंगापदकी तीरमें जहतीलक्षणा है. काहेतैं ? गंगापदका वाच्य अर्थ देवनदीका प्रवाह है, ताके विषे ग्रामकी स्थितिका असंभव है. यातैं सारे वाच्य अर्थकूं त्यागके

तीरविषे गंगापदकी जहतीलक्षणा है. वाच्यके संबंधका नाम लक्षणा है. या स्थानमैं गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसैं संयोगसंबंध है; यातैं गंगापदके वाच्यका जो तीरसैं संबंध सो लक्षणा, औ वाच्यका सारेका त्याग यातैं जहती लक्षणा.

" वाच्ययुत " इत्यादि, तृतीयपादसैं अजहतीलक्षणा दिखावै हैंः—वाच्ययुत कहिये वाच्यअर्थसहित, वाच्यके संबंधीका जा पदसैं ज्ञान होय, ता पदमैं अजहतीलक्षणा मानिये. जैसैं किसीने कह्या—" शोण धावन करै है. " तहां शोणपदकी लालरंगवाले अश्वविषे अजहतीलक्षणा. काहेतैं ? शोणनाम लालरंगका है. यातैं शोणपदका वाच्य लालरंग है. ता केवलमैं धावनका असंभव है. इस कारणतैं शोणपदका वाच्य जो लालरंग, तासहित अश्वमें शोणपदकी अजहतीलक्षणा है. गुणका औ गुणीका तादात्म्यसंबंध कहै हैं; औ लालभी रूपका भेद होनेतैं गुण है. यातैं शोणपदका वाच्य जो लालगुण, ताका गुणी अश्वके साथ जो तादात्म्यसंबंध सो लक्षणा. औ वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण, यातैं अजहतीलक्षणा.

"एक वाच्य" इत्यादि चतुर्थपादसैं भागत्यागलक्षणा बतावै हैंः—जहां पदनके वाच्यअर्थमध्य एकभागका त्याग होवै, एकभागका ग्रहण होवै, तहां भागत्यागलक्षणा कहिये है. ता भागत्यागकूंहीजहतीअजहतीलक्षणाभी कहैहैं. जैसैं प्रथम देखे पदार्थकूं अन्यदेशमैं देखके किसीने कह्या " सो यह है. " तहां भागत्यागलक्षणा है. काहेतैं ? अतीतकालमें औ अन्यदेशमैं स्थित वस्तुकूं " सो " कहै हैं. यातैं अतीतकालसहित औ अन्यदेशसहित वस्तु सो पदका वाच्य अर्थ है.

औ वर्तमानकाल समीपदेशमैं स्थित वस्तुकूं "यह" कहै हैं. यातैं वर्तमानकालसहित औ समीपदेशसहित वस्तु 'यह' पदका वाच्यअर्थ है. औ अतीतकालसहित अन्यदेशसहित जो वस्तु सोई वर्तमानकाल औ समीपदेशसहित है. यह समुदायका वाच्य अर्थ है. सो संभवै नहीं, काहेतैं? अतीतकाल औ वर्तमानकालका विरोध है, तथा अन्यदेशका औ समीपदेशका विरोध है. यातैं दोनों पदनमैं देशकाल जो वाच्य भाग ताकूं त्यागके, वस्तुमात्रमैं दोनों पदकी भागत्यागलक्षणा है.

"तत्त्वमसि" महावाक्यमैं लक्षणा दिखावनेकूं तत्पद औ त्वंपदका वाच्यअर्थ दिखावै हैं;

दोहा ।

सर्वशक्ति सर्वज्ञ विभु, ईश स्वतंत्र परोक्ष ।
मायी तत्पदवाच्य सो, जामें बंध न मोक्ष ॥ ३६ ॥

टीकाः--सर्वशक्ति कहिये जामैं सर्वसामर्थ्य, सर्वज्ञ कहिये सर्व वस्तुके जाननेवाला. विभु कहिये व्यापक. ईश कहिये सर्वका प्रेरक. औ स्वतंत्र कहिये कर्मके अधीन नहीं. औ परोक्ष कहिये जीवके प्रत्यक्षका विषय नहीं. मायी कहिये माया जाके अधीन. औ बंधमोक्षरहित-जामैं बंध होवै ताका मोक्ष होवै है. ईश्वर बंधरहित है, यातैं ईश्वरमैं मोक्षभी नहीं. इतने धर्मवाला ईश्वरचेतन तत्पदका वाच्यअर्थ है.

अथ त्वंपदवाच्यनिरूपण.

दोहा ।

कहैं धर्म जो ईशके, सब तिनतें विपरीत ।
व्है जिहि चेतन जीव तिहि, त्वंपद वाच्यप्रतीत ॥

टीकाः--जो ईशके धर्म कहे तिनतैं विपरीतधर्म जामैं होवैं, सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य; प्रतीत कहिये जान याका भाव यह है:--अल्पशक्ति, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न, अनीश, कर्मके अधीन, अविद्यामोहित औ बंधमोक्ष-वाला, औ प्रत्यक्ष. काहेतैं ? अपना स्वरूप किसीकूं परोक्ष नहीं. प्रत्यक्षही होवै है. यद्यपि ईश्वरकूंभी अपना स्वरूप प्रत्यक्ष है, तथापि ईश्वरका स्वरूप जीवकूं प्रत्यक्ष नहीं; यातैं परोक्ष कहिये है. औ जीवके स्वरूपकूं जीवईश्वर दोनों जानैं हैं; यातैं प्रत्यक्ष कहिये हैं. इतने धर्मवाला जीव चेतन त्वंपदका वाच्य कहिये है.

दोहा ।

महावाक्यमें एकता, व्है दोनोंकी भान ।
सो न बनै यातैं सुमति, लक्ष्य लक्षणहिं जान ॥ ३८ ॥

टीकाः--सामवेदके छांदोग्यउपनिषदमैं उद्दालकमुनिने, अपने पुत्र श्वेतकेतुकूं जगत्की उत्पत्ति करनेवाला ईश्वर बतायके कह्या;--"तत्त्वमसि" ताका यह वाच्यअर्थ है:--'तत्' कहिये सो जगत्की उत्पत्ति करनेवाला, सर्वशक्ति सर्व-ज्ञता आदिक धर्मसाहित ईश्वर; 'त्वं' कहिये तूं अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदिक धर्मवाला जीव; 'असि' कहिये है. इहां "सो तू है" इस कहनेतैं, ईश्वर जीवकी एकता वाच्यअर्थसे भान होवै है, सो बनै नहीं. काहेतैं ? सर्वशक्ति औ अल्पशक्ति, सर्वज्ञ औ अल्पज्ञ, विभु औ परिच्छिन्न, स्वतंत्र औ कर्मअ-धीन, परोक्ष औ प्रत्यक्ष माया जाके अधीन; औ अविद्या-मोहित एक है. यह कहना " अग्नि शीतलहै " इस कहनेके

समान है. यातैं हे सुमती ! लक्षणहि कहिये लक्षणातैं लक्ष्य अर्थ जान. वाच्यअर्थमैं विरोध है ॥ ३८ ॥

दोहा.

आदि दोय नहिं संभवैं, महावाक्यतैं तात ।
भागत्याग यातैं लखहु, व्है जातैं कुशलात ॥ ३९ ॥

टीकाः—हे तात ! महावाक्यमैं आदि दोय, कहिये जहती अजहती नहीं संभवैं; यातैं भागत्यागलक्षणा महावाक्यमें लखहु कहिये जानो. जातैं कुशलात कहिये विरोधका परिहार होवै ॥ ३९ ॥

अथ जहतीअसंभवप्रतिपादन.

दोहा ।

ज्ञेय जु साक्षी ब्रह्म चित, वाच्यमाहिं सो लीन ॥
माने जहतीलक्षणा, व्है कछु ज्ञेय नवीन ॥ ४० ॥

टीकाः—संपूर्णवेदांतका ज्ञेय, साक्षीचेतन औ ब्रह्मचित् कहिये ब्रह्मचेतन है. सो साक्षीचेतन औ ब्रह्मचेतन त्वंपद और तत्पदके वाच्यमैं लीन कहिये प्रविष्ट है. औ जहतीलक्षणा जहां होवै, तहां वाच्यसंपूर्णका त्याग करके, वाच्यका संबंधी अन्य ज्ञेय होवै है. यातैं महावाक्यमैं जहतीलक्षणा मानैं तौ, वाच्यमैं आया जो चेतन तासैं नवीन, कहिये अन्य कछु ज्ञेय होवैगा. चेतनसैं भिन्न असत् जड दुःखरूप है; ताके जाननेतैं पुरुषार्थ सिद्ध होवै नहीं; यातैं महावाक्यमैं जहतीलक्षणा नहीं.

अथ अजहतीलक्षणा असंभव-प्रतिपादन.

दोहा ।

वाच्यहु सारो रहत हैं, जहां अजहती मीत ।
वाच्यअर्थ सविरोध यूं, तजहु अजहतीरीत ॥४१॥

टीकाः—हे मीत प्रिय ! जहां अजहतीलक्षणा होवै, तहां वाच्यअर्थ सारे रहै हैं, औ वाच्यसैं अधिकका ग्रहण होवै है, महावाक्यनमैं अजहतीलक्षणा अंगीकार करैं तो वाच्य अर्थ सारा रहैगा. औ वाच्य अर्थ महावाक्यनमैं सविरोध कहिये विरोधसहित है. विरोध दूर करनेकूं लक्षणा अंगीकार करी है. अजहती मानेतैं महावाक्यनमैं विरोध दूर होवै नहीं यातैं अजहतीकी रीति महावाक्यनमैं तजहु.

अथ भागत्यागलक्षणाप्रकार.

दोहा ।

त्यागि विरोधी धर्म सब, चेतन शुद्ध असंग ।
लखहु लक्षणातैं सुमति, भागत्याग यह अंग ॥४२॥

टीकाः—हे अंग हे प्रिय ! तत्पदका वाच्य ईश्वर औ त्वंपदका वाच्य जीव, तिनके आपसमैं विरोधी धर्म त्यागके शुद्ध असंगचेतन लक्षणातैं लखहुं. यह भागत्यागलक्षणा है. या स्थानमैं यह सिद्धांत है:—ईश्वरजीवका स्वरूप अनेक-प्रकारका अद्वैतग्रंथनमैं कह्या है. विवरणग्रंथमैं अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीव औ बिंब ईश्वर कह्या है औ विद्यारण्यके मतमैं शुद्धसत्त्वगुणसहित मायामैं आभास ईश्वर, औ मलिन-

सत्त्वगुणसहित जो अंतःकरणका उपादानकारण अविद्याका अंश, तामैं आभास जीव कह्या है.

यद्यपि पंचदशीग्रंथमैं विद्यारण्यस्वामीने, अंतःकरणमैं आभास जीव कह्या है, तथापि अंतःकरणके आभासकूं जीव मानैं, तौ सुषुप्तिमैं अंतःकरण रहै नहीं; यातैं जीवकाभी अभाव हुवा चाहिये. औ प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमैं रहै है; यातैं विद्यारण्यस्वामीका यह अभिप्राय हैः--अंतःकरणरूप परिणामकूं प्राप्त जो होवै अविद्याका अंश, तामैं आभास जीव है. सो अविद्याका अंश सुषुप्तिमैंभी रहै है, यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं औ केवल आभासही जीवईश्वर नहीं है; किन्तु मायाका अधिष्ठानचेतन, औ मायासहित आभास ईश्वर है. औ अविद्याअंशका अधिष्ठानचेतन, औ अविद्याके अंशसहित आभास जीव है. ईश्वरकी उपाधिमैं शुद्धसत्त्वगुण है, यातैं ईश्वरमैं सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म है, औ जीवकी उपाधिमें मलिनसत्त्वगुण है; यातें जीवमें अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म हैं, याकूं आभासवाद कहै हैं. औ,

विवरणके मतमैं यद्यपि जीवईश्वर दोनोंकी उपाधि एकही अज्ञान है, यातैं दोनों अल्पज्ञ हुये चाहिये; तथापि जा उपाधिमैं प्रतिबिंब होवै ताका यह स्वभाव होवै हैः— प्रतिबिंबमैं अपने दोष करै है, बिंबमैं नहीं. जैसैं दर्पणरूप उपाधिमैं मुखका प्रतिबिंब होवै है. ग्रीवामैं स्थित मुख बिंब है; तहां दर्पणरूप उपाधिके श्यामपीतलघुतादिक अनेक दोष प्रतिबिंबमैं भान होवै हैं, औ ग्रीवामैं स्थित जो बिंब है, तामैं भान होवै नहीं. तैसैं दर्पणस्थानी जो अज्ञान, तिसविषे प्रतिबिंबरूप जीवमैं अज्ञानकृत अल्पज्ञतादि-

क दोष है. औ बिंबरूप ईश्वरमें नहीं यातैं ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिक हैं; औ जीवमैं अल्पज्ञतादिक हैं.

आभास औ प्रतिबिंबका इतना भेद हैः—आभासपक्षमैं तौ आभास मिथ्या है. औ प्रतिबिंबवादमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं; किंतु सत्य है. काहेतैं ? प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत हैः—दर्पणमैं जो मुखका प्रतिबिंब है, सो मुखकी छाया नहीं; काहेतैं? छायाका यह स्वभाव हैः—जिस दिशामैं छायावान्के मुख औ पृष्ठ होवैं, उस दिशामैं छायाके मुख औ पृष्ठ होवै हैं. औ दर्पणके प्रतिबिंबके मुख, पीठ, बिंबसैं विपरीत होवै हैं. यातैं दर्पणमैं छायारूप प्रतिबिंब नहीं; किंतु दर्पणकूं विषय करनेके वास्ते नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति, सो दर्पणकूं विषय करके, तत्कालही दर्पणसैं निवृत्त होयके, ग्रीवामैं स्थित मुखकूं विषय करै है. जैसैं भ्रमणके वेगसैं अलातका चक्र भान होवै है. औ सो चक्र नहीं है; तैसैं दर्पण औ मुखके विषय करनेमैं, वृत्तिके वेगतैं मुख दर्पणमैं स्थित भान होवै है, औ मुख ग्रीवाविषेही स्थित है, दर्पणमैं नहीं; औ छायाभी नहीं. वृत्तिके वेगसैं जो दर्पणमैं मुखकी प्रतीति, सोई प्रतिबिंब है. इस रीतिसैं दर्पणरूप उपाधिके संबंधसैं ग्रीवामैं स्थित मुखही बिंबरूप औ प्रतिबिंबरूप भान होवै है. औ विचारसैं बिंबप्रतिबिंबभाव है नहीं. तैसैं अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसैं असंगचेतनमैं बिंबस्थानी ईश्वरभाव औ प्रतिबिंबस्थानी जीवभाव प्रतीत होवै है. औ विचारदृष्टिसैं ईश्वरता जीवता है नहीं, अज्ञानतैं जो चेतनमैं जीवभावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमैं प्रतिबिंब कहिये है. यातैं बिंबपना औ प्रतिबिंबपना तौ मिथ्या है, औ स्वरूपसैं बिंबप्रतिबिंब सत्य है.

काहेतैं ? बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांतविषे तौ मुख है, औ दार्ष्टांतविषे चेतन है. सो मुख औ चेतन सत्य है. इस रीतिसैं प्रतिबिंबकूं स्वरूपतैं सत्य होनेतैं सत्य कहै हैं. औ आभासका स्वरूप छाया मानै हैं, यातैं मिथ्या है. यह आभासवाद औ प्रतिबिंबवादका भेद है. और,

कितनेक ग्रंथनमैं शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाविशिष्टचेतन, ईश्वर कहिये है. औ मलिनसत्त्वगुणसहित अंतःकरणका उपादान अविद्याके अंशविशिष्टचेतन, जीव कहिये है. याकूं अवच्छेदवाद कहै हैं. सर्वही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैतआत्माके जनावनेकूं है; यातैं कौनसी प्रक्रियातैं जिज्ञासुकूं बोध होवै सोई ताकूं समीचीन है. तथापि वाक्यवृत्ति औ उपदेशसाहस्रीमैं, भाष्यकारने आभासवादही लिखा है; यातैं आभासवादही मुख्य है. ताकी रीतिसैं माया औ मायामैं आभास, औ मायाका अधिष्ठान जो चेतन, सो सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्मसहित ईश्वर है; सोई तत्पदका वाच्य है. औ व्यष्टिअविद्या, तामैं आभास, औ ताका अधिष्ठानचेतन, अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्मसहित जीव है. सो त्वंपदका वाच्य है. तिन दोनोंकी "तत्त्वमसि" वाक्यने एकता बोधन करी; औ बनै नहीं. यातैं आभाससहित माया औ मायाकृत सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म, इतने वाच्यभागकूं त्यागके, चेतनभागविषे तत्पदकी भागत्यागलक्षणा. तैसैं आभाससहित अविद्याअंश औ अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म; जो त्वंपदका वाच्यभाग, ताकूं त्यागके चेतनभागमैं त्वंपदकी भागत्यागलक्षणा. इस रीतिसैं—

भागत्यागलक्षणातैं, ईश्वर औ जीवके स्वरूपमैं लक्ष्य जो

चेतनभाग; तिनकी एकता "तत्त्वमसि" महावाक्य बोधन करै है. तैसैं "अयं आत्मा ब्रह्म" इस महावाक्यमैं आत्मा-पदका जीव वाच्य है, औ ब्रह्मपदका ईश्वर वाच्य है. ब्रह्मपदका शुद्ध वाच्य नहीं, ईश्वरही वाच्य है; यह चतुर्थतरंगमैं प्रतिपादन करि आये हैं. पूर्वकी नाईं दोनों पदनकी लक्षणा है. लक्ष्य अर्थ परोक्ष नहीं; इस अर्थकूं जनावनेकूं अयंपद है. 'अयं' कहिये सबके अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है; यह वाक्यका अर्थ है, "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यमैं, अहं-पदका जीव वाच्य है, औ ब्रह्मपदका ईश वाच्य है. दोनों पदनकी चेतनभागमैं लक्षणा. "मैं ब्रह्म हूं" यँह वाक्यका अर्थ है. "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" इस महावाक्यमैं,प्रज्ञानपदका जीव वाच्य है, ब्रह्मपदका ईश है; पूर्वकी नाईं लक्षणा लक्ष्य जो ब्रह्मात्म, सो आनंदगुणवाला नहीं; किन्तु आनंदरूप है; इस अर्थके जनावनेकूं आनंदपद है. आत्मासैं अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप है; यह वाक्यका अर्थ है.जैसैं महावाक्यनमैं भाग-त्यागलक्षणा है,तैसैं अन्यवाक्यनमैं सत्य,ज्ञान, आनंदपदभी शुद्धब्रह्मकूं भागत्यागलक्षणासैंही बोधन करै हैं;शक्तिसैं नहीं. काहेतैं ? शुद्धब्रह्म किसी पदका वाच्य नहीं; यह सिद्धांत है. यातैं सारे पद विशिष्टके वाचक हैं, औ शुद्धके लक्षक हैं. मायाकी आपेक्षिकसत्यता, औ चेतनकी निरपेक्षिकसत्यता मिली हुई सत्यपदका वाच्य है.निरपेक्षिकसत्य लक्ष्य है.बुद्धि-वृत्तिरूप ज्ञान औ स्वयंप्रकाशज्ञान, दोनों मिलैं तौ ज्ञानपद-का वाच्य,औ स्वयंप्रकाशभाग लक्ष्य. विषयसंबंधजन्य सुखा-कार सात्त्विक अंतःकरणकी वृत्ति औ परमप्रेमका आस्पद स्वरूप सुख;दोनों मिले आनंदपदका वाच्य;औ वृत्तिभागकूं

त्यागके स्वरूपभाग लक्ष्य. इस रीतिसैं सर्व पदनकी शुद्धिमैं लक्षणा; संक्षेपशारीरकमें प्रतिपादन करी है.

अथ उक्तअर्थसंग्रह ।

कवित्व-

"गंगामैं" ग्राम जहतिलक्षणा या ठारे लखि ।
"शोण धावै" लक्षणा अजहति जनाइये ॥
"सोई यह वस्तु" इहां लक्षणा है भागत्याग ।
दूजो नाम जहतिअजहती सुनाइये ॥
"तत्त्वमसि" आदि महावाक्यनमैं भागत्याग ।
लक्षण न जहति अजहति बताइये ॥
ब्रह्म कहु पदको न वाच्य यूं बखानै वेद ।
यातैं सर्वपदनमें रीति यूं लखाइये ॥ ४३ ॥
मायामाहिं सत्यता जु औरभाँति भाषियत ।
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु औरभाँति भाषिये ॥
दोउ मिलि सत्यपद वाच्य मुनि भाषत हैं ।
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु लक्ष्यभाग राखिये ॥
बुद्धिवृत्ति संवित द्वै मिले ज्ञानपद वाच्य ।
संवितस्वरूप लक्ष्य बुद्धिवृत्ति नाखिये ॥
आत्म औ विषैको सुख वाच्यपद आनंदको ।
विषयसुख त्यागि आत्मसुख लक्ष्य आखिये ॥ ४४ ॥

महावाक्यनमैं विरोध दूर करनेकूं, दोनों पदनमैं लक्षणा अंगीकार करी. तहां कोई कहै हैः–एकपदमैं ल-

क्षणा अंगीकार कियेसैंही विरोध दूर होवै है. दोयपदमैं लक्षणा माननेका प्रयोजन नहीं.

दोहा.

एकहि पदमें लक्षणा, मानै नहीं विरोध ।
दोय पदनमें लक्षणा, निष्फल कहत सुबोध ॥ ४५ ॥

टीका:—सुबोध कहिये सुज्ञ दोयपदनमैं लक्षणा निष्फल कहते हैं. काहेतैं ? एकही पदमैं लक्षणा मानेतैं विरोध दूर होय जावै है. याका भाव यह है:—यद्यपि सर्वज्ञतादिविशिष्टकी अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथ एकता नहीं बनै है; तथापि एकपदका लक्ष्य जो शुद्ध, ताकी विशिष्टके साथ एकता बनै है. दृष्टांत जैसें—“ शूद्रमनुष्य ब्राह्मण है ” इस रीतिसैं शूद्रत्वधर्मविशिष्ट मनुष्यकी, ब्राह्मणत्वधर्मविशिष्टके साथ एकता कहना विरुद्ध है. औ “मनुष्य ब्राह्मण है” इस रीतिसैं शूद्रत्वधर्मरहित शुद्ध मनुष्यकूं ब्राह्मणत्वविशिष्टता कहनेमैं विरोध नहीं. तैसैं अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्टचेतनकी, औ सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्टकी एकता विरुद्धभी है; परंतु जीववाचकपद और ईश्वर वाचकपदकी, चेतनमैं लक्षणाकरके चेतनमात्रकी सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्टके साथ, वा अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथ एकता कहनेमैं विरोध नहीं. यातैं दोपदमैं लक्षणा माननेमैं कोई युक्ति नहीं ॥ ४५ ॥

समाधान.

कवित्त ।

लक्षणा जो कहै एकपदमाहि ताकूं यह ।
पूछि दोय पदनमें कौनसेमैं लक्षणा ॥

प्रथम वा द्वितीयमें कहै ताहि भाषि यह ।
वाक्यनको होयगो विरोध मूढ लक्षणा ॥
तीनिवाक्यमध जीववाचक प्रथमपद ।
"तत्त्वमसि" यामें आदिपद ईशलक्षणा ॥
प्रथम वा द्वितीयको नेम नहीं बनै यातें
भाषत द्वैपदनमें लक्षणा सुलक्षणा ॥ ४६ ॥

टीकाः—जो एकपदमैं लक्षणा अंगीकार करै, ताकूं यह पूछैः—दोनों पदनमेंसैं कौनसे पदमैं लक्षणा है ? जो ऐसे कहै, सर्वमहावाक्यनके प्रथमपदमैं लक्षणा है, द्वितीयमैं नहीं. यद्वा, द्वितीयपदमैं लक्षणा सर्ववाक्यनमैं है; प्रथममैं नहीं. ताकूं हे शिष्य ! यह भाषिः—हे मूढलक्षण ! प्रथम वा द्वितीयपदमैं जो नेमतैं लक्षणा सर्ववाक्यनमैं मानैं, तौ वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. काहेतैं ? तीन वाक्यमध्य कहिये, "अहं ब्रह्मास्मि" "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म," "अयमात्मा ब्रह्म," इन तीन वाक्यनमैं जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है. औ "तत्त्वमसि," या वाक्यमैं आदिपद कहिये,प्रथमपद ईशलक्षण कहिये,ईश्वरका बोधक है. जो पूर्वपदमैं लक्षणा सर्वत्र मानैं तौ तीन वाक्यनका तौ यह अर्थ होवैगाः-चेतन सर्वज्ञतादिविशिष्ट अंश सारा ईश्वररूप है. औ "तत्त्वमसि" वाक्यका यह अर्थ होवैगाः चेतनअल्पज्ञतादिविशिष्टसंसारी जीवरूप है. काहेतैं ? तीन वाक्यनमैं पूर्वजीववाचकपद है. ताका चेतनभागमैं लक्षणा औ द्वितीय जो ईश्वरवाचकपद; ताके वाच्यका ग्रहण औ "तत्त्वमसि" मैं आदि ईशवाचकपद, ताकी चेतनभागमैं

लक्षणा, औ द्वितीय जीववाचकपद ताकें वाच्यका ग्रहण. इस रीतिसैं लक्षणाका नेम करैं, तौ वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. तैसे सर्ववाक्यनके द्वितीयपद कहिये, आगिलेपदमैं लक्षणा मानैं, तौ तीन वाक्यनमैं पूर्व जो जीवपद, ताके वाच्यका ग्रहण; औ उत्तर ईशपदकी चेतनभागमैं लक्षणा. यातैं अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतन है, यह तीन वाक्यनका अर्थ होवेगा औ "तत्त्वमसि" मैं आदि ईशपद, ताके वाच्यका ग्रहण औ द्वितीय जीवपदकी चेतनभागमैं लक्षणा. यातैं सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतन है; यह तत्त्वमसिका अर्थ होनेतैं परस्पर विरोधही होवेगा. इस रीतिसैं प्रथम वा द्वितीयपदमैं लक्षणाका नियम बनै नहीं. यातैं सुलक्षणा कहिये सुंदर है लक्षण जिनके, ते आचार्य द्वै पदनमैं लक्षणा भाषत हैं. और—

जो ऐसैं कहै, 'प्रथमपद वा द्वितीयपदमैं लक्षणा है' यह नियम नहीं करै है, किंतु सर्व वाक्यनमैं जो ईश्वरवाचक पद, तामैं लक्षणा है, यह नियम करै है, सो ईश्वरवाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै, यातैं वाक्यनका परस्पर विरोध नहीं. ताका—

समाधान.

दोहा।

ईशपदहिं लक्षक कहे, सब अनर्थकी खानि ।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमें, व्हे पुरुषारथहानि ॥ ४७ ॥

टीकाः—जो ईश्वरवाचक पदकूंही लक्षक कहैं, तौ सर्व अनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्ममरणसैं आदि लेके जो दुखःके साधन, तिनकी खानि जो संसारी जीव; सो श्रुतिवाक्यनमैं ज्ञेय होवै; यातैं पुरुषार्थ कहिये मोक्षकी

हानि होवैगी. याका भाव यह है:—जो ईश्वरवाचकपदमैंही लक्षणा मानैं, तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगाः--तत्पद-का लक्ष्य जो अद्वय असंग मायामलरहित चेतन, सो काम-कर्म अविद्याके आधीन, अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न, पुण्यपाप, सुखदुःख, जन्ममरण गमनआगमनआदिक अनंत अनर्थका पात्र है. जो महावाक्यका ऐसा अर्थ होवै तो जिज्ञासुकूं इसी अर्थविषे बुद्धिकी स्थिति करनी होवैगी. औ जामैं बुद्धिकी स्थिति होवै है, प्राणवियोगसैं अनंतर ताहीकूं प्राप्त होवै है. यातैं वेदवाक्यनके विचारसैं, मुमुक्षुकूं अनर्थकीही प्राप्ति होवैगी; आनंदकी प्राप्ति नहीं होवैगी. यातैं, ईश्वरवाचकपदमैं लक्षणा है; जीववाचकमैं नहीं, यह नियम असंगत है ॥ ४७ ॥

और जो ऐसे कहै:—सर्व महावाक्यनमैं जो जीववाचक पद है तिसमैं लक्षणा है, ईशवाचकमैं नहीं; यातैं पुरुषार्थ-की हानि नहीं. काहेतैं ? जीववाचकपदमैं लक्षणा मानै तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगा:—जो त्वंपदका लक्ष्य चे-तनभाग, सो सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, जन्मादिकबंधरहित ईश्वररूप है, इस अर्थमैं बुद्धिकी स्थितिसैं जिज्ञासुकूं अति उत्तम ईश्वरभावकीही प्राप्ति होवैगी; यातैं जीववाचक पदमैं लक्षणाका नियम करै है. ताका

समाधान.

दोहा ।

साक्षी त्वंपद लक्ष्य कहुँ, कैसे ईशस्वरूप ।
यातैं दोपदलक्षणा, भाषत यतिवर भूप ॥ ४८ ॥

टीकाः—त्वंपदका लक्ष्य जो साक्षी सो ईशस्वरूप कैसे? यह कहो. अर्थ—यह, त्वंपदके लक्ष्यकूं ईश्वररूप कहना बनै नहीं. यातैं यती जो संन्यासी तिनमैं वर जो श्रेष्ठ, तिनके भूप स्वामी, दोनों पदनमैं लक्षणा भाषत हैं. याका भाव यह हैः--जो जीववाचकपदमैं लक्षणा मानैं औ ईशवाचकमैं नहीं, ताकूं यह पूछे हैंः-- त्वंपदकी लक्षणा व्यापकचेतनमैं है, अथवा जितने देशमें जीवकी उपाधि है, उतने देशमैं स्थित जो साक्षिचेतन, तामैं त्वंपदकी लक्षणा है। जो व्यापकचेतनमें त्वंपदकी लक्षणा कहै, तौ बनै नहीं. काहेतैं? वाच्य अर्थमें जाका प्रवेश होवै, तामैं भागत्यागलक्षणा होवै है. औ वाच्यमें प्रवेश व्यापकचेतनका नहीं; किंतु जीवपनेकी उपाधिदेशमैं स्थित जो साक्षी चेतन ताका वाचामैं प्रवेश है. यातैं साक्षीचेतनमैंही त्वंपदकी लक्षणा है, व्यापकचेतनमैं नहीं. ता साक्षीचेतनमैं सर्वके हृदयका प्रेरण औ सर्वप्रपंचमैं व्यापकतादिक ईश्वरके धर्मनका असंभव है. औ साक्षी सदा अपरोक्ष है. ताकेविषे परोक्षता ईश्वरधर्मका अत्यंत असंभव है. औ मायारहितकूं मायाविशिष्ट कहना असंभव है. जैसैं दंडरहितकूं दंडी कहना; औ संस्काररहित द्विजबालककूं संस्कारविशिष्ट कहना असंभव है. यातैं साक्षी चेतनका ईश्वरसैं अभेद कहै; तौ महावाक्य असंभव अर्थके प्रतिपादन होवैंगे, औ—

दोनों पदनमैं लक्षणा मानैं तौ दोष नहीं. काहेतैं? जो एकताके विरोधी धर्म हैं, तिन सबनकूं त्यागके दोनों पदनमैं प्रकाशरूप चेतन जो वाच्यभाग, ता सर्वधर्मरहित चेतनमैं दोनों पदनकी लक्षणा उपाधि औ उपाधिकृतधर्मनका चेतन-

का भेद है; स्वरूपसैं नहीं. उपाधि औ उपाधिकृतधर्मनका त्याग कियेतैं, दोनों पदनके लक्ष्य चेतनकी एकता संभवै है. जैसें घटाकाशमैं घटदृष्टि त्यागके मठविशिष्टआकाशतैं एकता बनै नहीं, औ मठदृष्टि त्याग कियेतैं एकता बनै है.

दोहा।

तत्त्वं त्वंतत् रीति यह, सब वाक्यनमें जानि ।
जातें होय परोक्षता, परिच्छिन्नता हानि ॥ ४९ ॥

टीकाः—सर्ववाक्यनमैं " तत् त्वं " " त्वं तत् " इस रीतिसैं ओतप्रोतभावकी रीति जान. जा ओतप्रोतभाव कियेतैं वाक्यके अर्थमैं, परोक्ष औ परिच्छिन्नता भ्रांतिकी हानि होवै है.

"तत् त्वं " या कहनेतैं तत्पदके अर्थका त्वंपद अर्थसैं अभेद कह्या. सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्यअपरोक्ष है; यातैं परोक्षताभ्रांतिकी हानि औ " त्वं तत् " या कहनेतैं त्वंपदके अर्थका तत्पदके अर्थसैं अभेद कह्या, सो तत्पदका अर्थ व्यापक है; यातैं परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि. तैसैं " अहं ब्रह्म, " " प्रज्ञानं ब्रह्म " " आत्मा ब्रह्म" यातैं परिच्छिन्नताहानि. औ " ब्रह्म अहं, " " ब्रह्म प्रज्ञानं, " " ब्रह्म आत्मा, " यातैं परोक्षताहानि.

दोहा।

जीवब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन ।
शिष्य तहां पहिंचानिये, भागत्यागकी सैन ॥ ५० ॥

टीकाः--हे शिष्य! जो वेदबैन औरस्मृतिबैन, जीवब्रह्म-की एकता कहैं; तहां सारे भागत्यागकी सैन पहिचानिये.

दोहा--

अस शिष गुरूपदेश सुनि, भो तत्काल निहाल ॥
भले विचारै याहि जो, ताके नशत जंजाल ॥ ५१ ॥

सोरठा--

मिथ्यागुरु सुरवानि[1], कियो ग्रंथउपदेश यह ।
सुनत करत तमहानि[2], यह ताकी भाषा करी ॥५२॥

दोहा--

अग्रधदेवकूं स्वप्नसें, यह किय गुरु उपदेश ।
नश्यो न तहुँ दुखमूल वह, मिथ्यावनको वेश ॥५३॥
वेश कहिये स्वरूप. अन्यअर्थ स्पष्ट.

अग्रध उवाच ।

चौपाई ।

भगवन् यह तुम ग्रंथ पढायो ।
अर्थसहित सो मोहिय आयो ॥
वन दुखमूल तऊ मुहिं भासैं ।
कहु उपाय जातें यह नासै ॥ ५४ ॥
बोले गुरु सुनि शिषकी वानी ।
सुन शिष व्है जातें वनहानी ॥
अस उपाय कोउ और नहीं है ॥
वनका नाशक[3] हेतु यही है ॥ ५५ ॥

---

१ संस्कृतभाषामें. २ अज्ञानकी हानि. ३ नाश करनेवाला.

महावाक्यको अर्थ विचारहु ।
"मैं अग्रध" यूं टेरि पुकारहु ॥
सुनि पुनि वाक्य विचारै चेला ।
"अहं अग्रध" यह दीनो हेला ॥ ५६ ॥
निद्रा गई नैन परकाशे ।
बन गुरु ग्रंथ सबै वह नाशे ॥
भयो सुखी वनदुख विसरायो ।
हुतो अग्रध निजरूप सु पायो ॥ ५७ ॥

दोहा-

अग्रधदेव में नींदतें, भो वनदुख जिहि रीति ॥
आतममें अज्ञानतें, त्यूं जगदुख परतीति ॥ ५८ ॥
ज्यूं मिथ्यागुरुग्रंथतें, मिथ्यावनसंहार ॥
त्यूं मिथ्या गुरुवेदतें, मिथ्याजगपरिहार ॥ ५९ ॥
लक्ष्य अर्थ लखि वाक्यको, ह्वै जिज्ञासु निहाल ॥
निरांवरण सो आप है, दादू दीनदयाल ॥ ६० ॥

इति श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनं
नाम षष्ठस्तरंगः समाप्तः ।

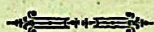
---

१ पुकार. २ जाननेकी इच्छावाला. ३ आवरणरहित.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीविचारसागरे ।

सप्तमस्तरंगः ७।



अथ जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनम् ।

दोहा ।

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहुँ, सुनि अस गुरुउपदेश ।
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो, रह्यो न संशयलेश ॥ १ ॥

टीकाः–यद्यपि गुरुने उपदेश तीनोंकूं साथही किया, तथापि गुरुउपदेशतैं साक्षात्कार उत्तम तत्त्वदृष्टिकूं हुवा ॥१॥

दोहा ।

भ्रमण करत ज्यों पवनत, सूखो पीपरपात ॥
शेषकर्म प्रारब्धतें, क्रिया करत दरशात ॥ २ ॥

कबहुँक चढ़ि रथ [1]बाजि [2]गज, बाग बगीचे देखि ॥
[3]नग्नपाद पुनि एकले, फिर आवत तिहिं लेखि ॥ ३ ॥

[4]विविधवेषशय्याशयन, उत्तमभोगन भोग ॥
कबहुँक [5]अनशन गिरिगुहा, [6]रजनि[7]शिलासंयोग ॥४॥

करि प्रमाण पूजन करत, कहुँ जन लाख हजार ॥
उभयलोकतैं भ्रष्ट लखि, कहत कर्मि धिक्कार ॥ ५ ॥

---

१ घोड़ा. २ हाथी. ३ नंगे पैर. ४ अनेक प्रकारके वेषोंकी शय्यामें सोना. ५ भोजनरहित. ६ रात्रिको. ७ पत्थरके संयोगसे रहना अर्थात् पत्थरपे सोना.

जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सुलेत ॥
दोषदृष्टि तिहि जो लखैं, ताहि पापफल देत ॥ ६ ॥

ऐसे ताके देहको, बिना नियम व्यवहार ॥
कबहुँ न भ्रम संदेह व्है, लह्यो तत्त्वनिर्धार ॥ ७ ॥

नहिं ताकूं कर्तव्य कछु, भयो भेदभ्रमनाश ॥
उपज्यो वेदप्रमाणतें, अद्वयब्रह्मप्रकाश ॥ ८ ॥

ज्ञानीके व्यवहारमें, कोउ कहत है नेम ॥
त्रिपुटि तजै दुखहेतु लखि, लहै समाधि सप्रेम ॥ ९ ॥

व्है किंचित् व्यवहार जो, भिक्षाशन-जलपान ॥
भूलै नाहिं समाधिसुख, व्है त्रिपुटीतें ग्लान ॥ १० ॥

लहै प्रयत्न समाधिको, पुनि ज्ञानी इहि हेत ॥
जो समाधिसुख तजि भ्रमत, नर कूकर खर प्रेत ॥ ११ ॥

गौडपादमुनिकारिका, लिख्यो समाधिप्रकार ॥
ज्ञानी तजि विक्षेप यूं, लहै सकलसुखसार ॥ १२ ॥

अष्टअंग विन होत नहिं, सो समाधिसुख मूल ॥
अष्ट अंग ते अब सुनो, जे समाधिअनुकूल ॥ १३ ॥

पांच पांच यमनियम लखि, आसन बहुतप्रकार ॥
प्राणायाम अनेकविध, प्रत्याहार विचार ॥ १४ ॥

---

१ भेदरूप भ्रांतिका नाश. २ अद्वितीय ब्रह्मका ज्ञान. ३ व्याधि १, स्त्यान (चित्तका चेष्टारहित व कुचेष्टारहित हो जाना) २, संशय ३, प्रमाद ४, आलस्य ५, अविरति ६, भ्रान्तिदर्शन (विपर्ययज्ञान) ७, आलस्य अलब्धभूमिकत्व (समाधिभूमि-को न पाना) ८, अनवस्थितत्व (समाधि भूमिमें चित्तका स्थित न होना) ९, यह नव चित्तके विक्षेप हैं ।

छठो धारणा ध्यान पुनि, अरु सविकल्पसमाधि ।
अष्ट अंग ये साधके, निर्विकल्प आराधि ॥ १५ ॥

सुनि समाधिकर्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हँसि देत ॥
उत्तर कछु भाषत नहीं, लखि तिहिं बकत सप्रेत १६

टीका:--जैसे सप्रेत कहिये प्रेतसहित भूतके आवेशवाला बके, तैसे अन्यथा कहता सुनके तत्त्वदृष्टि हँसै है. अन्य-दोहाका अक्षरअर्थ स्पष्ट है. भाव यह है:--ज्ञानवान्के शरीर-व्यवहारका नियम नहीं. काहेतैं ? ज्ञानीके व्यवहारमैं, अ-ज्ञान औ ताका कार्य भेदभ्रांति; तथा भेदभ्रमके कार्य, राग-द्वेष तौ हैं नहीं; किंतु ज्ञानवान्केभी प्रारब्धकर्म शेष रहैं; सोई ताके व्यवहारमैं निमित्त हैं. सो प्रारब्धकर्म पुरुषभे-दसैं नानाप्रकारका होवै है. यातैं ज्ञानीके प्रारब्धकर्मजन्य व्यवहारका नियम नहीं. यह सिद्धांतपक्ष है.

कोई ऐसैं कहै हैं:--ज्ञानीके व्यवहारमैं और किसी कर्म-का तौ नियम नहीं; परंतु ज्ञानवान्के निवृत्तिका नियम है. प्रवृत्ति होवै तौ देहस्थितिके हेतु, भिक्षाअशन कौपीनआ-च्छादनमात्र ग्रहणमैं प्रवृत्ति होवै है; अन्यप्रवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानका उत्पत्तिसैं प्रथम जिज्ञासाकालमैं, विषयनमैं दोषदृष्टितैं वैराग्य होवै है; सौ वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनं-तरभी दोषदृष्टितैं तथा विषयनमैं मिथ्याबुद्धिसैं होवै है अप-रोक्षरूपतैं मिथ्या जाने पदार्थनमैं सत्यबुद्धि होवै नहीं. अस-दृष्टितैं राग होवै नहीं; औ प्रवृत्ति रागतैं होवै है. ज्ञानीके राग संभवै नहीं; यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं.

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति तौ, रागतैं बिना प्रारब्धकर्मतैं संभवै है. कर्म तीन प्रकारके हैं--संचित, आगामी औ प्रारब्ध. तिनमैं भूतशरीरनमैं किये कर्म फलारंभरहित संचित और भविष्यत्कर्म आगामी कहिये हैं. भूतशरीरनमैं किया वर्तमानशरीरका हेतु कर्म प्रारब्ध कहिये है. तिनमैं संचितकर्मका ज्ञानतैं नाश होवै है.

ज्ञानवान्कूं, आत्मामैं कर्तृत्वभ्रांति नहीं; यातैं ताकूं आगामीकर्मका संभव नहीं; औ जिस प्रारब्धकर्मने ज्ञानीके शरीरका आरंभ किया है; सोई प्रारब्धकर्म शरीरस्थितिके हेतु भिक्षादिकनमैं प्रवृत्ति करवावै है. प्रारब्धकर्मका भोग-बिना नाश होवै नहीं. और,

कहूं ऐसा लिख्या हैः--संचित आगामीकर्मकी नाईं, ज्ञानीके प्रारब्धकर्मभी रहते नहीं, यातैं भोजनादिक प्रवृत्तिभी ज्ञानीकूं संभवै नहीं. वाका यह अभिप्राय हैः--ज्ञानीकी दृष्टितैं आत्मामैं कर्म औ ताके फलका संबंध नहीं. यातैं आत्मामैं सर्वकर्मका निषेधअभिप्रायतैं, प्रारब्धका निषेध किया है औ ज्ञानतैं पूर्व किये प्रारब्धका ज्ञानीके शरीरकूं भोग होवै नहीं; इस अभिप्रायतैं प्रारब्धका निषेध नहीं; काहेतैं ? सूत्रकारने यह लिख्या हैः--ज्ञानीके संचितकर्मका ज्ञानतैं नाश होवै है. आगामीका संबंध होवै नहीं; प्रारब्धका भोगतै नाश होवै है. यातैं प्रारब्धके बलतैं शरीरनिर्वाहकक्रिया ज्ञानीकी होवै है; अधिक नहीं. परंतु,

कर्म नाना प्रकारके हैं. जहां एककर्म नानाशरीरका आरंभक होवै; ऐसे कर्मतैं रचित प्रथमशरीरमें जाकूं ज्ञान होवै, तहां ज्ञानवान्कूं अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये; काहेतैं ?

फलका जाने आरंभ किया है, सो प्रारब्ध कहिये है; याका भोगबिना नाश होवै नहीं. अनेकशरीरका हेतुकर्म एक है, यातैं प्रथमशरीर जो उपजाया तामैं ज्ञान हुवा; ता कर्मके फलज्ञानतैं अनंतर और शरीर शेष रहै है. यातैं ज्ञानवान्कूं भी अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये. और,

जो ऐसैं कहैं:—प्रारब्धकर्मका फल जितने शरीर होवैं, उतने शरीर ज्ञानीकूंभी होवैं हैं. प्रारब्धके भोगतैं अधिक होवै नहीं; यातैं ज्ञानभी सफल होवै है; सो बनै नहीं. काहेतैं ? यह वेदका ढंढोरा हैः--"ज्ञानवान्के प्राण अन्यलोकमैं, वा इस लोकके अन्यशरीरमैं गमन नहीं करते." किंतु, तिसी स्थानमें अंतःकरण इंद्रियसहित लीन होवै हैं औ प्राणगमनबिना अन्यशरीरकी प्राप्ति संभवै नहीं. यातैं ज्ञानवान्कूं प्रारब्धशेषतैं, और शरीर होवै है, यह कहना तौ संभवै नहीं. किंतु,

यह समाधान हैः--जहां अनेक शरीरका आरंभक एक कर्म होवै, तहां अंतशरीरमैंही ज्ञान होवै है; पूर्वशरीरमैं ज्ञान होवै नहीं. काहेतैं ? अनेक शरीरका आरंभ प्रारब्धही ज्ञानका प्रतिबंधक है. जैसे विषयनमैं आसक्ति, बुद्धिमंदता, भेदवादिवचनमैं विश्वास, ज्ञानका प्रतिबंधक है; तैसैं विलक्षणप्रारब्धभी ज्ञानका प्रतिबंधक है औ ज्ञानके प्रतिबंधक होते, जहां ज्ञानसाधन श्रवणादिक होवैं, तहां प्रतिबंधक दूर हुयेतैं, प्रथमजन्मविषे किये जो श्रवणादिक हैं, तिनतैंही अन्यशरीरमैं ज्ञान होवै है. जैसैं वामदेवने पूर्वजन्मविषे श्रवणादिक किये, तब प्रारब्धका फल एक शरीर शेष होते ज्ञान नहीं हुवा, किंतु श्रवणादिककरते वर्तमानशरीरका पात होयके अन्यशरीरकी प्राप्ति हुयेतैं, पूर्वजन्ममैं किये श्रवणादिकनतैं गर्भ-

विषे ज्ञान हुवा है. यातैं ज्ञानसैं अनंतर अन्यशरीरका संबंध होवैं नहीं. औ वर्त्तमानशरीरकी चेष्टा प्रारब्धसैं होवै है. तहां जितनी चेष्टा शरीरकी निर्वाहक है सोई होवै; रागजन्य अधिक चेष्टा होवै नहीं. यातैं सर्वप्रवृत्तिरहित ज्ञानी होवै है.

इस रीतिसैं निवृत्तिप्रधान ज्ञानीका व्यवहार होवै है. याके विषे ऐसी शंका है:--मनका स्वभाव अतिचंचल है, निरालंब मनकी स्थिति होवै नहीं; किसी आलंबतैं मनकी स्थिति होवै है. यातैं मनके किसी आलंबकी प्राप्तिनिमित्तभी, ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवै है. ताका,

यह समाधान है:--यद्यपि समाधिहीन पुरुषका मन चंचल होवै है; तथापि समाधितैं मनका विजय होवै है. औ ज्ञानवान् समाधिविषे स्थित होवै है. यातैं ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवै नहीं. सो,

समाधि इन अष्ट अंगनतैं होवै है:—यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७, सविकल्पसमाधि ८, इन अष्टअंगतैं समाधि होवै है.

अहिंसा[1] १, सत्य[2] २, अस्तेय[3] ३, ब्रह्मचर्य[4] ४, अपरिग्रह[5]; ५ ये पांच यम कहे हैं.

शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५; ये पांच नियम कहिये हैं. औ ज्ञानसमुद्रग्रंथमैं दश

---

१ किसी प्रकारसे किसी कालमें किसी प्राणीसे द्रोह न करना इसे अहिंसा कहते हैं. सो अन्य चार यमोंकी मूल है. अहिंसाहीके सिद्ध करनेके लिये अन्य चार यम किये जाते हैं. २ जैसा अपना दृष्ट श्रुत तथा अनुमित होवै वैसा कहना. ३ शास्त्रविरुद्ध रीतिसे किसीका धन न ग्रहण करना. ४ उपस्थ इन्द्रियका निग्रह. ५ विषयोंका दोषदृष्टिसे त्याग.

प्रकारके यम; औ दशप्रकारके नियम कहे हैं; सौ पुराणकी रीतिसैं कहे हैं; वेदांतसंप्रदायमें यमनियमके पांचपांचही भेद हैं. औ,

आसनके भेद अनंत हैं. तिनमैं स्वस्तिक १, गोमुख २, वीर ३, कुर्म ४, पद्म ५, कुक्कुट ६, उत्तानकूर्मक ७, गरुड ८, धनुष ९, मत्स्य १०, पश्चिमतान ११, मयूर १२, शव १३, सिंह १४, भद्र १५, सिद्ध १६, इत्यादिक चौरासी आसन योगग्रंथनमैं लिखे हैं, तिनके लक्षणभी तहां लिखे हैं. ग्रंथके विस्तारभयतैं, तथा वेदांतमैं अत्यंत उपयोगी नहीं, यातैं लक्षण लिखे नहीं. तिनमैंभी सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध, ये चार आसन प्रधान हैं. तिन चारिमेंभी,

सिद्ध-आसन अत्यंत प्रधान है. ताका यह लक्षण है:-- वामपादकी ऍड़ी गुदा मेंढुके मध्य सीवनमैं दाबके धरै. दक्षिणपादकी ऍड़ी मेंढुके ऊपर दाबके धरै; भृकुटीके अंतरदृष्टि राखै; स्थाणुकी नाईं सरल निश्चलशरीरतैं स्थितिकूं सिद्धासन कहै हैं. और,

कोई ऐसैं कहैं:--वामपादकी ऍडी सीवनमैं नहीं लगावै, किंतु मेंढूके ऊपर लगावै, ताके ऊपर दक्षिण ऍड़ी धरै, औ पूर्वकी नाईं. यह सिद्धासनही अति प्रधान है. काहेतैं? कितनेक आसन तौ रोगनाशके हेतु हैं; और कोई आसन ऐसे हैं, कि प्राणायामादिक समाधिके अंग जिनतैं होवै हैं औ सिद्धासन समाधिकालमैं होवै है. यातैं अतिप्रधान है. याहीकूं वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन कहै हैं.

१ कहीं कहीं चौरासीलक्ष योगासन लिखे हैं. परंतु वास्तवमें योगासन अनन्त हैं. सो योगशास्त्रके ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हैं.

आसनसिद्धिसैं अनंतर, प्राणायामभी करै. सो प्राणायाम बहुत प्रकारका है, तथापि संक्षेपतैं यह लक्षण हैः--नासाके वामछिद्रद्वारा इडा नाम नाडीतें वायुकूं पूरण करै. ताकूं पूरक कहै हैं. दक्षिणतैं त्यागे, ताकूं रेचक कहै हैं. सुषुम्नातैं रोके ताकूं कुंभक कहै हैं. इस रीतिसैं पूरक रेचक कुंभककूं प्राणायाम कहै हैं. सो दो प्रकारका हैः--एक अगर्भ है, तैसे दूसरा सगर्भ है. प्रणवके उच्चारणरहित प्राणायाम, अगर्भ कहिये हैं. प्रणवके उच्चारणसहित प्राणायाम, सगर्भ कहिये है.

विषयनतैं सकल इंद्रियके निरोधकूं प्रत्याहार कहै हैं. अंतरायरहित अंतःकरणकी स्थिति, धारणा कहिये है. अंतरायसहित अद्वितीयवस्तुविषे अंतःकरणका प्रवाह, ध्यान कहिये है.

व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार, और निरोधसंस्कारनकी[1] प्रगटता हुये, अंतःकरणका एकाग्ररूप परिणाम समाधि कहिये हैं. सो समाधि दो प्रकारकी हैः--एक सविकल्पसमाधि है, दूसरी निर्विकल्पसमाधि है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप त्रिपुटीभानसहित अद्वितीयब्रह्मविषे अंतःकरणकी वृत्तिकी स्थिति सविकल्पसमाधि कहिये है. सो सविकल्पसमाधि दो प्रकारकी हैः-एक तौ शब्दानुविद्ध है, दूसरी शब्दानुविद्ध है. "अहं ब्रह्मास्मि" इस शब्दकरके अनुविद्ध कहिये सहित होवै, सौ शब्दानुविद्ध कहिये है. शब्दरहितकूं शब्दाननुविद्ध कहै हैं. त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतःकरणवृत्तिकी स्थिति निर्विकल्पसमाधि कहिये हैं. इस रीतिसैं सविकल्प औ निर्विकल्पसमाधिके दो भेद हैं. तिनमैं

१ विरोधसंस्कारोंका.

सविकल्पसमाधि साधन है; औ निर्विकल्पसमाधि फल है. साधनरूप जो सविकल्पसमाधि है, ताके विषे यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवै है, तथापि सो द्वैत इस रीतिसैं ब्रह्मरूपकरके प्रतीत होवै है.—जैसैं मृत्तिकाविकारनकूं मृत्तिकारूप जानेतैं विवेकीकूं मृत्तिकाके विकार घटादिक प्रतीतभी होवै हैं, परंतु मृत्तिकारूपही प्रतीत होवै हैं. तैसैं सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटिद्वैत ब्रह्मरूपही प्रतीति होवै है. निर्विकल्पसमाधिविषेभी सविकल्पसमाधिकी नाईं त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमानभी होवै है, तो भी त्रिपुटीद्वैतकी प्रतीति होवै नहीं. जैसैं जलमैं लवणकूं गेरै तहां लवण विद्यमान होवै है, परंतु नेत्रसैं लवणकी सर्वथा प्रतीति होवै नहीं. इस रीतिसैं सविकल्पनिर्विकल्पका यह भेद सिद्ध हुआः-सविकल्पसमाधिमैं ब्रह्मरूपकरके द्वैतकी प्रतीति; औ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति. तैसैं—

सुषुप्तिसैं निर्विकल्पका यह भेद है. सुषुप्तिमैं अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवै है. औ निर्विकल्पकसमाधिमैं ब्रह्माकारवृत्ति तौ अंतःकरणकी होवै है, ताका अभाव होवै नहीं. इस रीतिसैं सुषुप्तिमैं तौ वृत्तिसहित अंतःकरणका अभाव होवै है. औ निर्विकल्पसमाधिमैं वृत्तिसहित अंतःकरण तौ होवै है. ताकी प्रतीति होवै नहीं. निर्विकल्प समाधिविषे अंतःकरणकी जो ब्रह्माकारवृत्ति होवै है, ताका हेतु सविकल्पसमाधिका अभ्यास है. यातैं साधनरूप अष्टअंगनमैं सविकल्पसमाधि गिनी है, निर्विकल्पसमाधि फल है. सो,

निर्विकल्पसमाधिभी दो प्रकारकी होवै हैः-एक अद्वैतभावनारूप, औ दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवै है. अद्वैत

ब्रह्माकार अंतःकरणकी अज्ञातवृत्तिसहित होवैं, सो अद्वैत-भावनारूप निर्विकल्पसमाधि कहिये है. या समाधिमैं अभ्यास अधिक हुयेतैं, ब्रह्माकारवृत्तिभी शांत होय जावै है. यातैं वृत्तिरहितकूं अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि कहै हैं. जैसें तप्त लोहके ऊपर जलकी बूंद गेरी तप्तलोहमैं प्रवेश करै है, तैसें अद्वैतभावनारूप समाधिके दृढअ-भ्यासतैं, अत्यंतप्रकाशमान ब्रह्मविषे वृत्तिका लय होवै है. सो अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि, ताका साधन है.

अद्वैतावस्थानरूप समाधि, औ सुषुप्तिका इतनाभेद है-- सुषुप्तिमैं वृत्तिका लय अज्ञानमैं होवै है; अद्वैतावस्थानस-माधिमैं वृत्तिका लय ब्रह्मप्रकाशमैं होवै. औ सुषुप्तिका आनंद अज्ञानआवृत है, औ समाधिमैं निरावरणब्रह्मानं-दका भान होवै है. परंतु,

निर्विकल्प समाधिमैं चार विघ्न होवै हैं, सो निषेध कर-नेकूं कहिये हैं:--लय १, विक्षेप २, कषाय ३, रसास्वाद ४, आलस्यकरके अथवा निद्राकरके वृत्तिके अभावकूं लय कहै हैं, ता लयतैं सुषुप्तिसमान अवस्था होवै है; ब्रह्मानं-दका भान होवै नहीं. यातैं निद्राआलस्यादिक निमित्ततैं जब वृत्तिका अपने उपादान अंतःकरणमें लय होता दीखै, तब योगी सावधान होयके निद्रादिकनकूं रोकके वृत्तिकूं जगावै. इस रीतिसैं लयरूप विघ्नका विरोधी, जो निद्राआ-लस्य निरोधसहित वृत्तिका प्रवाहरूप जागरण, ताकूं गौड-पादाचार्य चित्तसंबोधन कहैं हैं.

विक्षेपका यह अर्थ है:-जैसे बाज वा बिल्लीतैं डरके चटिका ग्रहमें प्रवेश करै; तब भयव्याकुलकूं गृहके अंतर

तत्काल स्थान दीखै नहीं; यातैं फेर बाहर आयके, भय अथवा मरणरूप खेदकूं प्राप्त होवै है. तैसैं अनात्मपदार्थनकूं दुःखहेतु जानके, अद्वैतानंदकूं विषय करनेके वास्ते अंतर्मुख हुई जो वृत्ति, तहां वृत्तिका विषय चेतन अतिसूक्ष्म है, यातैं किंचित्काल वृत्तिकी स्थितिबिना, तत्कालही चेतनस्वरूप आनंदका लाभ नहीं होवै है; तातैं वृत्ति बहिर्मुख होवै है. इस रीतिसैं बहिर्मुखवृत्ति, विक्षेप कहिये है. सो वृत्तिकी स्थिरताबिना स्वरूपआनंदका अलाभ होवै है. यातैं अंतर्मुखवृत्ति हुयेतैंभी जितने काल वृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं, उतने काल बाह्यपदार्थनमैं दोषभावनातैं वृत्तिकूं बहिर्मुखता योगी होने देवै नहीं, किंतु वृत्तिकी अंतर्मुखताही स्थापन करै. विक्षेपरूप विघ्नका विरोधी जो योगीका प्रयत्न ताकूं गौडपादाचार्यने सम कह्या है.

रागादिक दोषनकूं कषाय कहै हैं. यद्यपि रागादिक दो प्रकारके हैंः-एक बाह्य है, औ दूसरे आंतर है. पुत्र स्त्री धन आदिक जिनके विषय वर्त्तमान होवै, सौ बाह्य कहिये है. भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य, सो आंतर कहिये हैं. सो दोनों प्रकारके रागादिक, समाधिमैं प्रवृत्त योगीविषे संभवैं नहीं. काहेतैं ?

चित्तकी पांच भूमिका हैंः—तिनमैं एक क्षेपनाम भूमिका है,दूजी मूढता, तीजी विक्षेप,चौथी एकाग्रता, पांचवी निरोधभूमिका है. लोकवासना. देहवासना. शास्त्रवासना इसतैं आदि लेके रजोगुणका परिणाम जो दृढअनात्मवासना, ताकूं क्षेप कहै हैं. निद्राआलस्यादिक तमोगुणपरिणामकूं मूढता कहै हैं.ध्यानमैं प्रवृत्तचित्तकी कदाचित् बाह्यप्रवृत्तिकूं

विक्षेप कहै हैं. अंतःकरणका अतीतपरिणाम औ वर्त्तमान-परिणाम, समानाकार होवै, ताकूं एकाग्रता कहै हैं. यह एकाग्रताका लक्षण **योगसूत्रमें** पतंजलिने कह्या है; ताका भाव यह है:--समाधिकालमैं योगके अंतःकरणमैं एकाग्रता होवै है, सो एकाग्रता वृत्तिका अभावरूप नहीं; किंतु जितने अंतः-करणके परिणाम समाधिकालमैं होवै हैं, सो सारे ब्रह्मकूंही विषय करै हैं. यातैं अंतःकरणके अतीतपरिणाम औ वर्तमान परिणाम केवल ब्रह्माकार होनेतैं समानाकार होवै हैं. ता एकाग्रताकी वृद्धिकूं निरोध कहै हैं. ये पांच भूमिका अंतःकरणकी हैं. भूमिका नाम अवस्थाका है.

इन पांचभूमिकासहित अंतःकरणके, ये क्रमतैं नाम हैं:-- क्षिप्त १, मूढ २, विक्षिप्त ३, एकाग्र ४, निरुद्ध ५. तिनमैं क्षिप्त औ मूढ अंतःकरणका तौ समाधिविषे अधिकार नहीं. विक्षिप्तअंतःकरणकूं अधिकार है. एकाग्र औ निरुद्ध अंतःकरण समाधिकालमैं होवै है. यह योगग्रंथनमैं कह्या है. रागादिक दोषसहित अंतःकरण क्षिप्तही है. ता क्षिप्तअंतःकरणका योगमैं अधिकार नहीं. यातैं रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं, यह कहना संभवै नहीं; तथापि यह समाधान है:--बाह्य अथवा अंतर जो रागादिक हैं, सो तौ क्षिप्तअंतःकरणमैंही होवै हैं, ताका अधिकारभी नहीं. तौभी अनेकजन्मविषे पूर्व अनुभव किये जो बाह्यअंतर रागद्वेष, तिनके सूक्ष्मसंस्कार, विक्षिप्तादिक अंतःकरणमैंभी संभवै हैं. यातैं रागद्वेषका नाम कषाय नहीं; किंतु रागद्वेषादिकनके संस्कार कषाय कहिये हैं. सो संस्कार अंतःकरण रहै जितने दूरि होवैं नहीं; यातैं समा-

धिकालमेंभी अंतःकरणमैं रहै है; परंतु रागद्वेषादिकनके उद्भूतसंस्कार समाधिके विरोधी हैं; अनुद्भूत विरोधी नहीं. प्रगटकूं उद्भूत कहै हैं; अप्रगटकूं अनुद्भूत कहै हैं. समाधिमैं प्रवृत्त योगीकूं जो रागद्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवै, तौ विषयनमैं दोषदर्शनतैं दाब देवै. विक्षेप कषायका यह भेद है:—बाह्यविषयाकरवृत्तिकूं विक्षेप कहै हैं. औ योगीके प्रयत्नतैं जहां वृत्ति अंतर्मुख तौ होवै परंतु रागादिकनके उद्भूतसंस्कारनतैं, अंतर्मुख हुई वृत्तिभी रुक जावै; ब्रह्मकूं विषय करै नहीं, ताकूं कषाय कहै हैं. विषयमैं दोषदर्शनसहित योगीके प्रयत्नतैं कषायविघ्नकी निवृत्ति होवै है.

रसास्वादका यह अर्थ है:—योगीकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवै है; औ विक्षेपरूप दुःखकी निवृत्तिका अनुभव होवै है. कहूं दुःखकी निवृत्तिसैंभी आनंद होवै है.जैसैं भारवाही पुरुषका भार उतरेसैं ताकूं आनंद होवै, तहां आनंदमैं और तौ कोई विषय हेतु है नहीं:किंत भारजन्य दुःखकी निवृत्तिसैं यह कहै है:--"मेरेकूं आनंद हुवा है." यातैं दुःखकी निवृत्तिभी आनंदका हेतु है. तैसैं योगीकूं समाधिमैं विक्षेपजन्यदुःखकी निवृत्तिसैं जो आनंद होवै, ताका अनुभव, रसास्वाद कहिये है. जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदके अनुभवसैंही योगी अलंबुद्धि कर लेवै, तौ सकल उपाधिरहित ब्रह्मानंदाकारवृत्तिके अभावतैं, ताका अनुभव समाधिमैं होवै नहीं. यातैं दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभवरूप रसास्वादभी समाधिमैं विघ्न है. वांछितकी प्राप्तिविनाभी विरोधीकी निवृत्तिसैं, आनंदकी उत्पत्तिमैं अन्य दृष्टांतः--जैसैं पृथिवीमैं निधि होवै, सो निधि अत्यंतविषधर सर्पतैं रक्षित होवै, तहां निधिप्राप्तिसैं प्रथमभी

निधिप्राप्तिका विरोधी जो सर्प है; ताकी निवृत्तिसैं आनंद होवै है. तहां सर्पनिवृत्तिके आनंदमैं जो अलंबुद्धि करे, तो उद्यम त्यागनेतैं निधिप्राप्तिका परमानंद प्राप्त होवै नहीं. तैसैं अद्वैतब्रह्मरूप निधि है, देहादिक अनात्मपदार्थनकी प्रतीति रूप जो विक्षेप,सो सर्प है.विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्तिजन्य जो अवांतरआनंदरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है, सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिजन्य जो महाआनंद है, ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक होनेतैं विघ्न कहिये है. अथवा,

रसास्वादका यह और अर्थ है:-सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधि होवै है. औ सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै है. यातैं सविकल्पसमाधिका आनंद त्रिपुटीरूप उपाधिसहित होनेतैं सोपाधिक कहिये है. औ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं, यातैं निरुपाधिक आनंद निर्विकल्पसमाधिमैं होवै है. इंस रीतिसैं सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधिके आरंभमैंभी सविकल्पसमाधिके सोपाधिक आनंदकूं त्याग सकै नहीं;किंतु ताहीकूं अनुभव करै सो रसास्वाद कहिये है. यातैं विक्षेप निवृत्तिजन्य आनंदका अनुभव,अथवा सविकल्पसमाधिके आनंदका अनुभव, रसास्वाद कहिये है. सो दोनों प्रकारका रसास्वाद,निर्विकल्पसमाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनेतैं, विघ्न है. यातैं ताकूंभी त्यागे. ऐसे निर्विकल्पसमाधिमैं चार विघ्न होवै हैं; सो चारों विघ्न समाधिके आरंभमैं होवै हैं; यातैं सावधानतासैं चारों विघ्नोंकूं रोकिके,

समाधिमैं परमानंदकूं विद्वान् अनुभव करै है. ताहीकूं जीवन्मुक्त कहै हैं. इस रीतिसैं ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं

होवै है. जब प्रारब्धबलतैं समाधिसैं उत्थान होवै, तबभी समाधिमैं जो परमानंदका अनुभव किया है, ताकी स्मृति होवै है. यातैं उत्थानकालमैंभी ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं, औ ज्ञानवान्की जो भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति होवै है, सो केवल प्रारब्धसैं होवै है; परंतु भोजनादिकव्यवहारमैं ज्ञानी खेद मानके प्रवृत्त होवै है: काहेतैं ? भोजनादिकनमैं प्रवृत्तिभी समाधिसुषुप्तिकी विरोधी है. जाकूं भोजनादिक शरीरनिर्वाहकी प्रवृत्तिही खेदरूप प्रतीत होवै, ताकी अधिकप्रवृत्ति संभवै नहीं. इस रीतिसैं बहुत आचार्योंने यही पक्ष लिख्या है, औ जीवन्मुक्तिका आनंदभी बाह्यप्रवृत्तिमैं होवै नहीं; किंतु निवृत्तिमैं होवै है. यातैं जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवान्की बाह्यप्रवृत्ति संभवै नहीं.

तथापि ज्ञानवान्के निवृत्तिकाभी नियम कहना संभवै नहीं. काहेतैं ? निवृत्तिमैं अथवा प्रवृत्तिमैं वेदकी आज्ञारूप विधि तौ ज्ञानीकूं है नहीं; जातैं ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम होवै. यातैं ज्ञानी निरंकुश है. ताका व्यवहार प्रारब्धसैं होवै है. जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्र फलका हेतु है, ताकी भिक्षाभोजनमात्रमैं प्रवृत्ति होवै है. जाका प्रारब्ध अधिकभोगका हेतु होवै, ताकी अधिकमैंभी प्रवृत्ति होवै है, और—

जो ऐसे कहै कि:--जाका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्रका हेतु होवै ताहीकूं ज्ञान होवै है, अधिक व्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवै ताकूं ज्ञान होवै नहीं; यातैं भिक्षाभोजनादिक व्यवहारतैं अधिक व्यवहार ज्ञानीका होवै नहीं, जाकी अधिक प्रवृत्ति होवै सो ज्ञानी नहीं.

सो शंका बनै नहीं. काहेतैं ? याज्ञवल्क्य जनकादिक

ज्ञानी कहे हैं. सभाविजयतैं धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालनव्यवहार जनकका कह्या है. औ वासिष्ठ-ग्रंथमैं अनेक ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार, नानाप्रकारके कहे हैं. यातैं ज्ञानीके प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं. यद्यपि याज्ञवल्क्यने सभाविजयतैं उत्तर, विद्वत्संन्यासरूप निवृत्ति-ही धारी है, औ प्रवृत्तिमैं ग्लानिके हेतु नाना दोष कहे हैं, तथापि याज्ञवल्क्यकूं विद्वत्संन्यासतैं पूर्व ज्ञान नहीं था; यह कहना तौ संभवै नहीं. किंतु ज्ञान तौ प्रथमभी था; परंतु विद्वत्संन्यासतैं पूर्व जीवन्मुक्तिका आनंद प्राप्त हुवा नहीं; यातैं जीवन्मुक्तिके आनंदके वास्ते सर्वसंगका त्याग किया है. याज्ञ-वल्क्यकूं प्रारब्ध कुछ काल अधिक भोगका हेतु था, औ उत्तरकाल न्यूनभोगका हेतु था; यातैं प्रथम तौ याज्ञवल्क्यकूं ग्लानिविना अधिकभोग, औ आगे ग्लानितैं सर्वभोगनका त्याग हुवा है. औं जनकका प्रारब्ध मरणपर्यंत राज्यपाल-नादिक समृद्धिभोगका हेतु हुवा है. यातैं सदा त्यागका अभा-वही हुवा है; भोगनमैं ग्लानिभी हुई नहीं. औ वामदेवादिक-नका प्रारब्ध न्यूनभोगका हेतु हुवा है, तिनकूं सदा भोगनमैं ग्लानितैं प्रवृत्तिका अभावही कह्या है. औ वासिष्ठमैं ऐसाभी प्रसंग है किः—शिखरध्वजकी ज्ञानतैं अनंतर अधिक प्रवृत्ति हुई है. इस रीतिसैं नानाप्रकारके विलक्षण व्यवहार ज्ञानी-पुरुषनके कहे हैं; तिन सर्वकूं ज्ञान समान है, औ ताका फल मोक्षभी समान है; औ प्रारब्धभेदसैं व्यवहारका भेद है. व्यवहारकी न्यूनतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी अधिकता, औ व्यवहारकी अधिकतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी न्यूनता होवै है. याके विषे—

कोई यह शंका करै हैः—जो जीवन्मुक्तिके सुखकूं त्यागके तुच्छ भोगनमैं प्रवृत्त होवै, सो विदेहमोक्षकूंभी त्यागके, वैकुंठादिक लोककी इच्छा धारके जावैगा.

सो शंका बनै नहीं. काहेतैं ? जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग औ भोगनमैं प्रवृत्ति तो ज्ञानीकी प्रारब्धबलतैं संभवै है; औ विदेहमोक्षका त्याग औ परलोककूं गमन संभवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानीके प्राण बाहर गमन करैं नहीं, यातैं परलोककूं गमन संभवै नहीं. औ विदेहमोक्षका त्यागभी संभवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होयके प्रारब्धभोगतैं अनंतर स्थूलसूक्ष्मशरीराकार अज्ञानका चेतनमैं लय विदेहमोक्ष कहिये है. सो अवश्य होवै है. जो मूलअज्ञान बाकी रहै, अथवा नष्ट अज्ञानकी फेर उत्पत्ति होवै, तौ विदेहमोक्षका अभाव होवै. सो मूलअज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेतैं अज्ञान बाकी रहै नहीं. और प्रमाणतैं नाश हुये अज्ञानकी फेर उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं विदेहमोक्षका अभाव होवै नहीं. औ विदेहमोक्षके त्यागमैं, तथा परलोकके गमनमैं ज्ञानीकी इच्छाभी संभवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानीकूं इच्छा केवल प्रारब्धसैं होवै है. जितनी सामग्रीबिना प्रारब्धका भोग संभवै नहीं, उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचै है. इच्छा विना भोग संभवै नहीं. तातैं ज्ञानीकी इच्छाभी प्रारब्धका फल है. औ अन्यलोकमैं अथवा इस लोकमैं अन्यशरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसैंभी होवै नहीं, यह पूर्व इसी तरंगमैं प्रतिपादन करि आये हैं. यातैं ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं विदेहमोक्षके त्यागकी वा परलोकके गमनकी इच्छा होवै नहीं.

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्तमानशरीरमैं अधिक भोगनकी इच्छा तौ भिक्षाभोजनादिकनकी नाईं, जनकादि-

कनकूं संभवै है. या स्थानमैं यह रहस्य है:—ज्ञानीकी बाह्य-प्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं; किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखकी विरोधी है. काहेतैं ? आत्मा नित्यमुक्त है, अविद्यासैं बंध प्रतीत होवै है. जिस कालमैं ज्ञान होवै है, तिसी कालमैं अविद्याकृत बंधभ्रम नष्ट होवै है. ज्ञान हुयेतैं फेर बंधभ्रांति होवै नहीं. शरीरसहितकूं बंधभ्रमका अभावही जीवन्मुक्ति कहिये है. देहादिकनकी प्रवृत्तिमैं तथा निवृत्तिमैं, ज्ञानीकूं बंधभ्रांति आत्मामैं होवै नहीं; यातैं बाह्यप्रवृत्तिसैंभी, जीवन्मुक्ति दूर होवै नहीं. तौभी बाह्यप्रवृत्तिमैं जीवन्मुक्तकूं विलक्षणसुख होवै नहीं; एकाग्रतारूप अंतःकरणपरिणामतैं सुख होवै है. सो एकाग्रतापरिणाम बाह्यप्रवृत्तिमैं होवै नहीं. इस रीतिसैं प्रारब्धभेदतैं ज्ञानीपुरुषनके व्यवहार नानाप्रकरके हैं, परंतु जाका प्रारब्ध अधिकप्रवृत्तिका हेतु होवै है, ताका मंदप्रारब्ध कहिये है. काहेतैं ? अधिकप्रवृत्ति एकाग्रताकी विरोधी है. औ एकाग्रताविना निरुपाधिक आनंद प्रतीत होवै नहीं. यह समाधिनिरूपणमैं कही है. और—

जो पूर्व कह्या "ज्ञानवान्कूं सर्व अनात्मपदार्थनमैं मिथ्याबुद्धि होवै है, राग होवै नहीं; यातैं प्रवृत्ति संभवै नहीं."

सो शंकाभी बनै नहीं, काहेतैं ? जैसैं देहविषे मिथ्याबुद्धिभी ज्ञानीकूं होवै है, तौभी देहके अनुकूल जो भिक्षादिक हैं, तिनमैं केवल प्रारब्धसैं प्रवृत्ति होवै है; तैसैं जिसका अधिकभोगका प्रारब्ध होवै, तिस ज्ञानीकी अधिकप्रवृत्तिभी होवै है. जैसैं बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानके सर्वलोकनकी प्रवृत्ति होवै, तैसैं सर्वपदार्थनमैं ज्ञानीकूं मिथ्या बुद्धि हुयेतैंभी प्रवृत्ति संभवै है. औ—

जो ऐसे कहैं, जाकूं जिस पदार्थमैं दोषदृष्टि होवै, ताके

विषे तिस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै नहीं. ज्ञानीकूं अनात्मपदार्थनमैं दोषदृष्टि होवै है, राग होवै नहीं; यातैं प्रवृत्ति संभवै नहीं.

सोभी बनै नहीं. काहेतैं? जिस अपथ्यसेवनमैं, रोगीने अन्वयव्यतिरेकतैं दोष निश्चय किया है; ता अपथ्यसेवनमैं प्रारब्धतैं जैसे रोगीकी प्रवृत्ति होवै है तैसैं प्रारब्धसैं ज्ञानीकी सर्वव्यवहारमैं प्रवृत्ति दोषदृष्टि हुयेभी संभवै है. इस रीतिसैं ज्ञानीके व्यवहारका नियम नहीं. यह पक्ष विद्यारण्यस्वामीने विस्तारसैं तृप्तिदीपमैं प्रतिपादन किया है. यातैं तत्त्वदृष्टिका व्यवहार नियमरहित है. समाधिरूप नियमकी विधि सुनके तत्त्वदृष्टि हँसे है.

दोहा—

भ्रमण करत कछु काल यूं, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान ।
भोगौ निजप्रारब्ध तब, लीन भये तिहिं प्रान ॥१७॥

टीकाः—प्रारब्धभोगतैं अनंतर ज्ञानीके प्राण गमन करैं नहीं. यातैं तत्त्वदृष्टिके प्राण लीन हुये यह कह्या. औ ज्ञानीके शरीरत्यागमैं कालविशेषकी अपेक्षा नहीं; उत्तरायणमैं अथवा दक्षिणायनमैं देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. तैसैं देशविशेषकी अपेक्षा नहीं; काशीआदिक पुनीत देशमैं, अथवा अत्यंतमलिनदेशमैं ज्ञानीका देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. तैसैं आसनविशेषकी अपेक्षा नहीं; पृथिवीमैं शवआसनतैं, अथवा सिद्धआसनतैं देहपात होवै, तैसैं सावधान ब्रह्मचिंतन करतेका; अथवा रोगव्याकुल हाहाशब्द पुकारतेका देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. काहेतैं? जिस कालमैं ज्ञानतैं अज्ञान निवृत्त

हुया तिसी कालमैं ज्ञानी मुक्त है. यातैं ज्ञानीकूं विदेहमोक्षमैं देशकाल आसनादिकनकी अपेक्षा नहीं. जैसैं ज्ञानीकूं देहपातमैं देशकालआसनादिकनकी अपेक्षा नहीं, तैसैं ज्ञानके निमित्त श्रवणमैं भी देशकालआसनादिकनकी अपेक्षा नहीं. औ–

उपासककूं देशकालादिकनकी अपेक्षा है. यद्यपि भीष्मादिक ज्ञानी कहे हैं, औ भीष्मने उत्तरायणविना प्राणत्याग किया नहीं, तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष हैं. यातैं उपासकनके उपदेशके वास्ते, तिन्होंने कालविशेषकी प्रतीक्षा करी है. औ वसिष्ठभीष्मादिक अधिकारी हैं; यातैंही उनकूं अनेक जन्म हुये हैं. काहेतैं ? अधिकारी पुरुषनका एक कल्पपर्यंत प्रारब्ध होवै है. कल्पके अंतरविना विदेहमोक्ष होवै नहीं. औ कल्पके भीतर तिनकूं इच्छाबलतैं नानाशरीर होवै हैं. तथापि आत्मस्वरूपविषे तिनकूं जन्ममरणभ्रांति होवै नहीं; यातैं जीवन्मुक्त हैं. तिन अधिकारी पुरुषनका व्यवहार संपूर्ण अन्यके उपदेशनिमित्त है. औ अन्यज्ञानीके व्यवहारमैं कोई नियम नहीं. इस अभिप्रायतैं तत्त्वदृष्टिके देहपातका देशकालआसनादिक कुछ कह्या नहीं.

दोहा.

दूजो शिष्य अदृष्ट तिहीं, गंगातट शुभथान ॥
देश इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान ॥१८॥
शास्त्ररीति ताजि देहकूं, पूरव कह्यो जु राह ॥
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं, पायो अधिक उछाह ॥१९॥

टीकाः--जैसैं ज्ञानीकूं देशकालकी अपेक्षा नहीं, तैसैं विपरीत उपासककूं जाननी. उत्तम देशमैं, उत्तम उत्तरायाण-

दिक कालमैं उपासक शरीर तजै; तब उपासनाका फल होवै है. औ ज्ञानीकूं मरणसमय सावधानतासैं, ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेक्षा नहीं; उपासककूं मरणसमय ध्येयके स्वरूपकी स्मृतिकी अपेक्षा है; जिस ध्येयका पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयकी स्मृति मरणसमय होवै; तब उपासनाका फल होवै है. जैसैं ध्येयकी स्मृति चाहिये, तैसैं ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मार्ग पंचमतरंगमैं कह्या है, ताकीभी स्मृति चाहिये. काहेतैं? मार्गचिंतनभी उपासनाका अंग है, औ ज्ञाननिमित्त श्रवणमैं देशकालआसनकी अपेक्षा नहीं. ध्यानमैं उत्तमदेश, निरंतरकाल, सिद्धादिकआसनकी अपेक्षा है. यातैं अदृष्टकूं उत्तमदेश गंगातीरमैं स्थिति; औ मरणसमयभी योगशास्त्ररीतिसैं देहपात कह्या ॥ १९ ॥

दोहा.

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, लही गुरुमुख उपदेश ॥
अष्टादश प्रस्थान जिन, अवगाहन करि बेस ॥२०॥
जेती वाणी वैखरी, ताको अलं पिछान ॥
हेतु मुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वयनिश्चय ज्ञान ॥ २१ ॥

टीकाः-तर्कदृष्टि नाम तीसरा गुरुद्वारा उपदेशकूं श्रवणकरके, सुने अर्थमैं अन्यशास्त्रनका विरोध दूर करनेकूं सर्वशास्त्रनका अभिप्राय विचारके यह निश्चय कियाः—सकल शास्त्रनका परमप्रयोजन मोक्ष है. मोक्षका साधन ज्ञान है. सो ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप है. भेदनिश्चय यथार्थज्ञान नहीं. सारे शास्त्र साक्षात् अथवा परंपरातैं ब्रह्मज्ञानका हेतु हैं.

यद्यपि संस्कृतवैखरीवाणीके अष्टादश प्रस्थान हैं; तिनमें कोई कर्मकूं प्रतिपादन करै है, कोई विषयसुखके उपायन-

कूं प्रतिपादन करे हैं, कोई ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करै हैं, तैसे ज्ञाननिमित्त जो न्याय सांख्य आदिक शास्त्र हैं, सोभी भेदज्ञानकूंही यथार्थज्ञान कहै हैं; यातैं सर्वकूं अद्वैत ब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं.

तथापि सकलशास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ हुये हैं, औ कृपालु हुये हैं. यातैं तिनके किये मूलसूत्रनका तौ, वेदके अनुसारही अर्थ है. परंतु तिनके व्याख्यानकर्त्ता भ्रांत हुए हैं. मूलसूत्रकारणके अभिप्रायतैं विलक्षण अर्थ किया है. सो वेदसैं विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं, किंतु सर्वशास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है. यह तर्कदृष्टिने उत्तमसंस्कारतैं निश्चय किया.

विद्याके अष्टादश प्रस्थान यह हैं:—चार वेद, चार उपवेद षट् वेदके अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र इस रीतिसैं वैखरीबाणीरूप विद्याके अठारह भेद हैं. तिन्हकूं प्रस्थान कहै हैं.

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद; ये चार वेद हैं. तिनमैं कितनेक वचन ज्ञेयब्रह्मकूं बोधन करैं हैं; कितनेक ध्येयकूं बोधन करै हैं; औ बाकी कर्मकूं बोधन करै हैं. जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं, तिनकाभी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानही प्रयोजन है. औ प्रवृत्तिमैं किसी वेदवचनका अभिप्राय नहीं. किंतु निषिद्धस्वाभाविकप्रवृत्तिसैं रोकनेमैं अभिप्राय है. यातैं अभिचारादिकर्मका प्रतिपादक जो अथर्ववेद है, ताकाभी निवृत्तिमैं तात्पर्य है. जो द्वेषतैं शत्रुमारणमैं प्रवृत्त होवै, तौ गरदानसैं अथवा अग्निदाहसैं शत्रुकूं नहीं मारै; उस वास्ते अभिचारकर्म श्येनयागादिक कहे हैं. शत्रुमारणके निमित्त जो कर्म, सो अभिचार कहिये हैं. ऐसा श्येननाम यज्ञ है. श्येनया-

गका बोधक जो वेदवचन है, ताका यह अर्थ नहीं:--शत्रु-मारणकामनावाला श्येनयागमैं प्रवृत्त होवै; किंतु शत्रुमा-रणकी जाकूं कामना होवै, सो श्येनयागतैं भिन्न जो गर-दानादिक शत्रुमारणके उपाय हैं,तिनमैं प्रवृत्त होवै नहीं.इस रीतिसैं द्वेषतैं प्राप्त जो गरदानादिक,तिनतैं निवृत्तिमैं श्येन-यागबोधकवचनका अभिप्राय है; प्रवृत्तिमैं नहीं. काहेतैं ? प्रवृत्ति द्वेषतैं प्राप्त है. जो अन्यतैं प्राप्त होवै, तामैं वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं.इस रीतिसैं सारे अथर्ववेदका निवृत्तिमैं तात्पर्य है. और तीन वेदनमैं कर्मबोधक वाक्यनका अंतः-करणशुद्धिद्वारा ज्ञानमैं उपयोग स्पष्ट है. तैसैं—

चार उपवेद हैं:--आयुर्वेद १, धनुर्वेद २, गंधर्ववेद ३, और अर्थवेद ४. तिनमैं आयुर्वेदके कर्ता ब्रह्मा,प्रजापति,अ-श्विनीकुमार, धन्वंतरि आदिक हैं. चरक, वाग्भट्टादिक चि-कित्साशास्त्र आयुर्वेद है. औ वात्स्यायनकृत कामशास्त्रभी आयुर्वेदके अंतर्भूत है. काहेतैं ? कामशास्त्रका विषय वाजीक-रण स्तंभनादिकभी, चरकादिकोंने कथन किये हैं.तिस आ-युर्वेदका वैराग्यमैंही अभिप्राय है.काहेतैं ? आयुर्वेदकी रीति-सैं रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेतैंभी, फेरी रोगादिक उत्पन्न होवै हैं. यातैं लौकिक उपाय तुच्छ हैं. इस अर्थमैं आयुर्वे-दका अभिप्राय है. औ औषधदानादिकतैं पुण्य होयके अं-तःकरणकी शुद्धिद्वाराभी ज्ञानमैं उपयोग है. तैसैं--

विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमैं आयुधनिरूपण किये हैं. आ-युध चार प्रकारके हैं:--मुक्त १, अमुक्त २, मुक्तामुक्त ३, औ यंत्रमुक्त ४. चक्रादिक हाथसैं फेकिये, सो मुक्त कहिये हैं. खड्गादिक अमुक्त कहिये हैं. बरछीआदिक मुक्ता-

मुक्त कहिये हैं. शरगोलीआदिक यंत्रमुक्त कहिये हैं. इसरीतिसैं चार प्रकारके आयुध हैं. तिनमैं मुक्त आयुधकूं अस्त्र कहै हैं. अमुक्तकूं शस्त्र कहै हैं. इन चार प्रकारके आयुधनकूं, ब्रह्मा, विष्णु-पशुपति-प्रजापति-अग्नि-वरुण आदिक देवता, मंत्र कहे हैं. क्षत्रियकुमार अधिकारी कहे हैं औ तिनके अनुसारी ब्राह्मणादिकभी अधिकारी कहे हैं. तिनके चार भेद कहे हैं:--पदाति १, रथारूढ २, अश्वारूढ ३, गजारूढ ४. और युद्धमैं शकुन मंगल कहे हैं, इतना अर्थ धनुर्वेदके प्रथमपादमैं कह्या है औ आचार्यका लक्षण तथा आचार्यतैं शास्त्रोंके ग्रहणकी रीति, धनुर्वेदके द्वितीयपादमैं कही है. औ गुरुसंप्रदायतैं प्राप्त हुये शस्त्रोंका अभ्यास तथा मंत्रसिद्धि देवतासिद्धिका प्रकार तृतीयपादमैं कह्या है. सिद्ध हुये मंत्रनका प्रयोग चतुर्थपादमैं कह्या है, इतना अर्थ धनुर्वेदमैं है. सो ब्रह्मा प्रजापति आदिकनतैं विश्वामित्रकूं प्राप्त हुवा है, ताने प्रगट किया है. औ विश्वामित्रतैं धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा. दुष्टचोरादिकनतैं प्रजापालन क्षत्रियका धर्मबोधक धनुर्वेद है. यातैं ताकाभी अंतःकरणशुद्धि करके, ज्ञानद्वारा मोक्षमैंही अभिप्राय है. तैसैं—

गांधर्ववेद भरतने प्रगट किया है, तामैं स्वर, ताल, मूर्छनासहित, गीत, नृत्य, वाद्यका निरूपण विस्तारसैं किया है. देवताका आराधन, निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि, गांधर्ववेदका प्रयोजन कह्या है. यानी ताकाभी अंतःकरणकी एकाग्रता करके ज्ञानद्वारा मोक्षही प्रयोजन है. तैसैं—

अथर्ववेदभी नानाप्रकारका है:--नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्रसैं आदि लेके धनप्राप्तिके उपा-

यबोधक शास्त्र अथर्ववेद कहिये है. धनप्राप्तिके सकल उं-पायनमैं निपुण पुरुषकूंभी भाग्यविना धनकी प्राप्ति होवै न-हीं; यातैं अथर्ववेदकाभी वैराग्यमैंही तात्पर्य है. तैसैं—

चार वेदनके षट् अंग हैं:—शिक्षा १, कल्प २, व्याक-रण ३, निरुक्त ४, ज्योतिषू ५, औ पिंगल ६. ये छह वेदके उपयोगी होनेतैं वेदके अंग कहिये हैं.

तिनमैं शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि है. वेदके शब्दनमैं अ-क्षरोंके स्थानका ज्ञान, औ उदात्त, अनुदात्त, स्वरितका ज्ञान, शिक्षातैं होवै है; वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेक प्रतिशाखा नाम ग्रंथ हैं, सोभी शिक्षाके अंतर्भूत हैं.

तैसैं वेदबोधितकर्मके अनुष्ठानकी रीति, कल्पसूत्रनतैं जानी जावै है. यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण, ऋत्विक् कहिये हैं. तिनके भिन्न भिन्न करनेयोग्य जो कर्म, तिनके प्रकार-के बोधक कल्पसूत्र हैं. तिन कल्पसूत्रनके कर्त्ता कात्यायन आश्वलायनादिक मुनि हैं; यातैं कल्पसूत्रभी वेदके उपयो-गी होनेतैं वेदके अंग है. तैसैं—

व्याकरणतैं वेदके शब्दनकी शुद्धताका ज्ञान होवै है. सो व्याकरण सूत्ररूप अष्टअध्याय पाणिनि नाम मुनिने किया है. कात्यायन औ पतंजलिने तिन सूत्रनके व्याख्यानरूप वार्तिक औ भाष्य किये हैं. और जो व्याकरण हैं, तिनमैं वेदके शब्दनका विचार नहीं; यातैं पुराणादिकनमैं उपयोगी तौ हैं; परंतु वेदके उपयोगी नहीं. औ पाणिनिकृत व्याकरण, वेदके शब्दनकीभी सिद्धि करै है; यातैं वेदका अंग है. तैसैं यास्क नाम मुनिनैं त्रयोदशअध्यायरूप निरुक्त किया है; तहां वेदके मंत्रनमैं अप्रसिद्धपदनके अर्थबोधके निमित्त नाम

निरूपण किये हैं. यातैं वैदिक अप्रसिद्धपदनके अर्थज्ञानमैं उपयोगी होनेतैं निरुक्तभी वेदका अंग है. संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रंथ यास्कने किया है, सोभी निरुक्तके अंतर्भूत है. औ अमरसिंह, हेमाद्रिकनने किये जो संज्ञाके बोधक कोश हैं, सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत हैं. तैसैं--

पिंगलमुनिने सूत्र अष्टअध्यायतैं छंद निरूपण किये हैं; तिनतैं वैदिकगायत्रीआदिक छंदनका ज्ञान होवै है; यातैं पिंगलकृत सूत्रभी वेदके अंग हैं. तैसैं—

आदित्य गर्गादिकृत ज्योतिषूभी वेदका अंग है. काहेतैं ? वैदिककर्मके आरंभमैं कालका ज्ञान चाहिये, सो कालज्ञान ज्योतिष्तैं होवै है; यातैं वेदका अंग है. यह षट् जो वेदके अंग हैं, तिनमैं वेदमैं उपयोगी जो अर्थ नहीं ताका प्रसंगतैं निरूपण किया है, प्रधानतासैं नहीं. यातैं वेदका जो प्रयोजन है, सोई षट्अंगनका प्रयोजन है; पृथक् नहीं.

अष्टादश पुराण व्यास नाम मुनिने किये हैं. तिनके ये नाम हैं:--ब्राह्म १, पाद्म २, वैष्णव ३, शैव ४, भागवत ५, नारदीय ६, मार्कंडेय ७, आग्नेय ८, भाविष्य ९, ब्रह्मवैवर्त १०, लैंग ११, वाराह १२, स्कांद १३, वामन १४, कौर्म १५, मात्स्य १६, गारुड १७, औ ब्रह्मांड १८, ये अष्टादशपुराण व्यासनैं किये हैं. तैसैं कालीपुराणादिक और बहुत हैं; सो उपपुराण हैं. कोई उपपुराणभी अष्टादश कहे हैं, सो नियम नहीं. उपपुराण बहुत हैं. भागवत दो हैं:--एक तौ वैष्णवभागवत है, औ दूसरा भगवतीभागवत है. दोनोंकी समानसंख्या अष्टादशसहस्र है, औ दोनोंके द्वादश स्कंध हैं. परंतु तिनमैं एक पुराण है, दूसरा उपपुराण है. दोनों

व्यासकृत हैं यातैं दोनों प्रमाण हैं. जैसें व्यासने पुराण किये हैं, तैसें उपपुराणभी कोई व्यासने किये हैं. कोई उपपुराण पराशरआदिक अन्य सर्वज्ञ मुनियोंने किये हैं,यातैं उपपुराणभी प्रमाण हैं. जो उपनिषदनका अर्थ है, सोई उपपुराणसहित पुराणका अर्थ है; यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. तैसैं-

पंचअध्यायरूप **न्यायसूत्र** गौतमने किया है. तिनमैं युक्ति प्रधान है. युक्तिचिंतनतैं पुरुषकी बुद्धितीव्र होवै, तब मनन करनेविषे समर्थ होवै है; यातैं युक्तिप्रधान **न्यायसूत्र**नकाभी मननद्वारा वेदांतजन्य ज्ञानही फल है. औ कणाद नाम मुनिने दश अध्यायरूप **वैशेपिकसूत्र** किये हैं; तिनकाभी न्यायमैं अंतर्भाव है. तैसैं—

मीमांसाके दो भेद हैंः—एक धर्ममीमांसा, औ दूसरी ब्रह्ममीमांसा. धर्ममीमांसाकूं पूर्वमीमांसा कहै हैं, औ ब्रह्ममीमांसाकूं उत्तरमीमांसा कहै हैं. धर्ममीमांसाके द्वादशअध्याय हैं, जैमिनी नाम ताका कर्त्ता है. कर्मअनुष्ठानकी रीति तामैं प्रतिप्रादन करी है. यातैं विधिसैं कर्ममैं प्रवृत्ति, धर्ममीमांसाका फल है. कर्ममैं प्रवृत्तिसैं अंतःकरणशुद्धि, तासैं ज्ञान औ ज्ञानतैं मोक्ष. इस रीतिसैं धर्ममीमांसाका मोक्ष फल है. औ धर्ममीमांसाके द्वादशअध्यायनमैं, आपसमैं अर्थका भेद है सौ कठिन है; यातैं लिख्या नहीं. औ संकर्षणकांड पंचअध्यायरूप जैमिनिने किया है, ताके विषे उपासना कही है. ताकाभी धर्ममीमांसामें अंतर्भाव है. तैसैं----

ब्रह्ममीमांसाके चार अध्याय हैं, ताका कर्त्ता व्यास हैं. एक एक अध्यायके चार चार पाद हैं. तहां प्रथमअध्यायमैं यह अर्थ हैः—सारे उपनिषद्वाक्य, ब्रह्मकूं प्रतिपादन

करै हैं, अन्यकूं नहीं. औ उपनिषद्वाक्यनका मंदबुद्धि पुरुषनकूं आपसमैं विरोध प्रतीत होवै है; ताका परिहार द्वितीयअध्यायमैं कह्या है. औ ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीयअध्यायमैं कह्या है. ज्ञानउपासनाका फल चतुर्थअध्यायमैं कह्या है. यह ब्रह्ममीमांसारूप शारीरकशास्त्रही सर्वशास्त्रनमैं प्रधान है. मुमुक्षुकूं यही उपादेय है. ताके व्याख्यानरूप ग्रंथ यद्यपि नाना हैं, तथापि श्रीशंकराचार्यकृत भाष्यरूप व्याख्यानही मुमुक्षुकूं श्रोतव्य है. ताका ज्ञानद्वारा मोक्षफल स्पष्टही है. तैसैं--

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, शंखलिखित, हारीत, आपस्तंब, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद, इत्यादिक सर्वज्ञ हुये हैं. तिन्होंने वेदके अनुसार स्मृति नाम ग्रंथ किये हैं, सो धर्मशास्त्र कहिये हैं. तिनमैं वर्णआश्रमके कायिक, वाचिक व मानसिक धर्म कहे हैं; तिनकाभी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान होयके मोक्षही प्रयोजन है. तैसैं व्यासने महाभारत, औ वाल्मीकिने रामायण किया है; तिनकाभी धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है, औ देवताआराधनके निमित्त जो मंत्रशास्त्र है, ताकाभी धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है. देवताआराधनका अंतःकरणशुद्धि प्रयोजन है. तैसैं सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, वैष्णवतंत्र, शैवतंत्रादिकभी धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं. काहेतैं ? इनमैंभी मानसधर्मका निरूपण है. तहां—

सांख्यशास्त्र षट्अध्यायरूप कपिलने किया है. ताके प्रथमअध्यायमैं विषय निरूपण किये हैं. द्वितीयअध्यायमैं महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रधानके कार्य कहे हैं. तृतीयअध्या-

यमैं विषय वैराग्य कह्या है. चौथे अध्यायमैं विरक्तोंकी आख्यायिका कही. पंचम अध्यायमैं परपक्षका खंडन कह्या है. छठे अध्यायमैं सारे अर्थका संक्षेपतैं संग्रह किया है. प्रकृतिपुरुषके विवेकतैं पुरुषका असंगज्ञान सांख्यशास्त्रका प्रयोजन है. ताकाभी त्वंपदके लक्ष्य अर्थ शोधनद्वारा महावाक्यजन्य ज्ञानमैं उपयोग होनेतैं, मोक्षही फल है. तैसैं-

योगशास्त्र चारपादरूप है. पतंजलि ताका कर्त्ता है. सो पतंजलि शेषका अवतार है. एक ऋषि संध्याउपासन करे था, ताकी अंजलिमैं प्रगट होयके पृथिवीमैं पड्या है; यातैं पतंजलि नाम कहिये है. ताने शरीरका रोगरूपी मल दूर करनेके वास्ते चिकित्साग्रंथ किया है. औ अशुद्धशब्दका उच्चारणरूपी जो वाणीका मल है, ताके नाशकूं पाणिनीयव्याकरणका भाष्य किया है. तैसैं विक्षेपरूप अंतःकरणका मल है, ताके नाशकूं योगसूत्र किये हैं. तहां प्रथमपादमैं चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि, औ ताके साधन अभ्यासवैराग्यदिक कहे हैं. तैसैं विक्षिप्तचित्तकूं समाधिके साधन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, औ समाधि; ये आठ समाधिके अंग द्वितीयपादमैं कहे हैं. तृतीयपादमैं योगकी विभूति कही है; चतुर्थपादमैं योगका फल मोक्ष कह्या है. इस रीतिसैं योगशास्त्रभी ज्ञानसाधन, निदिध्यासनकूं संपादनद्वारा मोक्षका हेतु है. औ शारीरकसूत्रनमैं जो सांख्ययोगका खंडन किया है, सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषदसैं विरुद्ध किये हैं; तिनका खंडन किया है; सूत्रनका नहीं. तैसैं—

न्यायवैशेषिकका खंडनभी विरुद्धव्याख्यानका है. तैसैं नारद पंचरात्र नाम तंत्र किया है, तामैं वासुदेवमैं अंतः-

करण स्थापन कह्या है; ताकाभी अंतःकरणकी स्थिरतासैं ज्ञानद्वारा मोक्षही फल है. सारे वैष्णवग्रंथ पंचरात्रके अंतर्भूत हैं. सो पंचरात्र धर्मशास्त्रके अंतर्भूत है. तैसैं पाशुपततंत्रमैं पशुपतिका आराधन कह्या है; ताका कर्ता पशुपति है. ताकाभी अंतःकरणकी निश्चलताद्वारा मोक्षसाधन ज्ञान फल है. और-

जो शैवग्रंथ हैं, सो सारे पाशुपततंत्रके अंतर्भूत हैं. तैसैं गणेश, सूर्य, देवीकी उपासनाबोधक ग्रंथनका चित्तकी निश्चलताद्वारा ज्ञान फल है, औ सर्वका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. परंतु—

देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथमैं दो संप्रदाय हैं:—एक दक्षिणसंप्रदाय, औ दूसरा उत्तरसंप्रदाय है. उत्तरसंप्रदायकूं वाम मार्ग कहै हैं. तिनमैं दक्षिणसंप्रदायकी रीतिसैं जिन ग्रंथनमैं देवीकी उपासना है, सो तौ धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं. औ वाममार्ग जिन ग्रंथनमैं है, सो धर्मशास्त्रसैं विरुद्ध हैं; यातैं अप्रमाण है. यद्यपि वामतंत्र शिवने किया है, तथापि सकलशास्त्र औ वेदसैं विरुद्ध है; यातैं प्रमाण नहीं. जैसैं विष्णुके बुद्धअवतारने नास्तिकग्रंथ किये हैं, सो वेदविरुद्ध हैं, यातैं प्रमाण नहीं, तैसैं शिवकृतवामतंत्रभी अत्यंतविरुद्ध हैं मदिरादिक अत्यंत अशुद्धपदार्थनका तामें ग्रहण लिख्या है. औ उत्तमपदार्थनके जो नाम हैं, सोई मलिनपदार्थनके नाम लोकवंचनके निमित्त कहे हैं. मदिराका नाम तीर्थ, मांसका नाम शुद्ध, मदिरापात्रका नाम पद्मा; प्याजका नाम व्यास, लहसुनका नाम शुकदेव, मदिरीकारी कलालका नाम दीक्षित कहै हैं. तैसैं वेश्यासेवी चर्मकारी आदिक चांडालीसेवी आदिककूं प्रयागसेवी काशीसेवी कहै हैं. औ भैरवीचक्रमें स्थित

जो चांडालादिक हैं, तिनकूं ब्राह्मण कहै हैं. औ अत्यंतव्यभिचारिणीकीकूं योगिनी, औ व्यभिचारीकूं योगी कहै हैं. ऐसें अनेकप्रकारसें निषिद्ध तिनका व्यवहार है. पूजनके समय अनेक दोषवती स्त्रीकूं उत्तमशक्ति कहै हैं. जातिका चांडाली अतिव्यभिचारिणी, रजस्वला स्त्रीकूं देवीबुद्धिसें पूजन करै हैं. ताका उच्छिष्टमदिरापान करै हैं औ अधिकमदिरापानसें जो वमन करि देवै, ताकूं पृथ्वीमें नहीं गिरने देवै हैं; किंतु आचार्यसहित दूसरे सावधान भक्षण करै हैं! वमनकू भैरवी कहै हैं. औ स्त्रीकी योनिमें जिह्वा लगायके मंत्रनका जप करै हैं. मदिरा १, मांस २, मत्स्य ३, मुद्रा ४,और मंत्र ५; इन पंच मकारकूं भोगमोक्षनिमित्त सेवन करै हैं. प्रथमा द्वितीयादिक तिन मकारके अप्रासिद्ध नामनतैं व्यवहार करै हैं. इसतैं आदि लेके वामतंत्रका सकल व्यवहार इस लोकतैं औ परलोकतैं भ्रष्ट करै है. इसी कारणतैं कर्णछेदी योगी औ अवधूतगुसांई तैसें अनेक संन्यासी औ ब्राह्मणादिक वाममार्गकूं सेवन करै हैं, तौभी लोकवेदनिंदित जानके गुप्त राखै हैं. अधिक क्या कहैं ? वामतंत्रकी रीति सुनके, म्लेच्छकेभी रोमांच होय जावैं. ऐसा निंदित वामतंत्र है. सर्वंगी जो अभक्षण करै है, सो सारे निंदितमार्ग वामतंत्रमैं कहे हैं.अतिनीच व्यवहार लिखनेयोग्य नहीं; यातैं विशेषप्रकार लिख्या नहीं. सर्वथा वामतंत्र त्यागनेयोग्य है.

तैसें नास्तिकनके षट् भेद हैः—माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रांतिक ३, वैभाषिक ४, चार्वाक ५, औ दिगंबर ६. ये छह वेदकूं प्रमाण नहीं मानते हैं. तिनका आपसमैं विलक्षण सिद्धांत है. माध्यमिक शून्यवादी है. योगाचारके

मतमैं सारे पदार्थ विज्ञानसैं भिन्न नहीं; विज्ञानही तत्त्व है; सो विज्ञान क्षणिक है. सौत्रांतिकमतमैं विज्ञानका आकार बाह्यपदार्थविषयविना होवै नहीं; यातैं विज्ञानतैं बाह्यपदार्थनका अनुमान होवै है. इस रीतिसैं सौत्रांतिकमतमैं अनुमानप्रमाणके विषय बाह्य पदार्थ है; प्रत्यक्ष नहीं, और स्थिर नहीं. किंतु सारे पदार्थ क्षणिक हैं. औ वैभाषिकमतमैं बाह्यपदार्थ क्षणिक तौ हैं; परंतु प्रत्यक्षप्रमाणके विषय हैं; इतना भेद है. ये चारमत सुगतकें हैं. चार्वाकमतमैं पदार्थ क्षणिक नहीं, परंतु तिसके मतमैं देह आत्मा है. औ दिगंबरमतमैं देह आत्मा नहीं, देहसैं आत्मा भिन्न है. परंतु जितना देहका परिमाण होवै है, उतना आत्माका परिमाण है. इस रीतिसैं इनका आपसमैं मतका भेद है. औरभी इनकी आपसमैं मतकी विलक्षणता बहुत है, परंतु सारे वेदके विरोधी हैं; यातैं नास्तिक हैं. इसी कारणतैं तिनके मतका उपपादन औ खंडन विशेष करके लिखा नहीं. इस रीतिसैं——

वाममार्ग औ नास्तिकमतनके ग्रंथ यद्यपि संस्कृतवाणीरूप हैं, तथापि वेदबाह्य हैं; यातैं वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादशही हैं. और मम्मटआदिकने जो साहित्यग्रंथ किये हैं; तिनकाभी कामशास्त्रमें अंतर्भाव है. तैसैं सकलकाव्यनकाभी किसीका कामशास्त्रमैं, औ किसीका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. इस रीतिसैं अष्टादशविद्याके प्रस्थान सारे ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु हैं. कोई साक्षात्ज्ञानका हेतु है, कोई परंपरातैं ज्ञानका हेतु है. यह तर्कदृष्टिने सकलशास्त्रनका सभिप्राय निश्चय किया. यद्यपि उत्तरमीमांसाविना सारे शास्त्र जिज्ञासुकूं हेय हैं, यह

शारीरकमैं सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है. यातैं अन्यशास्त्रभी मोक्षके उपयोगी हैं. यह कहना संभवै नहीं तथापि सारग्राही दृष्टिसैं तर्कदृष्टिने यह सार निश्चय किया.

दोहा ।

सुनि प्रसिद्ध विद्वान पुनि, मिल्यो आप तिहिं जाय ।
निश्चय अपनो ताहि तिहिं, दीनो सकल सुनाय ॥२२॥

टीकाः—गुरुद्वारा सुने अर्थमैं बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त सकलशास्त्र अभिप्राय विच्यार्‍या; तौभी फेर संदेह हुवाः- जो शास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है, अथवा अन्य अभिप्राय है ? काहेतैं ? तर्कदृष्टि कनिष्ठअधिकारी कह्या है; यातैं वारंवार कुतर्कतैं संदेह होवै है. ताकी निवृत्तिके वास्ते अन्याविद्वान्‌के निश्चयतैं अपने निश्चयकी एकता करनेकूं गया.

दोहा ।

तर्कदृष्टिके वैन सुनि, सो वोल्यो बुध संत ।
जो मोसूं तैं यह कह्यो, सोइ मुख्यसिद्धंत ॥ २३ ॥
संशय सकल नशाय यूं, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष ।
जग जान्यो जिन सव असत, तैसैं वंधऽरु मोक्ष ॥२४॥
शेष रह्यो प्रारब्ध यूं, इच्छा उपजी येह ॥
चलि तत्कालहि देखिये, जननिजनकयुत गेह ॥२५॥

टीकाः— " ज्ञानीका सकलव्यवहार अज्ञानीकी नाईं प्रारब्धसैं होवै है " यह पूर्व कहा है; यातैं इच्छा संभवै है,

औ कहूं शास्त्रमैं ऐसा लिख्या है;—ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं. ताका यह अभिप्राय नहीं ज्ञानीका अंतःकरण पदार्थकी इच्छारूप परिणामकूं प्राप्त होवै नहीं. काहेतैं ? अंतःकरणके इच्छादिक सहजधर्म हैं. औ अंतःकरण यद्यपि भूतनके सत्त्वगुणका कार्य कह्या है, तथापि रजोगुणतमोगुणसहित सत्त्वगुणका कार्य है; केवल सत्त्वगुणका नहीं. केवल सत्त्वगुणका कार्य होवै, तौ चलस्वभाव अंतःकरणका नहीं हुवा चाहिये. तैसैं राजसीवृत्ति कामक्रोधादिक औ मूढतादिक तामसीवृत्ति, किसी अंतःकरणकी नहीं हुई चाहिये. यातैं केवल सत्त्वगुणका अंतःकरण कार्य नहीं, किंतु अप्रधान रजोगुणतमोगुणसहित प्रधानसत्त्वगुणवाले भूतनतैं अंतःकरण उपजै है. यातैं अंतःकरणमैं तीनों गुण रहे हैं. सो तीनों गुणभी पुरुषनके जितने अंतःकरण हैं, तिनमैं सम नहीं;किंतु न्यून अधिक हैं. यातैं गुणोंकी न्यूनता अधिकतासैं सर्वके विलक्षणस्वभाव हैं. इस रीतिसैं तीनूं गुणोंका कार्य अंतःकरण है.

जितने अंतःकरण रहैं, उतने रजोगुणका परिणामरूप इच्छाका अभाव बनै नहीं. यातैं ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं. ताका यह अभिप्राय है:—अज्ञानी औ ज्ञानी दोनोंकूं इच्छा तौ समान होवै है, परंतु अज्ञानी तौ इच्छादिक आत्माके धर्म जानै है; औ ज्ञानीकूं जिस कालमैं इच्छादिक होवै है, तिस कालमैंभी आत्माके धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं. किंतु काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष, श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक अंतःकरणके परिणाम हैं; यातैं अंतःकरणके धर्म जानै हैं. इस रीतिसैं इच्छादिक होवैभी हैं. आत्माके

धर्म इच्छादिक ज्ञानीकूं प्रतीत होवैं नहीं. यातैं ज्ञानीसैं इच्छाका अभाव कह्या है. तैसैं मन बानी तनसैं जो व्यवहार ज्ञानी करै, सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं. किंतु सारी क्रिया मन-बानी-तनमैं है. औ "आत्मा असंग है," यह ज्ञानीका निश्चय है. यातैं सर्वव्यवहारकर्त्ताभी ज्ञानी अकर्ता है, इसी कारणतैं श्रुतिमैं यह कह्या है:-"ज्ञानतैं उत्तर किये जो वर्तमानशरीरमैं शुभअशुभकर्म, तिनके फल पुण्यपापका संबंध होवै नहीं." प्रारब्धबलतैं अज्ञानीकी नाईं सर्वव्यवहार, औ ताकी इच्छा संभवै है.

शुभसंतति नाम राजाकूं त्यागके तीनों पुत्र निकसे; तहां पुत्रकी कथा कही. अब पिताका प्रसंग कहे हैं:—

दोहा ।

पुत्र गये लखि गेहतैं, पितुचित उपज्यो खेद ॥
सूनो राज न तिन तज्यो, नहीं यथार्थनिर्वेद ॥३६॥

टीकाः—पुत्र गृहतैं निकसे, तब राजाकूं तीव्रवैराग्यके अभावतैं तिनके वियोगका दुःख हुवा. तैसैं मंदवैराग्य हुवा है, यातैं विषयभोगका सुख होवै नहीं. औ बाहर निकसनेकी इच्छा करी, सो पुत्रनके निकसनेतैं सूना राज छोड़ सका नहीं; यातैंभी दुःख हुवा. जो तीव्र वैराग्य होता तो सूना राजभी त्याग देता; सो वैराग्य तीव्र हुवा नहीं; किंतु मंद हुवा है, यातैं त्याग सकै नहीं. औ भोगनमें आसक्ति नहीं, यातैं उभयथा खेदही है. यथार्थनिर्वेद कहिये तीव्रवैराग्य नहीं. मंदवैराग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहे हैं:—

चौपाई ।

शुभसंतति पितु सों बड़भागा ।
भयो प्रथम तिहिं मंदविरागा ॥
जिज्ञासा उपजी यह ताकूं ।
देव ध्येय[1] को ध्याऊं जाकूं ? ॥ २७ ॥

पंडित निर्णय करन बुलाये ।
यथायोग्य आसन वैठाये ॥
प्रश्न कियो यह सबके आगै ।
अस को देव न सोवे जागै ? ॥ २८ ॥

पुरुषारथहित जन जिहि जाचै ।
भक्तिमानके मनमें राचै ॥
सुनि यह पृथिवीपातिकी[2] वानी ।
इक तिनमें बोल्यो सुज्ञानी ॥ २९ ॥

सुन राजा तुहि कहूँ सु देवा ।
शिव विरंचि लागे जिहि सेवा ॥
शंखचक्रधारी हितकारी ।
पद्मगदाधर परउपकारी ॥ ३० ॥

मंगलमूर्त्ती विष्णु कृपालु ।
निजसेवक लखि करत निहालु ॥
शक्ति गणेश सूर शिव जे हैं ।
सब आज्ञा ताकी में ते हैं ॥ ३१ ॥

---

१ ध्यान करनेयोग्य. २ राजा शुभसन्ततिकी वाणी.

भारत सकल ग्रंथ यह भाखै ।
पद्मपुराण तापनी आखै ॥

टीकाः—तापनी कहिये नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी, उपनिषद.

चौपाई.

विष्णुरूपतैं उपजत सबहीं ।
परै भीर जाचैं तिहि तबहीं ॥ ३२ ॥

विविध वेषको धरि अवतारा ।
सब देवनकूं देत सहारा ॥
यातैं ताकी कीजे पूजा ।
विष्णुसमान सेव्य[1] नहिं दूजा ॥ ३३ ॥

विष्णुभक्त शिव उत्तम कहिये ।
तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये ॥
रूप अमंगल शिवको शवसम ।
ध्यान करै नहिं ताको यूं हम ॥ ३४ ॥

शव कहिये मुरदा, ताके सम अमंगल.

चौपाई.

राख डमरु गजचर्म[2] कपाला[3] ।
धरै आज किहिं करै निहाला ॥
ताको पूत गनेशहु तैसो ।
रूप विलक्षण नरपशुजैसो[4] ॥ ३५ ॥

---

१ सेवा करनेयोग्य. २ हाथीकी खाल. ३ खप्पर. ४ मनुष्य पशुके समान अर्थात हाथी और मनुष्य समान.

शठ हठतैं ध्यावत जो देवी ।
तामस रूप धरत तिहिं सेवी ॥
तिय निंदित अशुची न पवित्रा ।
अवगुण गिने न जात विचित्रा ॥ ३६ ॥

कपटकूटको आकर कहिये ।
पराधीन निजतंत्र न लहिये ॥
ऐसो रूप जु चहिये जाकूं ।
सो सेवहु नर खरतम ताकूं ॥ ३७ ॥

भ्रमत फिरै निशिदिन यह भानू ।
रहत न निश्चल छन इक थानू ॥
भ्रमतो फिरै उपासक ताको ।
तिहिसमान सेवक जो जाको ॥ ३८ ॥

आनदेव यातें सब त्यागै ।
सेवनीय इक हरि नित जागै ॥
पूजन ध्यान करन विधि जो है ।
नारदपंचरात्रमें सो है ॥ ३९ ॥

टीकाः—विष्णुकूं त्यागके प्रसिद्ध जो चार उपासना हैं, तिन एकएकका निषेध कियेतैंभी, स्मार्तउपासनाकाभी निषेध किया. काहेतैं ? पांचों देवनकूं समबुद्धिकरके उपासै, ताकूं स्मार्त्तउपासना कहै हैं, शिवआदिक चारदेवनकूं विष्णुकी समता निषेधनेतैं, स्मार्त्तउपानाका निषेधभी अर्थसैं किया है.

चौपाई.

शिवसेवक सुनि सुनि तिहि बैना ।

क्रोधसहित बोल्यो चंलनैना[1] ॥
सुन राजन बानी इक मोरी ।
जामैं वचन प्रमाण करोरी ॥ ४० ॥

शम्भुसमान आन को कहिये ।
मांगे देत जाहि जो चहिये ॥
सब विभूति हरिकूं दै माँगी ॥
धरत विभूति आप नित त्यागी ॥ ४१ ॥

चर्म कपाल हेतु इहि धारैं ।
सम नहिं उत्तम अधम विचारैं ॥
नग्न रहत उपदेशत येही ।
नहिं विरामसम सुख व्है केही ॥ ४२ ॥

टीकाः—वैष्णवने चर्मकपालादिक निंदित वस्तुका धारण आक्षेप किया, ताका यह समाधान हैः—महादेवकूं सर्व पदार्थनमैं समबुद्धि है. द्वितीयपादका अन्वय यह हैः— सम विचारै, उत्तम अधम नहीं विचारै.

चौपाई.

सदावर्त ऐसो दे भारी ।
काशीपुरी मरे नर नारी ॥
सो सायुज्यमुक्तिकूं जावै ।
गर्भवाससंकट नहिं पावै ॥ ४३ ॥

---

१ चंचल नेत्र करके.

शिवसमान नर नारी ते सब ।
लहत सु दिव्यभोग सगरे तब ॥
करत आप अद्वयंउपदेशा ।
तजत लिंग यूं ब्रह्मप्रवेशा ॥ ४४ ॥
ऊंच नीच रंचहु नहिं देखैं ।
मुक्ति सबनकूं दे इक लेखै ॥
शिवसमान राजन को दाता ।
भक्त अभक्त सबनके त्राता ॥ ४५ ॥
विष्णुस्वभाव सुन्यो हम ऐसो ।
जगमें जन प्राकृत व्है तैसो ॥
त्राता भक्त अभक्त न त्राता ।
यह प्रसिद्ध सब जगमें नाता ॥ ४६ ॥
हरि सेवक हर सेव्य बखान्यो ।
रामचंद्र रामेश्वर मान्यो ॥
स्कंदपुराण व्यास बहु भाख्यो ।
हरि सेवक हर सेव्यहि राख्यो ॥ ४७ ॥
कह्यो जु भारत पद्मपुराणा ।
सब देवनतैं हरि अधिकाना ॥
भारततातपर्य नहिं देख्यो ।
जो अप्पयदीक्षित बुध लेख्यो ॥ ४८ ॥

टीका:--वैष्णवने यह कह्या:-"भारतादिक ग्रंथनमैं, विष्णु सर्व देवनका पूज्य कह्या है," सो बनै नहीं. काहेतैं ?

---

१ अद्वितीय ब्रह्मका उपदेश.

भारतग्रंथका तात्पर्य देखेतैं शिवकूंही ईश्वरता प्रतीत होवै है; यह अप्पयदीक्षित नाम विद्वान्ने, सकलपुराण इतिहासका तात्पर्य लिख्या है. तहां भारतमैं यह प्रसंग हैः--अश्वत्थामाने नारायणअस्त्र औ आग्नेयअस्त्रका प्रयोग किया, तब बहुत सेनाका तौ संहारभी हुआ; परंतु पांच पांडवोंमें कोई मऱ्या नहीं; तब रथकूं त्यागके धनुर्वेद औ आचार्यकूं धिक्कार करता बनकूं चल्या, तहां व्यासभगवान् ताकूं मिले औ यह कह्याः--"हे ब्राह्मण! तूं आचार्य औ वेदकूं धिक्कार मत कहो, यह अर्जुन कृष्ण दोनों नरनारायणरूप हैं. इन्होंने शिवका पूजन बहुत किया है. यातैं इनकी भक्तिके आधीन हुवा त्रिशूली महादेव, इनके रथके आगे रहै हैं. यातैं इन दोनोंके ऊपर प्रयोग किये अनेक शस्त्रअस्त्रनकी सामर्थ्यकूं महादेव नाश करदेवे हैं." इस भारतप्रसंगतैं नारायणरूप कृष्णकी विभूति महादेवकी कृपातैं उपजी है; यह सिद्ध होवै है. यातैं विष्णुचरितके प्रतिपादक जो ग्रंथ हैं, सो शिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन करै हैं. काहतैं? तिन ग्रंथनमैं विष्णु सेव्य कह्या है, सो विष्णु भारतप्रसंगतैं शिवका भक्त है. यातैं जिस शिवकी भक्तितैं विष्णु सेव्य होवै है सो शिवही परमसेव्य है. इस रीतिसैं अप्पयदीक्षितने सकलवैष्णवग्रंथनका प्रतिपाद्य शिव कह्या है.

चौपाई.

शिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो ।
भक्तनमें उत्तम हरि गान्यो ॥
ईश देव पद सबमें कहिये ।
महतसहित इक शिवमें लहिये ॥ ४९ ॥

टीकाः—महादेव, महेश शिवकूं कहै हैं. औरनकूं देव ईश कहै हैं.

चौपाई.

शिवते भिन्न अशिव जो कहिये ।
तिहिं तजि शिव कल्याणहि लहिये ॥
जलशायी जिहि नाम बखान्यो ।
सो जागै यह मिथ्या गान्यो ॥ ५० ॥

टीकाः—कल्याणकूं शिव कहै हैं—तातैं भिन्न अशिव है. ताका यह अर्थ सिद्ध हुआः—शिवतैं भिन्न और देवता अशिव कहिये अकल्याणरूप हैं. तिन अकल्याणरूप देवतानकूं त्यागके कल्याणरूप शिवकूं उपासै.

चौपाई.

विष[1] लख जब सबकूं उपज्यो डर ।
निर्भय किये सकल गर[2] धरि गर[3] ॥
जाको पूत गणेश कहावै ।
विघ्नजाल[4] तत्काल नशावै ॥ ५१ ॥

कारजमैं कारणगुण होवै ।
यूं शिव विघ्न मूलतें[5] खोवै ॥
जन्ममरणदुख विघ्न कहावै ।
तिहिं समूल शिवध्यान नशावै ॥ ५२ ॥

---

१ समुद्रमंथनसे उत्पन्न कालकूटविष. २ कण्ठमें. ३ विष. ४ विघ्नोंके समूह. ५ जडसहित.

सेवनयोग्य सदाशिव एका ।
जागैं सहित समाधि विवेका ॥
तंत्र पाशुपत रीति जु गावै ।
त्यों पूजन करि ध्यान लगावै ॥ ५३ ॥

नारदपंचरात्रमत झूठो ।
यह परिमलपरसंग अनूठो ॥
यातैं शिवसेवा चित लावै ।
पुरुषारथ जो चहै सु पावै ॥ ५४ ॥

टीकाः—नारदपंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमैं खंडन किया है. ताके अनुसारी रामानुजआदिक नवीन वैष्णवनका मत कल्पतरुकी टीका परिमलमें खंडन किया है.

चौपाई.

शिवको पूत गणेश बतायो ।
कारणगुण कारजमैं गायो ॥
सुनि गणेशको पूजक बोल्यो ।
अस किय कोप सिंहासन डोल्यो ॥ ५५ ॥

राजन सुन दोनों ये झूठे ।
वचन सत्यसम कहत अनूठे ॥
शिवको पूत गणेश बतावै ।
पराधीनता तामैं गावै ॥ ५६ ॥

कहूं प्रसंग सुनहु इक ऐसो ।
लिख्यो व्यासभगवत मुनि जैसो ॥

चढ़े त्रिपुर मारनकूं सारे ।
हरिहरसहित देव अधिकारे ॥ ५७ ॥

नहिं गणेशको पूजन कीनो ।
त्रिपुर न रंचहु तिनतें छीनो ॥
पुनि पछिताय मनाय गणेशा
त्रिपुर विनाश्यो रह्यो न लेशा ॥ ५८ ॥

भये समर्थ किये जिहिं पूजा ।
सेवनयोग्य सु इक नहिं दूजा ॥
रामपूत दशरथको जैसे ।
विघ्नहरण शिवको सुत तैसे ॥ ५९ ॥

व्यास गणेशपुराण वनायो ।
सबको हेतु गणेश बतायो ॥
हरि हर विधि रवि शक्तिसमेता ।
तुंडीतैं[1] उपजत सब तेता ॥ ६० ॥

करत ध्यान जिहि छन जन मनमें ।
नाशत विघ्न प्रधान[2] गननमें ॥
विघ्नहरण यूं जागत निशि दिन ।
भक्तिसहित सेवहु तिहि अनछन ॥ ६१ ॥

हेतु गणेश शक्तिको सुनिकै ।
भगत भागवत उचर्‌यो गुणिकै ॥
सुन राजन वानी मम सांची ।
तीनों सकल कहत ये काची ॥ ६२ ॥

---

१ गणेशजीसे. २ मुख्य.

टीका:—भगतभागवत कहिये भगवतीको भगत.

चौपाई.

सूने देव शक्तिविन सारे ।
मृतकदेहसम लखि हत्यारे ॥
शक्तिहीन असमर्थ कहावे ।
सो कैसे कारज उपजावे ॥ ६३ ॥

जिन बहु शक्तिउपासनधारी ।
ताते भये सकल अधिकारी ॥
हरि हर सूरे[1] गणेश प्रधाना ।
तिनमें शक्ति देखियत नाना ॥ ६४ ॥

शक्ति लोकमें भाषत जाकूं ।
रूप भगवतीको लखि ताकूं ॥

टीका:—भगवतीके दो रूप हैं:—एक सामान्य औ दूसरा विशेष. सर्वपदार्थनमैं अपना कार्य करनेकी जो सामर्थ्यरूप शक्ति सो भगवतीका सामान्यरूप है, औ अष्टभुजादिकसहित मूर्ति विशेषरूप है. सामान्यरूप शक्तिके संख्यारहित अनंत अंश हैं. जामैं शक्तिके न्यून अंश होवैं सो अल्पशक्ति होवै है; असमर्थ कहिये है. जामैं शक्तिके अधिक अंश होवैं, सो समर्थ कहिये है. विष्णु शिवआदिकनमैं शक्तिके अंश अधिक हैं, यातैं अधिकसमर्थ कहिये हैं. इस रीतिसैं भगवतीका सामान्यरूप जो शक्ति, ताके अंशनकी

---

१ सूर्यनारायण.

अधिकतासैं विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है औ शक्तिसैं रहित होवै तौ जैसे प्राणबिना शरीर अमंगलरूप होवै है, तैसैं सारे देव हत्यारे कहिये अमंगलरूप होय जावैं. यातैं जिस शक्तिकी अधिकतासैं देवनकी महिमा प्रसिद्ध है, सो महिमा शक्तिकी है; तिन देवनकी नहीं. विष्णु शिवआदिकनने भगवतीके सामान्यरूप शक्तिकी अधिक उपासना करी है; यातैं तिनमैं शक्तिके अधिक अंश हैं. यह पूर्वग्रंथनमैं भगवतीभक्तका अभिप्राय है.

जैसैं भगवतीके निराकाररूप शक्तिके अनंत अंश हैं, तैसैं साकाररूपकेभी अनंत अंश हैं. तिन साकार अंशनमैं कालीरूप प्रधान है. औ माहेश्वरी, वैष्णवी, सौरी, गणेशी आदिकभी प्रधान अंश हैं. विष्णुकूं भगवतीकी उपासनातैं वैष्णवी नाम भगवतीके अंशका लाभ हुआ तैसैं अन्यदेवनकूं भगवतीकी उपासनातैं निजनिज माहेश्वरीआदिक अंशनका लाभ हुआ है. तिनमैंभी भगवतीके विष्णु शिव दोनों प्रधान भक्त हैं. काहेतैं ? ध्याताकूं ध्येयरूपकी प्राप्ति उपासनाकी परम अवधि है. विष्णुशिवकूं उपासनासैं ध्येयरूपकी प्राप्ति हुई है; यातैं प्रधान उपासक हैं. यह अढाई चौपाईतैं प्रतिपादन करै हैं:—

चौपाई.

लाख करोरि मातृकागण पुनि ।
तंत्रग्रंथ लखि अंश सकल गुनि ॥ ६५ ॥
काली ताको अंश प्रधाना ।
माहेश्वरी आदि लखि नाना ॥

हरि हर ब्रह्म सकल तिहिं ध्यावें ।
निज निज अंश कृपा तिहिं पावें ॥ ६६ ॥
ध्येयरूप ध्याता व्है जबहीं ॥
सिद्ध उपासन लखिये तबहीं ॥
अंश उपासन हरि अरु हरकी ।
नारीमूर्ति धरी तजि नरकी ॥ ६७ ॥

दोहा ।

अमृतमथनपरसंगमें, हरि मोहिनीस्वरूप ।
अर्धअंग शिवको लसै, देवीरूप अनूप ॥ ६८ ॥

टीकाः--मंथन करके अमृत प्रकट किया, तब सुर असुरोंका विवाद मेटनेमैं विष्णु असमर्थ हुए; तब अपने उपास्यरूप भगवतीका ऐसा एकाग्रचित्तसैं ध्यान किया, जातैं आप विष्णु उपास्यरूपकूं प्राप्त हुए. ता रूपके माहात्म्यसैं असुरभी ताके अनुकूल हुये. तैसैं शिवनेभी समाधिमैं ऐसा भगवतीका ध्यान किया, जातैं अर्धविग्रह शिवका उपास्यरूप हुवा. कदाचित् विक्षेपतैं समाधिका अभाव होवै है, यातैं सारा विग्रह शिवका उपास्यरूप नहीं ॥६८॥ इस रीतिसैं सारे देव भगवतीके उपासक हैं. सो उपासना दो रीतिसैं कही है, दक्षिणआम्नायतैं और उत्तरआम्नायतैं. पूर्व दक्षिणआम्नाय कह्या, आगे उत्तरआम्नाय कहै हैं:--

चौपाई.

भक्त भगवतीके हर हरि हैं ।
इनसम कौन उपासन करि हैं ॥
तदपि महामाया जो ध्यावैं ।

तुरत सकल पुरुषारथ पावैं ॥ ६९ ॥

नहिं साधन जगमें अस औरा ।
उपजै भोग मोक्ष इक ठौरा ॥
भक्त भगवतीको जो जगमें ।
भोगै भोग न आवत भगमें ॥ ७० ॥

शिवकृत तंत्ररीति यह गाई ।
भक्तिभगवती अतिसुखदाई ॥
पंच मकार न तजिये कबहूं ।
जिनहिं सनातन सेवत सबहूं ॥ ७१ ॥

कृष्णदेव बलदेव सुज्ञानी ।
प्रथमै पिवत सदा ज्यूं पानी ॥
और प्रधान पुरातन जेते ।
सेवत सकल मकारहि तेते ॥ ७२ ॥

तिन सेवनकी जो विधि सारी ।
शिव निजमुख भाषी उपकारी ॥
शिवको वचन धरै जो मनमें ।
लहै सुभोग मोक्ष इक तनमें ॥ ७३ ॥

ग्रंथ भागवत व्यास बनायो ।
उपपुराण काली समझायो ।
भक्ति भगवतीकी इक गाई ।
पूजाविधि सगरी समुझाई ॥ ७४ ॥

---

१ अर्थात् गर्भाशयमें.

ध्याता सकल भगवतीके हैं ।
हरि हर सूर गणेश जिते हैं ॥
सकल पिये प्रथमा मतिवारे ।
पूजत शक्ति मग्न मन सारे ॥ ७५ ॥

जगजननी जागै इक देवी ।
परमानंद लहैं तिहिं सेवी ॥
सूर्यभक्त भगवतिको यश सुनि ।
क्रोधसहित बोल्यो इक मुनि पुनि ॥ ७६ ॥

सुन राजन बानी इक मोरी ॥
भाखुं झूठ न शपथ करोरी ॥
अतिपापिष्ठ नीचमत याको ।
श्रवण सनेह सुन्यो तैं जाको ॥ ७७ ॥

औगुण जिते बखानत जगमैं ।
ते गनियत गुणगण या भगमैं ॥
मंद्य मलीनहि तीरथ राखत ।
शुद्ध नाम आमिषको आखत ॥ ७८ ॥

कहत और यूं सब विपरीता ।
शंभूतंत्र सेवि मतिरीता ॥
दक्षिणसंप्रदाय जो दूजी ।
यद्यपि श्रेष्ठ अनेकन पूजी ॥ ७९ ॥

तद्यपि विन भानू सब अंधे ।
इन सबके मन जिनमें बंधे ॥

---

१ योनिमें. २ मदिरा. ३ मांसको. ४ सूर्य.

करत भानु सगरो उजियारो ।
ता बिन होत सुरत अँधियारो ॥ ८० ॥

और प्रकाशक जगमैं जे हैं ।
अंश सबै सूरजके ते हैं ॥
भानुसमान कौन हितकारी ।
भ्रमत आप परहित मति धारी ॥ ८१ ॥

कालअधीन होत सब कारज ।
ताहि त्रिविध भाषत आचारज ॥
वर्त्तमान भावी[1] अरु भूता ।
सूरज क्रिया करत यह सूता ॥ ८२ ॥

या विधि सकल भानुतैं उपजैं ।
भस्म होत सब जब वह कुपिजैं ॥
भानुरूप द्वैभांति पिछानहु ।
निराकार साकारहि जानहु ॥ ८३ ॥

निराकार परकाश जु कहिये ।
नामरूपमैं व्यापक लहिये ॥
अधिष्ठान सबको सो एका ।
जगत विवर्त व्है जिहि अविवेका ॥ ८४ ॥

"अहं भानु" अस वृत्ति उदय जब ।
तामैं प्रगटि विनाशत तम सब ॥ ८५ ॥

---

१ भविष्यकाळ.

टीकाः—सूर्यके दो रूप हैंः—निराकारप्रकाश औ साकार प्रकाश. तिन दोनोंमैं निराकारप्रकाश सारे नामरूपमैं व्यापक है. जाकूं वेदांती भातिशब्दकरके व्यवहार करै हैं, सो निराकारप्रकाशरूप जो सूर्यका सामान्यरूप है, सो सारे जगत्का अधिष्ठान है. ताके अज्ञानतैं जगत्रूपी विवर्त उपजै है. सोई निराकारप्रकाश अंतःकरणकी वृत्तिमैं प्रतिबिंबसहित ज्ञान कहिये है. "अहं भानु" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति प्रकाशके प्रतिबिंबसहित होवै, तब अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा जगत्की निवृत्ति होवै है.

चौपाई.

सुनि साकाररूप यह ताको ।
होय चांदना दिनमैं जाको ॥
ताके अंश और बहुतेरे ।
चंद तारका दीप घनेरे ॥ ८६ ॥

यातैं द्वैविध भानु बतायो ।
ज्ञेय[1] ध्येयको[2] भेद जनायो ॥
वेद सकल याहीकूं भाखत ।
रूप प्रकाश सत्य तिहिं आखत ॥ ८७ ॥

निराकार साकारं भेदतैं भानुके दो रूप हैं. तिनमैं निराकाररूप ज्ञेय है, साकाररूप ध्येय है. याहीकूं वेदांतनैंमैं निर्गुणसगुणभेदतैं दो प्रकारका ब्रह्म कहै हैं.

---

१ जानने योग्य. २ ध्यान करने योग्य.

चौपाई.

जामैं लेश न तमको कबहीं ।
लखि तिहि जग जन जागत सबहीं ॥ ८८ ॥

कबहुँ न सोवै सो यूं जागै ।
ध्यान करत ताको तम भागै ॥
औरहि जागत भाषत सगरे ।
राजन जानि झूठ ते झगरे ॥ ८९ ॥

ऐसे पांच उपासक बोले ।
निजगुण अवगुण देरके खोले ॥
पंडित और अनेक जु आये ।
भिन्न भिन्न निजमत समझाये ॥ ९० ॥

टीकाः—जैसे पांच उपासक परस्पर विरुद्ध वचन बोले, तैसैं अनेकपंडित निजनिजबुद्धिके अनुसार विरुद्धही बोले. जैसैं इन पांचोंका परस्पर विरुद्ध मत है, तैसैं स्मार्त जो पंडित पांचों देवनमैं भेदबुद्धि करै नहीं, ताका मतभी इन सबतैं विरुद्ध है. काहेतैं ? वैष्णवका यह मत है:-विष्णुसमान और देव नहीं; सारे विष्णुके भक्त हैं. और विष्णुके जो राम, कृष्ण, नारायण आदिक नाम हैं, तिनके समान जो अन्यदेवनके नामकूं जानै, सो नामापराधी है; ताकूं रामादिक नामउच्चारणका यथार्थ फल होवै नहीं. तैसैं शैवमतमैं, शिवसमान अन्य देव नहीं; औ शिवके नामउच्चारणका फल विष्णुनामउच्चारणतैं होवै नहीं.इस रीतिसैं सर्वके मतमैं अप-

१ अज्ञान. २ पृथक् पृथक्.

ने अपने उपास्य देवके समान अन्य देव नहीं. औ स्मार्त मतमैं सारे देव सम हैं, यातैं ताका मतभी पांचतैं विरुद्ध है.

तैसैं सांख्य, पातंजल, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तर मीमांसा; इन षट्शास्त्रनका मतभी परस्पर विरुद्ध है. काहेतैं? सांख्यशास्त्रमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं. योगमैं निरपेक्ष प्रकृतिपुरुषके विवेकज्ञानतैं मोक्ष माना है. औ पांतजलशास्त्रमैं ईश्वरका अंगीकार, समाधितैं मोक्ष माना है; यह विरोध है. न्यायमतमैं चार प्रमाण, औ वैशेषिकमतमैं दो प्रमाण, यह विरोध है. तैसैं न्यायवैशेषिकका औरभी आपसमैं बहुत विरोध है, जिज्ञासूकूं अपेक्षित नहीं; यातैं लिख्या नहीं. तैसैं पूर्वमीमांसामैं ईश्वरका अंगीकार नहीं; मोक्षरूप नित्यसुखका अंगीकार नहीं. किंतु कर्मजन्य विषयसुखही पुरुषार्थ है. और उत्तरमीमांसामैं, ईश्वरका, मोक्षका अंगीकार; विषयसुख पुरुषार्थ नहीं. और उत्तरमीमांसाका मत या ग्रंथमैं स्पष्टही है. सर्वशास्त्रनका मत यातैं विरुद्ध है. औरनमैं भेदवाद है; यातैं भेदका खंडन औ अभेदका प्रतिपादन है. इस रीतिसैं सकलशास्त्रनके सिद्धांत परस्पर विरुद्ध हैं.

चौपाई.

वचन विरुद्ध सुने जब राजा ।
यह संशय उपज्यो तिहिं ताजा ॥
इनमैं कौन सत्य बुध[1] भाषत ।
युक्तिप्रमाण सकल सम आखत ॥ ९१ ॥

---

१ पण्डित.

संशय शोक दुखित यूं जियमैं ।
को उपास्य यह लख्यो न हियमैं ॥
चिंता हृदय हुई यह ताकूं ॥
निजसंदेह सुनाऊं काकूं ॥ ९२ ॥

शास्त्रनिपुण पंडित जगजेते ।
सुने विरुद्ध वकत यह तेते ॥
यूं चिंतत बहुकाल भयो जब ।
तर्कदृष्टि तिहिं आय मिल्यो तब ॥ ९३ ॥

दोहा ।

मिले परस्पर ते उभय, पुत्र पिता जिहि रीति ।
करि प्रणाम आशिष दुहूं, आसन लहे सप्रीति ।९४
निजपितु चितासहित लखि, सुत बोल्यो यहँ बात ।
को चिंता चित रावरे, मुख प्रसन्न नहिं तात ॥ ९५ ॥

चौपाई-

शुभसंतति सुतकी सुनि बानी ।
तिहिं भाषी निजसकल कहानी ॥
चित चिंताको हेतु सुनायो ।
को उपास्य[1] यह तत्त्व न पायो ॥ ९६ ॥

तर्कदृष्टि सुनि पितुके बैना ।
बोल्यो शुभसंतति सुखदैना ।
कारणरूप उपास्य पिछानहु ।
ताके नाम अनंतहि जानहु ॥ ९७ ॥

---

१ उपासना करनेयोग्य.

कारजरूप तुच्छ लखि तजिये ।
यह सिद्धांत वेदको भजिये ॥
रचे व्यास इतिहास पुराणा ।
तिनमें यही मतो नहिं नाना ॥ ९८ ॥

मनमैं मर्म न लखत जु पंडित ॥
करत परस्पर मत ते खंडित ॥
नीलकंठपंडित बुध नीको ।
कियो ग्रंथ भारतको टीको ॥ ९९ ॥

तिन यह प्रथमहिं लिख्यो प्रसंगा ।
श्रुतिसिद्धांत कह्यो जो चंगा ॥ १०० ॥

टीकाः—यद्यपि सकलपुराणका कर्ता एक व्यास है, ताने स्कंदपुराणमें शिवकूं स्वतंत्रतादिक ईश्वरधर्म कहे; औ अन्य-देवनकूं शिवकृपातैं सारी विभूतिकी प्राप्ति कही; यातैं जीव-धर्म कहे. तैसैं विष्णुपुराण पद्मपुराणमें विष्णुकूं ईश्वरता कही. तैसैं किसीकूं पुराणमैं, किसीकूं उपपुराणमैं विष्णुशि-वतैं भिन्न जो गणेशादिक हैं, तिनकूं ईश्वरता कही. इस रीतिसैं व्यासवाक्यनमैं विरोध प्रतीत होवै है. ताका—

यह समाधान करै हैंः— सारेही ईश्वर हैं. जा प्रकरणमैं अन्यदेवकी निंदा है, ताकी निंदा करके, तिसकी उपासना-त्यागमैं, व्यासका अभिप्राय नहीं, किंतु वैष्णवपुराणमें शिवादिकनकी निंदा, विष्णुकी स्तुति करके विष्णुकी उपा-सनामैं प्रवृत्तिकी हेतु है. तैसैं शिवपुराणमें विष्णुआदिक-

नकी निंदाभी, तिनकी उपासनाके त्यागअर्थ नहीं; किंतु तिनकी निंदा, शिवकी उपासनामैं प्रवृत्तिके अर्थ है. जो एक प्रकरणमैं अन्यकी निंदा त्यागके वास्ते होवै, तौ सर्वकी उपासनाका त्याग होवैगा. यातैं अन्यकी निंदा एककी स्तुतिके अर्थ है, त्यागअर्थ नहीं.

दृष्टांतः—वेदमैं अग्निहोत्रके दो काल कहे हैं. एक तौ सूर्यउदयसैं प्रथम, औ दूसरा सूर्यउदयतैं अनंतर काल कह्या है. तहां उदयकालके प्रसंगमैं अनुदयकालकी निंदा करी है; औ अनुदयकालके प्रसंगमैं उदयकालकी निंदा करी है; तहां निंदाका तात्पर्य त्यागमें होवै तौ, दोनों कालमैं होमका त्याग होवैगा. औ नित्यकर्मका त्याग संभवै नहीं; यातैं उदयकालकी स्तुतिके वास्ते, अनुदयकालकी निंदा है. औ अनुदयकालकी स्तुतिके वास्ते, उदयकालकी निंदा है. तैसैं एक देवकी उपासनाके प्रसंगमैं अन्यकी निंदाका, एककी स्तुतिमैं तात्पर्य है; अन्यकी निंदामैं तात्पर्य नहीं. जैसैं शाखाभेदतैं, कोई उदयकालमैं होम करै है, कोई अनुदयकालमैं करै है; फल दोनोंकूं समान होवै है. तैसैं—

इच्छाभेदतैं पांचौं देवनमैं जाकी उपासना करै, तिन सबतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. तहां भोग भोगके विदेह मोक्ष होवै है. यद्यपि विष्णुआदिकनकी उपासनातैं, वैकुंठलोकादिकनकी प्राप्ति पुराणमैं कही है, ब्रह्मलोककी नहीं, तथापि उत्तम उपासक विदेहमुक्तिके अधिकारी देवयानमार्गतैं सारे ब्रह्मलोककूंही जावै हैं, परंतु एकही ब्रह्मलोक वैष्णवउपासककूं वैकुंठरूप प्रतीत होवै है; औ लोकवासी सारे तिसकूं चतुर्भुज पार्षदरूप प्रतीत होवै हैं; औ आपभी चतु-

भुजमूर्ति होवै है. तैसैं शैवउपासककूं ब्रह्मलोकही, शिवलोक प्रतीत होवै है. तिसलोकवासी सारे त्रिनेत्रमूर्ति अपनेसहित प्रतीत होवै हैं. इस रीतिसैं सर्व उपासककूं ब्रह्मलोकही अपने उपास्यका लोक प्रतीत होवै है. काहेतैं? यह नियम है:—देवयानमार्गबिना अन्यमार्गतैं जो जावै है, तिनका संसारमैं आगमन होवै है; औ देवयानमार्ग एक ब्रह्मलोकका हैं; यातैं विदेहमोक्षके योग्य उपासक, सारे ब्रह्मलोककूं जावै हैं. तिस ब्रह्मलोकमैं ऐसा अद्भुत महिमा है:—उपासककी इच्छाके अनुसार सारी सामग्रीसहित व ब्रह्मलोकही तिनकूं प्रतीत होवै है. इस रीतिसैं पांचों देवनके उपासकनकूं समफल होवै है. याके विषे,

यह शंका होवै है:—"पांचों देवनके नामरूप भिन्न भिन्न कहे हैं और ईश्वर एक हैं; एक ईश्वरके नानारूप संभवैं नहीं" ताका यह समाधान है:—परमार्थसैं नामरूप कोई परमात्मामैं है नहीं; मंदबुद्धिकूं उपासनाके वास्ते, नामरूपरहित परमात्माके मायाकृत कल्पित नामरूप कहे हैं. यातैं परमात्मामैं मायाकृत कल्पितनामरूप नाना संभवैं हैं. इस रीतिसैं सर्व पुराणवाक्यनका विरोध दूर होवै है. औ—

पुराणवाक्यनमैं विरोधशंकाका मुख्य समाधान तौ यह है:—विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य; इसतैं आदि लेके जितने एक एकके नाम हैं, सो सारे कारणब्रह्मके नाम हैं. औ कार्यब्रह्मकेभी सो सारे नाम हैं. जैसैं मायाविशिष्ट कारणकूं ब्रह्म कहै हैं, औ हिरण्यगर्भ कार्य है, ताकूंभी ब्रह्म कहै हैं. इस रीतिसैं कारणब्रह्मकूं विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्यपद बोधन करै है. औ कार्यब्रह्मकूंभी पांचों पद

बोधन करै हैं. ऐसैं पांचों पदनके जो नारायण, नीलकंठ, विघ्नेश, शक्ति, भानु इत्यादिक अनंतपर्याय हैं, सो सारे कारणब्रह्म औ कार्यब्रह्म दोनोंकूं बोधन करै हैं. कहूं कारणब्रह्मकूं, कहूं कार्यब्रह्मकूं, प्रसंगतैं बोधन करै हैं. जैसैं सैंधवपद अश्व औ लवण दोनोंकूं बोधन करै है; भोजनप्रसंगमैं सैंधवपद लवणकूं बोधन करै है, औ गमनप्रसंगमैं सैंधवपद अश्वकूं बोधन करै है. **वैष्णवपुराणमें** विष्णु नारायणादिक पद कारणब्रह्मके बोधक हैं. शिव, गणेश, सूर्यादिकपद कार्यब्रह्मके बोधक हैं, यातैं—

वैष्णवग्रंथनमैं विष्णुकी स्तुति, औ शिवादिकनकी निंदातैं व्यासका यह अभिप्राय हैः—कारणब्रह्म उपास्य है औ कार्य ब्रह्म उपास्य नहीं. तैसैं **स्कंदपुराणादिक** शैवग्रंथनमैं शिवमहेशादिक पद कारणब्रह्मके बोधक हैं औ विष्णु गणेश देवी सूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक हैं. यातैं तिनमैंभी कारणब्रह्मकी स्तुति औ कार्यब्रह्मकी निंदा है. तैसैं **गणेशपुराणमें** गणेशपद, कारणब्रह्मका वाचक, औ विष्णुशिवादिक पद कार्यब्रह्मके वाचक हैं. यातैं कारणकी स्तुति, कार्यकी निंदा है. तैसैं **कालीपुराणमें** काली, देवी आदिक पद कारणब्रह्मके बोधक औ विष्णु शिव गणेश सूर्यादिकपद कार्य ब्रह्मके बोधक; यातैं कालीपदबोध्य कारणकी स्तुति औ विष्णुशिवादिकपदबोध्य कार्यब्रह्मकी निंदा है. तैसैं **सौरपुराणमें** सूर्यभानुपदबोध्य कारणब्रह्म हैं; ताकी स्तुति, औ अन्यपदबोध्य कार्यकी निंदा है. इस रीतिसैं सकलपुराणनमैं, कार्यकारणकी संज्ञारूप संकेतका तौ भेद है; उपादेय हेय जो अर्थ ताका भेद नहीं. सकलपुराणनमैं, कारणब्रह्म-

की उपासना उपादेय है; औ कार्यकी उपासना हेय है. यातैं सारे पुराण एक कारणब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करै हैं. तिनका आपसमैं विरोध नहीं.

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुंड, अष्टभुजादिक मूर्ति मायाके परिणाम हैं, औ चेतनके विवर्त्त हैं यातैं कार्य हैं, औ तिनकीभी उपासना कही है; तथापि तिन चतुर्भुजादिक मूर्तियोंका जो मायाविशिष्टकारण है तासैं विचार कियेतैं भेद नहीं. यातैं तिन आकारनको बाधके कारणरूपतैं तिनकी उपासनामैं तात्पर्य है. काहेतैं? आकार कार्य है, यातैं तुच्छ है औ कारण सत्य है औ जाकी मंदप्रज्ञा आकारमैंही स्थित होवै, सो शास्त्र उक्त आकारकीही उपासना करै; तासैंभी प्रज्ञा निश्चल होयके कारणब्रह्मकी उपासनामैं स्थित होवै है.

कारणब्रह्मकी उपासना इस रीतिसैं कही है:—ब्रह्म जगत्का कारण है, सत्यकाम है, सत्यसंकल्प है, सर्वज्ञ है, स्वतंत्र है, सर्वका प्रेरक है, कृपालु है, ऐसे ईश्वरके धर्मनकूं चिंतन करै. मूर्तिचिंतनमैं शास्त्रका तात्पर्य नहीं और अनेक मूर्ति जो शास्त्रमैं लिखी हैं, सो उपासनाके निमित्त नहीं; किंतु सारी मूर्ति कारणब्रह्मकी उपलक्षण है. जो वस्तु जाके एक देशमैं होवै, औ कदाचित् होवै औ व्यावर्तक होवै, सो उपलक्षण कहिये है. जैसैं "काकवाला देवदत्तका गृह है." या वाक्यमैं देवदत्तके गृहका काक उपलक्षण है. काहेतैं? गृहके एकदेशमैं काक होवै है; औ कदाचित् होवै, सर्वदा नहीं; औ अन्यगृहतैं देवदत्तके गृहका व्यावर्तक है. तैसैं जगत्का कारण ब्रह्म है; ताके एकदेशमैं मूर्ति

होवै है; औ कदाचित् होवै. औ चतुर्भुजादिक मूर्ति कारणब्रह्मविषेही होवै है; अन्यमैं नहीं. यातैं व्यावर्तक होनेतैं उपलक्षण है. उपलक्षणका यह प्रयोजन होवै है:–विशेष्यवस्तुके स्वरूपका ज्ञान होवै. जैसैं काकते देवदत्तके गृहका ज्ञान होवै, अन्य प्रयोजन काकतैं नहीं. तैसैं चतुर्भुजादिक आकारनतैं निराकार कारणब्रह्मका ज्ञानही उपासनाके निमित्त मूर्तिप्रतिपादनका प्रयोजन है; अन्य नहीं. औ–

मंदप्रज्ञावाले शास्त्रअभिप्रायकूं समझे बिना, तिन आकारनमैं आग्रह करै हैं. और स्यालसारमेयन्यायतैं परस्पर कलह करै हैं. स्त्रीके भाईकूं स्याल कहै हैं, कुक्कुरकूं सारमेय कहै हैं. दृष्टांतकूं न्याय कहै हैं. किसीके सालेका नाम उत्फालक था, और सालेका शत्रुका नाम धावक था; तिस पुरुषके गृहके कुक्कुरका नाम धावक, औ दूसरे गृहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था. तहां तिस पुरुषकी स्त्री गृहविषे प्रथम आई, तब दोनों कुक्कुर आपसमैं हमेश लरैं तहां स्त्रीका पति ससुरआदिक उत्फालककूं गाली देवै, औ अपने धावककी बड़ाई करैं. तब तो स्त्रीकूं यह भ्रांति हुई:–"मेरे भाईकूं गाली देवै ताके शत्रुकी बड़ाई करै है." तासैं दूषित होयके भर्तासैं क्लेश करती हुई! जैसैं तिनके अभिप्राय जानैबिना, समानसंज्ञातैं भ्रमकरिके स्त्रीने क्लेश किया, तैसैं वैष्णवग्रंथनमैं शिवादिक नामतैं कार्यब्रह्मकी निंदा करी है; इस अभिप्रायकूं नहीं जानके शैवादिक दुःखित होवै हैं और विष्णुनामतैं कार्यकी निंदाकूं नहीं जानके वैष्णव दुःखित होवै हैं और सकल पुराणनका

यह अभिप्राय है किः--कारणब्रह्म उपास्य है; कार्यब्रह्म त्याज्य है, मायाविशिष्टचेतन कारणब्रह्म कहिये है. मायाकृत कार्यविशिष्टचेतन कार्यब्रह्म कहिये है. यही अर्थ भारतकी टीकाके आरंभमैं लिख्या है. और सारे वेदांतनका यही सिद्धांत है ॥ १०० ॥

चौपाई.

शुभसंतति सुनि सुतके वैना ।
उपज्यो जियमें किंचित चैना ॥
पुनि तिन प्रश्न कियो निजपूतहि ॥
शास्त्र परस्पर कहत असूतहि ॥ १०१ ॥

टीकाः--पुराणनमैं विरोधशंकाके नाशतैं, चैन कहिये सुख हुआ. औ षट्शास्त्रनकी परस्परविरोधशंका मिटी नहीं. यातैं किंचित् चैन हुआ, सर्वथा नहीं. असूत कहिये विरुद्ध कहे हैं.

चौपाई.

तिनमें सत्य कौन सो कहिये ।
जाको अर्थ बुद्धिमें लहिये ॥
तर्कदृष्टि सुनि निजपितुवानी ।
बोल्यो वचन सु परमप्रमानी ॥
उत्तरमीमांसाउपदेशा ।
वेदविरुद्ध न जामें लेशा ॥ १०२ ॥

शास्त्र पंच ते वेदविरुद्धं ।
यातें जानहु तिनहिं अशुद्धं ॥

किंचित् अंश वेदअनुसारी ।
लखि बहु गहत मंद अधिकारी ॥ १०४ ॥

टीकाः—यद्यपि षट्शास्त्रनके कर्ता सर्वज्ञ कहे हैं. सांख्यका कर्ता कपिल, पातंजलका कर्ता पतंजलि शेषका अवतार, न्यायका कर्ता गौतम, वैशेषिकशास्त्रका कर्ता कणाद, पूर्वमीमांसाका कर्ता जैमिनि, उत्तरमीमांसाका कर्ता व्यास इन सबका माहात्म्य प्रसिद्ध है. यातैं इनके वचनरूप शास्त्रभी सारे समानप्रमाण चाहिये; तथापि सर्व वाक्यनमैं प्रबलप्रमाण वेदवाक्य है. काहेतैं ? वेदका कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर है, ताकेविषे भ्रम, संदेह, विप्रलिप्सा दोष संभवै नहीं. इन शास्त्रनके कर्ता जीव हैं; तिनविषे भ्रमआदिक दोषनका संभव है. यद्यपि शास्त्रकारभी सर्वज्ञ कहे हैं, तथापि तिनकूं सर्वज्ञता योगमाहात्म्यसैं हुई है; यातैं युंजानयोगी हुये हैं औ ईश्वरकूं सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध है, यातैं युक्तयोगी है. जाकूं चिंतन किये पदार्थका ज्ञान होय, सो युंजानयोगी कहिये है. जाकूं सर्वदा एकरस सारे पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत होवै, सो युक्तयोगी कहिये है; ऐसा ईश्वर है. युक्तयोगीकृत वेदवचन प्रबल, औ युंजानयोगीकृत शास्त्रवचन दुर्बल है. यातैं,

वेदअनुसारी शास्त्रप्रमाण, औ वेदविरुद्ध अप्रमाण पांच शास्त्र जैसैं वेदविरुद्ध हैं तैसैं शारीरकआदिक ग्रंथनमैं स्पष्ट है. औ उत्तरमीमांसा किसी अंशमैं वेदविरुद्ध नहीं. यातैं प्रमाण है. और शास्त्रभी किसी अंशमैं वेदके अनुसारी देखके, मंदबुद्धि तिनमैं विश्वास करै हैं; परंतु बहुत अंशमें वेदविरुद्ध हैं; यातैं त्याज्य हैं. किसी अंशमैं वेदअनुसारी होनेतैं, उपादेय

होवै, तौ जैनशास्त्रभी अहिंसाअंशमैं वेदअनुसारी है, यातैं उपादेय हुवा चाहिये और त्याज्य है; उपादेय नहीं. यद्यपि सुगत ईश्वरका अवतार है जाकूं बुद्ध कहै हैं; ताके वचनभी वेदसमान प्रमाण चाहिये; तथापि बुद्ध विप्रलिप्सानिमित्ततैं हुया है; यातैं ताका वचन सर्वथा अप्रमाण है, वंचनकी इच्छाकूं विप्रलिप्सा कहै हैं, जाकूं बहँकावनेकी इच्छा कहै हैं. यातैं सर्व अंशमैं वेदअनुसारी उत्तरमीमांसाही सर्वही मुमुक्षुकूं उपादेय है. यद्यपि उत्तरमीमांसा व्यासकृत सूत्ररूप है, ताका व्याख्यानभी अनेक पुरुषोंने नानारीतिसैं कियां है, तथापि पूज्यचरण शंकरकृत व्याख्यानही वेदानुसारी है, और नहीं; यह पंचमतरंगमैं प्रतिपादन करा है. यातैं और पंचशास्त्र अप्रमाण हैं. और,

जो इस तरंगमैं पूर्व सारे शास्त्र मोक्षउपयोगी कहे, सो तर्कदृष्टिके सारग्राही विवेकतैं कहे. जैसैं किसीका शत्रु तरवार मारै, तासैं रुधिर निकसके, दैवगतिसैं रोग निवृत्त होय जावै; तब सारग्राही पुरुष तरवार मारनेका उपकार मान लेवै; तैसैं अन्यशास्त्रनसैंभी किसी रीतिसैं अंतःकरणकी शुद्धि वा निश्चलता हुयेतैं पुरुष निवृत्त होयके, वेदअनुसार निश्चय करै, तौ मोक्ष होवै है. सर्वथा तिनहीमैं आग्रह करै तौ, अंधगोलांगूलन्यायतैं अनर्थकूं प्राप्त होवै है. यातैं सकलशास्त्र त्यागके अद्वैतव्याख्यानरीतिसैं उत्तरमीमांसा उपादेय है.

अंधगोलांगूलन्याय यह है:—किसी धनीके भूषणयुक्त पुत्रकूं चोर ले गये. बनमैं भूषण ले ताके नेत्र फोड़के छोड़ गये. तब ता रुदन करते बालककूं, कोई निर्दय वंचक बल-

उन्मत्त बलीवर्दकी लांगूल पकड़ाय देवै; और यह कहैः—तूं इसका लांगूल मतिछोडियो, तेरे ग्राममैं यह पहुँचाय देवेगा. सो दुखी बालक ताके वचनमैं विश्वास करके, दुःख अनुभव करके नष्ट होवै है. तैसैं विषयरूप चोर, विवेकरूप नेत्रकूं फोड़के संसारवनमैं गेरे हैं. तहां भेदवादी निर्दयवंचक अन्य शास्त्रनके सिद्धांतमैं आग्रह करवावै हैं. यह कहै हैंः--हमारा उपदेशही तेरेकूं परमसुखप्राप्ति हेतु होवैगा; ताकूं छोड़ियो मति. तिनके वाक्यनमैं विश्वास करके पुरुषार्थसुखरहित होवै है; औ जन्ममरणरूप महादुःखकूं अनुभव करै है. यांतैं अन्य शास्त्र त्याज्य हैं.

दोहा.

तर्कदृष्टिके वचन सुनि, शुभसंतति तिहिं तात ॥
संशय शोक नश्यो सकल, लह्यो हिये कुशलात ॥
कारणब्रह्मउपासना, करी बहुत चित लाय ॥
तर्कदृष्टि निजलखि गुरू, राजसमाज चढाय ॥१०६॥

टीकाः—यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था; तथापि उपदेश उत्तम कऱ्या यातैं गुरुपदवीकूं प्राप्त हुवा. यह ब्रह्मविद्याका माहात्म्य है.

दोहा.

कछु व्यतीत भो काल तब, तजि राजा निजप्रान ॥
ब्रह्मलोकमैं सो गयो, मुनि जहँ जात सध्यान ॥१०७॥

टीकाः--राजाके मरणका देश काल कह्या नहीं, ताका

यह अभिप्राय है:--उपासकके मरणमैं देशकालकी अपेक्षा नहीं; दिनमैं मरे अथवा रात्रिमैं, दक्षिणायनमैं अथवा उत्तरायणमैं. पवित्रभूमिमैं अथवा अपवित्रमैं. सर्वथा उपासनाके बलतैं देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. औ अदृष्टके प्रसंगमैं जो पूर्व देशकालकी अपेक्षा कही, सो योगसहित उपासककूं कही है. केवल ईश्वरशरण उपासककूं देशकालकी अपेक्षा नहीं यह अर्थ सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है.

दोहा.

राजकाज सब तव कियो, तर्कदृष्टि हुसियार ॥
लग्यो न रंचक रंग तिहिं, लह्यो ब्रह्म निर्धार ॥१०८॥
अंत भयो प्रारब्धको, पायो निश्चल गेह ॥
आतम परमातम मिल्यो, देह खेहमैं छेह ॥ १०९ ॥

टीका:—देहका खेह कहिये राखमैं; छेह कहिये अंत; आत्मा कहिये कूटस्थसाक्षी; ताका परमात्मासैं अभेद.

यद्यपि कूटस्थका परमात्मासैं सदा अभेद है; तथापि उपाधिकृत भेद है. उपाधिके लयतैं उपाधिकृत भेदका अभाव होवै है. परमात्मासैं अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:--विदेहमुक्तिमैं ईश्वरतैं अभेद होवै है, शुद्धचेतनब्रह्मसैं नहीं. यह वार्ता शारीरकभाष्यके चतुर्थअध्यायमैं प्रतिपादन करी है. तहां यह प्रसंग है:—विदेहमुक्तिमैं सत्यसंकल्पादिकरूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतसैं कही है. औडुलोमिके मतमैं सत्यसंकल्पादिकनका अभाव कह्या है. औ सिद्धांतमतमैं सत्यसं-

कल्पादिकनका भाव अभाव दोनों कहे हैं. ताका यह अभिप्राय है:-ईश्वरतैं अभेद होवै है. ईश्वरके सत्यसंकल्पादि मुक्तमैं अन्य जीवोंकरि व्यवहार करिये है. सो ईश्वर परमार्थदृष्टिसैं शुद्ध है. ताकेविषे कोई गुण है नहीं, किंतु निर्गुण है. यातैं सत्यसंकल्पादिकनका अभाव है. यद्यपि संसारदशाविषेभी जीव परमार्थसैं निर्गुण है, शुद्ध है, तथापि जीवकूं संसारदशामैं, अविद्यासैं कर्तापना भोक्तापना प्रतीत होवै है. ईश्वरकूं कभीभी आत्मामैं अथवा अन्यमैं संसार प्रतीत होवै नहीं, यातैं सदा असंग निर्गुण शुद्ध है. यातैं ईश्वरतैं जो अभेद है, सो शुद्धसैं अभेद नहीं है औ ईश्वरतैं अभेदकूं शुद्धब्रह्मसैं अभेद नहीं मानैं तौ ईश्वरकूं शुद्धब्रह्म प्राप्ति कभीभी होवै नहीं. काहेतैं? जीवकी नाईं ईश्वरकूं उपदेशजन्य ज्ञान, औ विदेहमोक्ष तौ कभी होवै नहीं; सदाप्राप्त जो ताका रूप सो शुद्ध नहीं, यातैं जीवतैंभी न्यून ईश्वर सदा बद्ध है, यह सिद्ध होवैगा. यातैं यह मानना योग्य है:-ईश्वरकूं आवरण नहीं; यातैं उपदेशज्ञानकी अपेक्षा नहीं. आवरणके अभावतैं भ्रांति नहीं, यातैं नित्य सर्वज्ञ है; नित्यमुक्त है. माया औ ताका कार्य आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं, यातैं सदा असंग है; याहीतैं शुद्ध है. इस रीतिसैं ईश्वरतैं अभेदही शुद्धचेतनसैं अभेद है. औ दृष्टांतसैंभी ईश्वरतैंही अभेद सिद्ध होवै है. जैसैं मठमैं घटका अभाव होवै, तौ मठाकाशमैं घटाकाशका लय होवै; महाकाशमैं नहीं. तैसैं विद्वान्का शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांडमैं नष्ट होवै है औ ब्रह्मांड सारा ईश्वरशरीर मायाके अंतर्भूत है. विद्वान्का आत्मा विदेहमोक्षमैं ब्रह्मांडके बाहर गमन करै नहीं, यातैं ईश्वरतैं अभेद होवै है. परंतु जैसैं मठाकाशसैं घटा-

काशका अभेद हुवा, सो मठाकाश महाकाशरूपही है, तैसैं ईश्वरतैं अभेद होवै है, सो ईश्वरशुद्धब्रह्मही है; यातैं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवै है.

दोहा.

यह "विचारसागर" कियो, जामैं रत्न अनेक ॥
गोप्य वेदसिद्धांततैं, प्रगट लहत सविवेक ॥११०॥
सांख्य न्यायमैं श्रम कियो, पढ़ि व्याकरण अशेष ॥
पढ़े ग्रंथ अद्वैतके, रह्यो न एकहु शेष ॥ १११ ॥
कठिन जु और निबंध है, जिनमैं मतके भेद ॥
श्रमतैं अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद ॥११२॥
तिन यह भाषाग्रंथ किय, रंच न उपजी लाज ॥
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म सिरताज ॥११३॥
बिन व्याकरण न पढ़ि सकै, ग्रंथ संस्कृत मंद ॥
पढ़ै याहि अनयासही, लहै सु परमानंद ॥ ११४ ॥
दिल्लीतैं पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम ॥
तामैं यह पूरो भयो, किहडौली तिहि नाम ॥११५॥
ज्ञानीमुक्त विदेहमैं, जैसो होय अभेद ॥
दादूआदूरूप सो, जाहि बखानत वेद ॥ ११६ ॥
नाम रूप व्यभिचारिमैं, अनुगत एक अनूप ॥
दादूपदको लक्ष्य है, अस्तिभातिप्रियरूप ॥ ११७

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः समाप्तः ॥ ७ ॥

दोहा ।

शोधि यथामति कठिन थल, टिप्पण रुचिर वनाय ॥
श्री पण्डित रघुवंशने, मन्दबोधहितलाय ॥ १ ॥
रस-शर-निधि-विधुमित शरद, ज्येष्ठशुक्क भृगुवार ॥
अष्टमिको पूरण सुखद, टिप्पण शुद्धिप्रकार ॥ २ ॥



पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
हरिप्रसाद भगीरथजी,
कालिकादेवीरोड, रामवाडी--बम्बई.